

**THE BOOK WAS
DRENCHED
TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_194093

UNIVERSAL
LIBRARY

याच लेखकाच्या 'रत्नप्रदीप खंड १२' संबंधी विद्वानांचे अभिप्राय

श्रीमंत कै. राजेसाहेब मिरज लिहितात—

ग्रंथ अत्यंत शान्नेत व अत्यंत उपयुक्त आहे. अशा प्रकारे आणखी कांहीं ग्रंथ लिहून त्यांनीं राष्ट्राची सेवा करावी. पन्नास रुपये पाठविले आहेत ते ग्रंथकर्त्याची पूजा म्हणून...अर्पण करावेत.

साहित्याचार्य तात्यासाहेब केळकर लिहितात—

रत्नप्रदीप हे पुस्तक मी समग्र वाचून पाहिलें...मराठी भाषेत तरी या विषयावरचा असा उत्कृष्ट ग्रंथ माझ्या पाहण्यांत नाही. रत्नप्रदीपासारखे ग्रंथ निर्माण होतील तरच राष्ट्राच्या खऱ्या ज्ञानभांडारांत भर पडण्याचा संभव आहे...

प्रोफेसर द. वा. पोतदार लिहितात—

रा. खांबेठे यांनीं मराठी भाषेत एका महत्त्वाच्या विषयावर निःसंशय अत्यंत उपयुक्त भर टाकलेली आहे. असा ग्रंथ निर्माण करण्यास पुष्कळ दिवसांचा व चिकाटीचा व्यासंग लागतो.

रावसाहेब ना. गो. चापेकर, रि. स. जज्ज लिहितात—

रत्नप्रदीप म्हणजे मूर्तिमंत चिकाटीच्या उद्योगाची पराकाष्ठा होय ! हा द्विखंडात्मक महाग्रंथ निर्माण करण्यास किती मेहनत करावी लागली असेल याची कल्पना पुस्तक वरवर चाळणाऱ्यांसही सहज येण्यासारखी आहे.

श्री. वा. आ. लाटकरशास्त्री यांची
* दोन उत्कृष्ट संस्कृत पुस्तके *

१. बलिदानम्—साहित्यसम्राट् श्री. तात्यासाहेब केळकर यांच्या ' बलिदान ' या मराठी कादंबरीचा उत्कृष्ट अनुवाद. संस्कृतज्ञांचे उत्तमोत्तम अभिप्राय. किं. २ रु. ट. ख. ४ आणे.

२. श्रीशाहूचरितम्—बाणभट्ट कवीने लिहिलेल्या हर्षराजाच्या चरित्राप्रमाणे कोल्हापूरचे कै. राजर्षि श्रीशाहूछत्रपति यांचे आधुनिक पद्धतीने सुलभ संस्कृतांत लिहिलेले सुंदर चरित.

किं. १॥ रु. ट. ख. ४ आणे.

स्कूल व कॉलेज बुकस्टॉल, कोल्हापूर.

बुद्धिबळावरील अपूर्व ग्रंथ
बुद्धिबळ-क्रीडारत्ने

संपादक—ग. रं. कुलकर्णी, हळदीकर,
बी. ए., एल्.एल्. बी., वकील, कोल्हापूर.

या पुस्तकांत बुद्धिबळ खेळासंबंधी सर्व प्रकारची माहिती संशोधनपूर्वक दिली असून, सोडविण्यास उत्तरोत्तर अवघड असे शंभर डाव उत्तरांसहित दिले आहेत. हिंदी व इंग्रजी खेळांची पद्धत, नियम वगैरे सर्व प्रकारची उपयुक्त माहिती सविस्तर दिली असल्याने नवशिक्यांसही पुस्तक अत्यंत उपयुक्त झाले आहे.

तज्ञांचे उत्तमोत्तम अभिप्राय

किं. २। रु. ट. ख. ४ आणे.

विशेष माहितीकरितां माहितीपत्रक मागवा. मोफत पाठवूं.

स्कूल व कॉलेज बुकस्टॉल, कोल्हापूर.

लघुरत्नपरीक्षा

लेखक

महादेव लक्ष्मण खांबेदे

वकील व व्यापारी

मौक्तिकप्रकाश, रत्नप्रदीप खंड १ला

रत्नप्रदीप खंड २रा

या ग्रंथांचे कर्ते.

जळगांव पूर्व खानदेश

सन १९४१

प्रथमावृत्ति

शके १८६३

शुभं भवतु

प्रकाशक:—
दा. ना. मोघे, बी. ए.
स्कूल अँड कॉलेज बुकस्टॉल, कोल्हापूर.

CHECKED 1956

By S. S. S.

CHECKED 1953

Checked 1968

Checked 1969

मुद्रक:—

कृ. ह. सहस्रबुद्धे,
श्रीशानेश्वर प्रेस, कोल्हापूर.

अनुक्रमणिका

| विषय | पृष्ठे |
|----------------|----------|
| मुखपृष्ठ | ... |
| अनुक्रमणिका | ३ ते ७ |
| चित्रांची यादी | ७ ते ८ |
| शुद्धिपत्र | ९ ते १० |
| उपोद्घात | ११ ते १४ |

लघुरत्नपरीक्षा

व्यावहारिक विभाग

| | |
|--|----------|
| प्रकरण १ लें. रत्नांची उत्पत्ति, काठिण्य, तेज व आकार ... | १ ते ५ |
| रत्नांचें वर्गीकरण | ६ |
| रत्नांची परीक्षा | ७ |
| प्रकरण २ रें. रत्नांचें संक्षिप्त वर्णन, महारत्ने | ८ ते ३७ |
| हिरा | ८ ते १३ |
| १ घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति | ८ ते ९ |
| २ आकार, काठिण्य, भिदुरता व विशिष्टगुरुत्व | ९ ते १० |
| ३ रंग, तेज, उपयोग, किंमत | १० ते १२ |
| ४ हिऱ्यांचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय हिरे, हिऱ्याची परीक्षा व प्रख्यात हिरे | १२ ते १३ |
| माणिक | १३ ते १९ |
| १ घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति | १३ ते १५ |
| २ नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य व विशिष्टगुरुत्व | १५ |
| ३ माणकाचा रंग, तेज, उपयोग, किंमत | १५ ते १६ |
| ४ माणकाचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय माणके, त्यांची परीक्षा, प्रख्यात माणके व पोटार्लें | १६ ते १९ |
| नील अथवा शनि | १९ ते २१ |
| १ घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति | १९ |
| २ नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य व विशिष्टगुरुत्व | १९ |

| | | |
|--|--------|----------|
| ३ नीलाचा रंग, तेज, उपयोग, किंमत | ... | १९ ते २१ |
| ४ नीलाचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय नील, त्यांची परीक्षा व प्रख्यात नील | ... | २१ |
| पाच अथवा पन्ना | ... | २१ ते २४ |
| १ घटना, उत्पत्ति व व्याप्ति | ... | २१ ते २२ |
| २ नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य, विशिष्टगुरुत्व | | २२ |
| ३ रंग, तेज, उपयोग, किंमत | ... | २२ |
| ४ पाचचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय पाच तिची परीक्षा व प्रख्यात पन्ना | | २३ ते २४ |
| गोमेद | | २४ ते २५ |
| पुष्पराग अथवा पुष्पराज | ... | २५ ते २६ |
| लसनिया व मार्जारनेत्री | ... | २६ ते २७ |
| प्रवाळ अथवा पोंवळें | ... | २७ |
| मोती, शिपले व शंख | ... | २८ ते ३७ |
| १ मोत्यांची घटना, उत्पत्ति व व्याप्ति | ... | २८ ते २९ |
| २ मोत्यांचे आकार, काठिण्य व विशिष्टगुरुत्व | ... | २९ ते ३० |
| ३ मोत्यांच्या जाति, रंग, तेज, उपयोग, किंमत | ... | ३० ते ३२ |
| ४ मोत्यांतील गुणदोष, कृत्रिम व कलचर मोती, त्यांची परीक्षा व प्रख्यात मोती | ... | ३३ ते ३६ |
| मोत्यांचे शिपले | | ३६ |
| शंख | | ३६ ते ३७ |
| प्रकरण ३ रें. रत्नांचें संक्षिप्त वर्णन (पुढें चालू). उपरतें | | ३८ ते ४६ |
| १ चुनडी (संस्कृत पुलकमणि), लोलक, लालडी | | ३८ ते ३९ |
| २ तोरमळी | | ३९ ते ४० |
| ३ काचमणि म्हणजे स्फटिक रत्न | | ४० ते ४१ |
| ४ अक्कीक | | ४१ ते ४३ |
| ५ ओपल | | ४३ ते ४४ |

| | |
|---|----------|
| ६ पेरोज, राजावर्त अथवा लज्जवर्द, पीळ अथवा जेड, अंबर अथवा तृणमणि आणि वज्रभासीय अथवा शिकान | ४४ ते ४५ |
| ७ अवांतर उपरत्ने व पौराणिक रत्ने | ४५ ते ४६ |
| ८ कित्येक इंग्रजी रत्ने | ४६ |
| प्रकरण ४ थें. नवग्रहांची प्रिय रत्ने | ४६ ते ४९ |
| नवग्रहांकरतां नवरत्नांची आंगठी व तींतील रत्नांचीं स्थाने | ४७ ते ४८ |
| नवरत्नांच्या खरेदीच्या वेळा | ४८ |
| रत्नांचे धार्मिक व आरोग्यविषयक उपयोग | ४८ ते ४९ |
| प्रकरण ५ वें. रत्नांची परीक्षा करण्याचीं साधनें | ५० ते ५७ |
| १ रत्नांचें काठिण्य व भिदुरता | ५० ते ५३ |
| रत्नांचें काठिण्य | ५० ते ५३ |
| रत्नांची भिदुरता | ५३ ते ५४ |
| २ रत्नांचें विशिष्टगुणत्व | ५४ ते ५५ |
| ३ रत्नांची चकाकी अथवा तेज | ५५ ते ५६ |
| ४ रत्नांचे रंग | ५७ |
| विशिष्ट रत्नांचे विशिष्ट गुण | ५७ |
| प्रकरण ६ वें. करसंज्ञा आणि सांकेतिक भाषा | ५८ ते ६४ |
| करसंज्ञा | ५८ ते ६२ |
| सांकेतिक भाषा | ६२ ते ६४ |
| प्रकरण ७ वें. जवाहिरांची वजनं व तराजू | ६५ ते ७४ |
| वजनं | ६५ ते ७० |
| तराजू | ७१ ते ७४ |
| प्रकरण ८ वें. चलच्चित्रपटांत जगत्प्रसिद्ध रत्नांचा अवतार | ७५ ते ७७ |
| प्रकरण ९ वें. मनोरंजक व उपयुक्त माहिती | ७८ ते ९० |
| १ ज्योतिःशास्त्रांतील नक्षत्रग्रहरत्ने | ७८ |
| २ वेदांतांतील रत्ने | ७८ |
| ३ रामायणकालिन रत्ने | ७९ |

| | | | | | |
|----|-----------------------------------|-----|-----|-----|----------|
| ४ | रत्नांच्या मूर्ती | ... | ... | ... | ७९ ते ८० |
| | (अ) इंद्रनीलाचा शनी | ... | ... | ... | ७९ |
| | (आ) शिवाचे पिंडीतील पाचेचा बाण | ... | ... | ... | ८० |
| | (इ) दक्षिणावर्ती स्त्रीजातीचा शंख | ... | ... | ... | ८० |
| ५ | ब्रिटनचा जवाहिरखाना | ... | ... | ... | ८० ते ८१ |
| ६ | पेशवाईतील जवाहीर | ... | ... | ... | ८२ |
| ७ | विजयानगरची रत्नसंपत्ति | ... | ... | ... | ८३ |
| ८ | गाइकवाड सरकारची रत्ने | ... | ... | ... | ८४ |
| ९ | दिल्लीच्या बादशहाचें मयुरासन | ... | ... | ... | ८४ |
| १० | रत्नवृत्तसार | ... | ... | ... | ८५ ते ९० |
| | सर्वात मोठें ओपल रत्न | ... | ... | ... | ८६ |
| | जंगी पीलु रत्न | ... | ... | ... | ८६ |
| | कोरलेली रत्ने | ... | ... | ... | ८६ |
| | रत्नयुक्त छत्र | ... | ... | ... | ८७ |
| | अगदीं अलीकडे उपलब्ध झालेली | ... | ... | ... | ... |
| | हिऱ्यासंबंधाची माहिती | ... | ... | ... | ८७ |
| ११ | रत्नप्रचुर वाङ्मयाचा मासला | ... | ... | ... | ८८ |
| | मौज | ... | ... | ... | ८८ |
| | ताईचें तेज | ... | ... | ... | ८८ |
| | कैलास व सौगंधिक वन | ... | ... | ... | ८८ |
| | केळकरांचें वाङ्मय-जवाहीर | ... | ... | ... | ८८ |
| १२ | रत्नांचे अनेक गुण | ... | ... | ... | ८८ |
| १३ | रत्नांची परीक्षा | ... | ... | ... | ८९ ते ९० |

लघुरत्नपरीक्षा शास्त्रीय विभाग

| | | | |
|---|------------------------------|-----|----------|
| प्रकरण १० वें. विशिष्ट | गुरुत्व पाहण्याची यांत्रिक व | | |
| इतर साधनें | ... | ... | ९३ ते ९६ |
| प्रकरण ११ वें. उष्णतेचे व विद्युल्लतेचे | रत्नांवरील | | |
| परिणाम आणि रत्नांचा सुवास | ... | ... | ९७ ते ९८ |

| | | | |
|--|-----|-----|------------|
| उष्णतेचे परिणाम | ... | ... | ९७ |
| विजेचे परिणाम | ... | ... | ९८ |
| रत्नांचा सुवास | ... | ... | ९८ |
| प्रकरण १२ वें. रत्नांचे स्वभावसिद्ध स्फाटिक आकार | | | ९९ ते १०४ |
| प्रकरण १३ वें. रत्नांचे कृत्रिम आकार | ... | ... | १०५ ते १११ |
| प्रकरण १४ वें. रत्नावरील प्रकाशाचे परिणाम | | | १०६ ते १२९ |
| द्विवर्णत्व, त्रिवर्णत्व | ... | ... | १२१ ते १२३ |
| ध्रुवीभवन (Polarization) | ... | ... | १२३ ते १२४ |
| बहुवर्णत्व | ... | ... | १२४ ते १२८ |
| प्रकरण १५ वें. मोती सुधारण्यासंबंधी | ... | ... | १२९ ते १३६ |
| प्रकरण १६ वें. कृत्रिम रत्ने | ... | ... | १३७ ते १४८ |
| प्रकरण १७ वें. कृत्रिम रत्ने (पुढें चाल्) | | | १४९ ते १७० |
| कृत्रिम खोटी मोती | | | १४९ |
| कृत्रिम कल्चर मोती | ... | ... | १४९ ते १५५ |
| कल्चर विरुद्ध खरी मोती | ... | ... | १५५ ते १६६ |
| कल्चर मोत्यांचा दर्जा | ... | ... | १६६ ते १७० |
| समारोप | ... | ... | १७१ |
| परिशिष्ट १ लें मोत्यांचे रतीवरून चव करण्याच्या | | | |
| हिशेबाचें कोष्टक | ... | ... | १ ते २५ |
| परिशिष्ट २ रें वक्रीभवनदर्शक | ... | ... | २६ |
| परिशिष्ट ३ रें द्विवर्णत्व | ... | ... | २७ |
| परिशिष्ट ४ थें द्विवर्णत्वांत कोणत्या रंगाचे कोणते दोन | | | |
| दोन रंग दिसतात | ... | ... | २७ ते २८ |
| परिशिष्ट ५ वें रत्नांचे मराठी प्रतिशब्द | ... | ... | २९ ते ३१ |
| परिशिष्ट ६ वें रत्नविषयक थोडे पत्ते | ... | ... | ३१ ते ३२ |

रत्नांच्या बहुरंगी चित्रांची व आकृतींची यादी

मुख्य ग्रंथाच्या अगोदरची

पृष्ठ

१ खाणीतील हिरा, २ तयार हिरा, ३ खाणीतील माणिक, ४ तयार माणिक, ५ खाणीतील नीळ, ६ तयार नीळ, ७ खाणीतील

| | |
|---|----------|
| पांच, ८ तयार पाच, ९ तयार लसण्या, १० तयार याकूत, ११ | |
| ओपल तयार, १२ चुनडी तयार | १ |
| १३ खाणीतील याकूत, १४ मार्जारनेत्री तयार, १५ गोमेद तयार, | |
| १६ पिरोजा तयार, १७ अलेक्झान्ड्राइट (दिवसाचे प्रकाशांत), | |
| १८ ओपल खाणीतील, १९ अलेक्झान्ड्राइट (कृत्रिम प्रकाशांत), | |
| २० खाणीतील चुनडी, २१ खाणीतील पिरोजा | २ |

मुख्य ग्रंथास प्रारंभ झाल्यानंतरची

| | |
|---|------------|
| २२ बीमस्केल क्लास ' बी 'ची तराजू | ७४ |
| २३ पिकनामीटर अथवा स्पेसिफिक् ग्रॅविटी बॉटल | ९४ |
| २४ चित्र नं. १ घन, २५ चि. नं. २ अष्टपैलू, | |
| २६ चि. नं. ३ द्वादशपैलू | १०१ |
| २७ चि. नं. ४ चतुष्कोणपैलू, २८ चि. नं. ५ कुसुंदोद्भव (माणिक व इंद्रनील), २९ चि. नं. ६ वैदूर्यस्फटिक (पाच व सागरराग), ३० चि. नं. ७ काचमणि, ३१ चि. नं. ८ तोरमली.... | } १०२ |
| ३२ चि. नं. ९ पुष्पराग, ३३ चि. नं. १० पेरिडाट | |
| ३४ चि. नं. ११ स्वर्णवैदूर्य. ३५ चि. नं. १२ चंद्रकांतमणि | } १०३ |
| ३६ चि. नं. १३ स्पोड्यूमिन-कुंसाइट. ३७ चि. नं. १४ अम्याशोनाइट. ३८ चि. नं. १५ सूर्यकांतमणि. | |
| ३९, ४०, ४१ रत्नांची कृत्रिम बिलियन आकाराचीं तीन दृश्ये | १०६ |
| ४२ गुलामघाटी कृत्रिम आकाराचा माथ्याचा देखावा | } १०९ |
| ४३ " " " बाजूचा देखावा | |
| ४४ टेबलघाटी कृत्रिम आकाराचा माथ्याचा देखावा | |
| ४५ " " " बाजूचा देखावा | |
| ४६ साधा मदारघाटी, ४७ दुहेरी मदारघाटी ४८ पोकळ मदारघाटी | ११० |
| ४९ एकेरी वक्रीभवनाच्या स्पष्टीकरणार्थे चित्र, | ११७ |
| ५० दुहेरी " " " | ११८ |
| ५१ कालवाच्या दुल्हंत मौक्तिक आणि दुल्हंत व शिंपला यांचे दरम्यान प्रस्फोटक मौक्तिक कसे बनते हे दाखविणारे चित्र | १५२ |

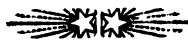
शुद्धिपत्र

सूचना:—हा ग्रंथ वाचणारांनीं कृपा करून ह्या शुद्धिपत्रकावरून तो प्रथम शुद्ध करून घ्यावा आणि नंतर वाचावा. तसें न केल्यास कित्येक ठिकाणीं अर्थ लागल्यासारखा वाटल्यामुळे वाचन अडत नाहीं, पण समज मात्र चुकीचा होऊन राहतो. म्हणून या सूचनेचा अखेर न करावा अशी सविनय विनंति आहे.

महत्वाचें शुद्धाशुद्ध खालीं दिल्याप्रमाणें आहे.

| पृष्ठांक | ओळ | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|----|-----------------|----------------------------------|
| १६ | २ | फुलाच्या | फुलाच्या हा शब्द नको. |
| १८ | २१ | त्याहेत | आहेत. |
| २६ | १३ | लसण्या. | लसण्या शब्दापुढें पूर्णविराम नको |
| ३२ | २७ | १२ | ४१२ (बारा आणे). |
| ४० | ७ | कांचमणि | काचमणि. |
| ४० | १३ | „ | „ याप्रमाणें इतरत्रही समजावें. |
| ४० | २४ | वल्लभ | वल्लभ. |
| ४२ | २७ | दाखविणारें, | दाखविणारें |
| ४२ | २८ | तो, | तो |
| ४८ | ८ | हीन्यावर | होन्यावर |
| ५३ | २१ | पावणार | पावणारें |
| ६१ | २२ | पहिलीं बोटें | पहिलीं चार बोटें |
| ६२ | ८ | शाके | शालें |
| ६२ | २६ | बन | बन |
| ६३ | २५ | दुसरा मेली दाही | दुसरा मेली |
| ७४ | २५ | खालीं | बाजूस |
| ७८ | १३ | वेदांतील | वेदांतांतील |

| पृष्ठांक | ओळ | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|-------|--|---------------|
| ८२ | ८ | रमाबाई | रमाबाई |
| ८७ | ९ | पांच | पाच |
| ९९ | २१ | कांचमणि | काचमणि |
| १०२ | ७ | कांचमणि | काचमणि |
| १०६ | २१ | (e) | (f) |
| १०६ | २३ | (f) | (g) |
| ११७ | १ व २ | ह्या ओळी वरची खाली व खालची वरती अशा छापल्या गेल्या आहेत ती चूक आहे. म्हणून दुसरी ओळ प्रथम वाचावी आणि नंतर पहिली ओळ वाचावी. | |
| ११९ | ७ | रनें | रनें |
| १२३ | २३ | (Ether)च्या | (Etherच्या) |
| १२४ | २० | निकालोच्या | निकोलच्या |
| १२९ | ६ | रनें. | रनें |
| १२९ | २६ | रेडियमचें | रेडियमच्या |
| १४० | २० | दुपडी | दुपेडी |
| १४८ | ५ | अंतररचनाही | अंतररचनाही |
| १५६ | २० | काढणारे | करणारे |
| १५७ | ५ | त्या थरांत | या थरांत ही |
| १६० | २ | तर या शब्दापुढे ' मौक्तिकजंतु त्यावर ' एवढे शब्द जास्त वाचावे. | |
| १६१ | २३ | दर्जाची | दर्जाचा |



उपोद्धात आणि प्रस्तावना

मौक्तिकप्रकाश, रत्नप्रदीप खंड १ ला व रत्नप्रदीप खंड २ रा हे तीन विस्तृत ग्रंथ छापले गेले असल्याने ह्या लहानशा पुस्तिकेची आवश्यकता काय आहे असा प्रश्न साहजिकच कोणीहि विचारील; म्हणून त्याचें उत्तर देणें क्रमप्राप्तच आहे.

मौक्तिकप्रकाश आणि रत्नप्रदीप खंड १ ला यांच्या प्रति थोड्याच काळांत विकल्या गेल्यामुळें इल्लींच्या गरजू लोकांना ते ग्रंथ उपलब्ध नाहीत. रत्नप्रदीप खंड २ रा याच्याहि प्रति फारच थोड्या अवशिष्ट आहेत. या तिन्ही ग्रंथांची एकूण किंमत दहा रुपये आहे. म्हणून ग्रंथ मिळते तरी ते पुष्कळांच्या आवांक्याबाहेर होते. रत्नें हा मुख्यत्वे करून श्रीमंतांचा विषय असला तरी रत्नांपैकीं मोतीं ही वस्तु लहानापासून मोठ्यां- (श्रीमंतां)पर्यंत सर्वांनाच लागणारी आहे. असें असतां तिजबद्दलची माहिती देणारीं पुस्तकें मात्र मिळत नाहीत; यामुळें सर्वसामान्य जनतेची षण मुख्यत्वे करून होतकरू जवाहिराच्या व्यापाऱ्यांची मोठी शोचनीय स्थिति होते. रत्नप्रदीप खंड २ रा प्रसिद्ध केल्या त्या वेळीं रत्नप्रदीप खंड १ ला ह्या पुस्तकास मागण्या आल्या. कारण हे ग्रंथ एकमेकांचे पूरक आहेत. असें असतां रत्नप्रदीपखंड १ ला न मिळल्यामुळें पुष्कळांची निराशा झाली. मौक्तिकप्रकाश हा ग्रंथ निवळ मोत्यांबद्दलचा आहे. त्यालाही मागणी अगोदरपासूनच सुरू होती. पण ती पुरी करणें शक्य झालें नाहीं. ह्या दोन्ही पुस्तकांचें पुनर्मुद्रण करावें तर ती एक मोठी खर्चाची बाब आहे. असें असूनही तीं मुद्रित करावीं तर खर्च भागण्या-पुरत्यासुद्धां पुरेशा मागण्या येणार नाहीत अशी भीति वाटत असते. कारण अशा औद्योगिक विषयांवरील ग्रंथांस मागणी परिमित असते. मात्र ज्यांना ते अवश्य पाहिजेत त्यांना ते न मिळाले तर त्यांची गरज मात्र दुसरीकडून भागत नाहीं; यामुळें त्यांची फार कुचंबणा होते. असा हा मोठा बिकट प्रश्न आहे.

यांतून मार्ग काढावयाचा म्हणजे त्या विस्तृत ग्रंथांच्या संक्षिप्त प्रति काढावयाच्या; पण हे काम कांहीं सोपे नाही. ग्रंथकर्त्यांच्या वयाचा (वय ७३ वर्षांचे) विचार करितां हे काम पार पाडण्याबद्दल त्यास भरंवसा वाटत नसल्यामुळे ते काम तसेच राहिले होते. इतक्यांत कोल्हापूरच्या व्यावहारिक ज्ञानकोशाकरितां रत्नांवरील संक्षिप्त लेख लिहिण्याबद्दल मागणी आली. यामुळे प्रोत्साहन मिळाले. म्हणून रत्नप्रदीप खंड १ ला यांतून त्याकरितां जी माहिती एकत्र जुळविली ती जमेस धरून आणि रत्नप्रदीप खंड २ रा आणि मौक्तिकप्रकाश हे पुस्तक चाळून त्यांतील माहिती जुळवून आणि चार नवीन माहितीचीं प्रकरणे लिहून ह्या एकंदर साहित्याचा हा लघुरत्नपरीक्षा ग्रंथ तयार केला आहे, यांतील माहिती रत्नवाङ्मयाचे जिज्ञासु लोकांस उपयुक्त व मनोरंजक वाटेल अशी अटकळ आहे. रत्नांचा व्यवसाय करणारे जव्हेरी आणि त्या व्यापारांत पडण्याची इच्छा असणारे हौशी उत्साही तरुण यांसही या ग्रंथाची बरीच मदत होईल असा भरंवसा वाटतो. आमचे नवीन उत्साही स्नेही व मुद्रणकलेचे तज्ञ आणि श्रीज्ञानेश्वर प्रेस, कोल्हापूरचे मालक श्रीयुत कृ. ह. सहस्रबुद्धे यांनी हे पुस्तक मुद्रित करण्याचे आंगावर घेऊन मुद्रणानंतरच्या ग्रंथकर्त्यांच्या परिश्रमाचे परिमार्जन केले याबद्दल त्यांचे आभार मानावे तेवढे थोडेच आहेत. हा अखेरचा आधार न मिळता तर कदाचित् ग्रंथ अमुद्रितही राहिला असता म्हणून या त्यांच्या उपकाराबद्दल ग्रंथकर्ता त्यांचा सदैव ऋणी राहील. त्याचप्रमाणे कोल्हापुरांतील स्कूल अँड कॉलेज बुकस्टॉलचे मालक भी. दा. ना. मोघे., बी. ए. हे या ग्रंथास प्रकाशक लाभले हे एक सुदैव होय.

या ग्रंथाची रूपरेखा अशी आहे:—रत्नप्रदीप खंड २ रा यांतील १ ते ८ (दोन्ही धरून) इतक्या प्रकरणांतील मजकुराचा सारांश आणि रत्नप्रदीप खंड १ ला यांतील १७ व्या प्रकरणाचा सारांश मिळून या ग्रंथांतील १ ले प्रकरण लिहिण्यांत आले आहे. त्यांतील सुमारे तीनशे पृष्ठांतील मजकूर या पुस्तकाच्या सात पृष्ठांत आणिलेला आहे. यावरून हो कितती त्रोटक असेल याची कल्पना येईल. इतका मजकूर कमी करण्याचे कारण त्यांतील बऱ्याच—विशेषतः भूशास्त्रांतील—मजकुराशी व्यव-

हारांत प्रत्यक्ष संबंध कमी येतो हें होय. हें पुस्तक प्रत्यक्ष व्यवहार करितांना लागणारे ज्ञान देणेंकरितांच लिहिलेले असल्यामुळे असें करणें अवश्य वाटले. प्रकरण २ रें यांत रत्नप्रदीप खंड १ मधील १ पासून १६ व्या (दोन्ही धरून) प्रकरणापर्यंत आलेल्या मजकुराचा सारांश दिलेला असून प्रकरण ३ रें व ४ थें यांत रत्नप्रदीप खंड १ मधील १८ ते २६ (दोन्ही धरून) प्रकरणांपैकी २५ वें प्रकरण वजा करून बाकीच्या प्रकरणांतील विषयांचा सारांश दिला आहे. रत्नाचे ज्योतिर्विषयक व धार्मिक उपयोग, मुहरापरीक्षा आणि रत्नाविषयीं विविध माहिती हीं प्रकरणें अजिबात गाळलीं आहेत; कारण त्यांतील मजकुराचा रत्नव्यवसायाशीं तितकासा निकट संबंध येत नाही. प्रस्तुत पुस्तकांतील प्रकरण ५ वें यांत रत्नप्रदीप खंड १ व २ मध्ये इतस्ततः विखुरलेलीं पण रत्नव्यवसायास अवश्य असलेली रत्नांची परीक्षा करण्याच्या साधनांची माहिती थोडक्यांत एकत्रित केली आहे. ती फार उपयुक्त आहे. प्रकरणें ६, ७, ८, ९ हीं अगदीं नवीं आहेत. एकूण प्रकरणें १ ते ९ (दोन्ही धरून) मिळून लघुरत्नपरीक्षेचा व्यावहारिक विभाग सिद्ध झाला आहे.

यानंतरचा विभाग शास्त्रीय विभाग होय. हा खराखुरा ज्ञाननेत्र आहे. एका ग्रंथकारानें म्हटलें आहे कीं, ' नहि शास्त्रं विनाचक्षुः रत्न-
ब्राणरथस्य तु ' म्हणजे रत्न, बाण आणि रथ हीं पारखण्याला शास्त्राची कसोटी हाच नेत्र होय. एवढ्याचकरितां आम्हीं रत्नप्रदीप खंड २ रा हें पुस्तक लिहिलें आहे. तें मोठें असल्यामुळे सर्वांस सुगम नाही; म्हणून त्यांतील निवडक अशा आवश्यक ज्ञानाचा लाभ थोडक्यांस व्हावा या उद्देशानें या पुस्तकांतील प्रकरणें १० ते १७ (दोन्ही धरून) लिहिलीं आहेत. र. प्र. खंड २ रा यांतील प्रकरणें २० व २१ हीं रत्नांचा इतिहास व रत्नांचें विदग्ध वाङ्मय या विषयाचीं आहेत तीं फारच मनोरंजक आहेत. पण रत्नोद्यमाशीं त्यांचा संबंध नाही म्हणून तींही गाळलीं आहेत.

या लघुरत्नपरीक्षेत व माशांच्या खवल्यांच्या सत्त्वाचीं मौक्तिकें तयार करण्याच्या पद्धतीचें वर्णनही गाळलें आहे. कारण त्याचाही प्रत्यक्ष रत्नव्यवसायाशीं संबंध कमी. तो विषय पूर्ण मौक्तिकविषयक ग्रंथाचा

आहे. मौक्तिकप्रकाश हा आमचा ग्रंथ वाढवून त्याची दुसरी आवृत्ति काढण्याचा विचार आहे. परमेश्वरकृपेने तो सिद्ध झाला तर त्यांत हा विषय वाचण्यास मिळेलच.

या पुस्तकांतील परिशिष्टांत पहिले परिशिष्ट मोत्याचे रतीवरून चव काढण्याच्या हिशेबाचे आहे. हे यांत समाविष्ट केल्यामुळे हल्ली रतीचे चव पहाण्याकरितां गुजराथी पुस्तकांचा उपयोग करावा लागतो तो करावा लागणार नाही. त्या पुस्तकांत फक्त हिशेब असतात. याशिवाय कांहीं माहिती असत नाही. हे लघुरत्नपरीक्षा पुस्तक जवळ बाळगिल्यास हिशेब पाहतां येऊन शिवाय रत्नासंबंधाची व्यावहारिक व शास्त्रीय माहितीही संग्रही राहिल अशी सोय झाली आहे. अशी ही योजना करून प्रस्तुतचें लघुरत्नपरीक्षा हें पुस्तक रत्नांचा व्यवसाय करणारांस व रत्नांची आवड असणाऱ्या सदृष्टहस्थांस क्षणोक्षणी उपयोगी पडावें या हेतूने लिहिलेले आहे. हा हेतु कितपत साधला आहे हे वाचकांनीच ठरवावें.

या पुस्तकांतील प्रकरण ६ वें 'करसंज्ञा आणि सांकेतिक भाषा' हें लिहिण्याचे कामीं मुंबईचे सुप्रसिद्ध रत्नांचे व्यापारी श्रीयुत वामनराव पेटे यांची बहुमोल मदत मिळाली. त्याचप्रमाणें प्रकरण ७ वें 'जवाहिराची वजन व तराजु' हें लिहिण्याचे कामीं जळगांव येथील सरकारी वज्रमापांचे इन्स्पेक्टर श्रीयुत हेरंब विठ्ठल दीक्षित यांनीं अमूल्य मदत केली. या दोघांचे आम्ही फार फार आभारी आहों.

शेवटीं ज्या जगन्नियंत्याच्या प्रेरणेने व कृपेने या पुस्तकाच्या लेखनाचे काम तडीस गेले त्याचे चरणीं विलीन होऊन विराम पावतो.

मिति श्रावण शुद्ध ५ शके १८६३ शालि. जळगांव.

तारीख २९ जुलई सन १९४१ इ०

शुभं भवतु.

—ग्रन्थकर्ता

ग्रन्थकर्ता

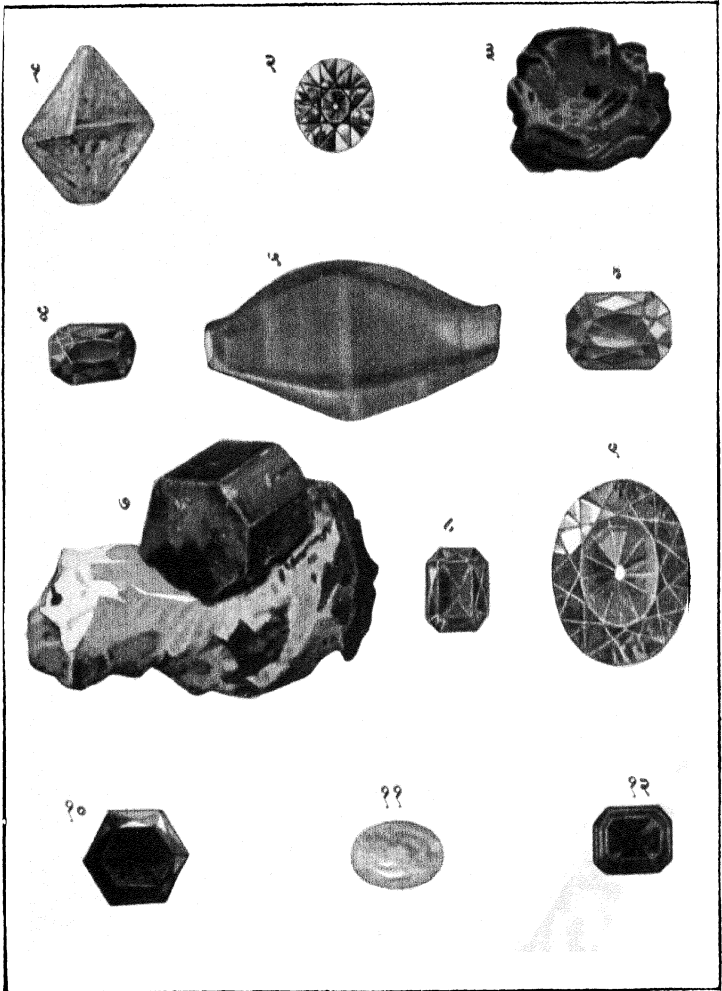


महादेव लक्ष्मण खांबेडे

व्यापारी व वकील, जळगांव

लघुरत्नपरीक्षा व्यावहारिक विभाग

धन्यं मंगल्यमायुष्यं श्रीमद्वसनसूदनम् ।
हर्षणं काम्यमोजस्यं रत्नाभरणधारणम् ॥



१ खार्णीतील हिरा

२ तयार हिरा

३ खार्णीतील माणिक

४ तयार माणिक

५ खार्णीतील नील

६ तयार नील

७ खार्णीतील पाच

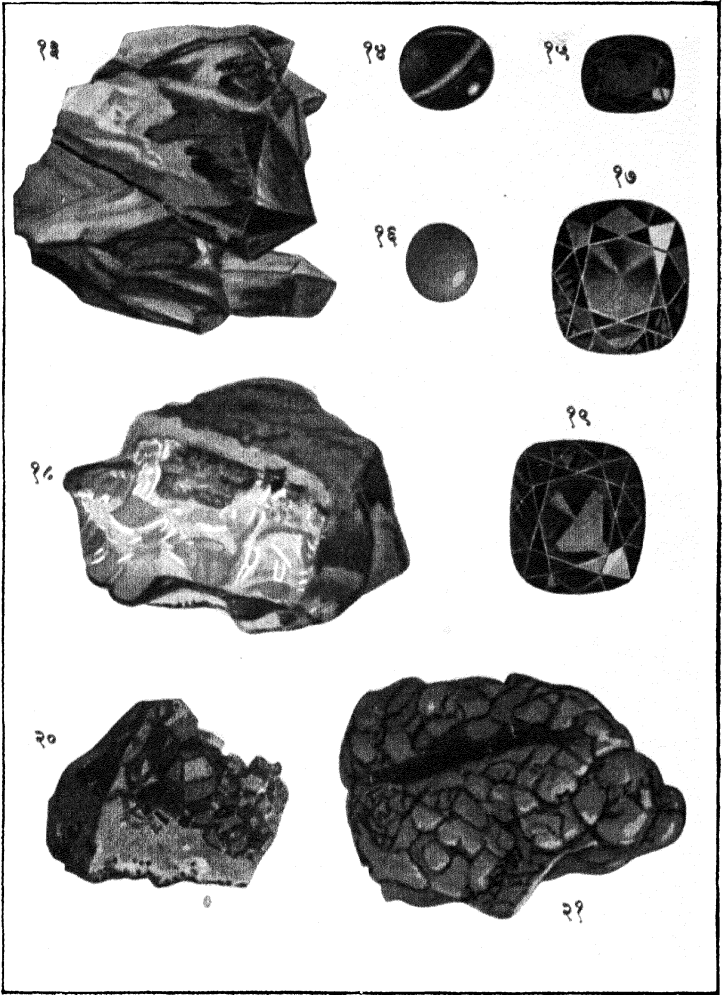
८ तयार पाच

९ तयार लसण्या

१० तयार याकून

११ तयार त्रांपल

१२ तयार चुनडी



१३ खाणींतील याकृत

१६ तयार पिरोजा

१८ खाणींतील आंघल

२० खाणींतील चुनडी

१४ तयार मार्जारनेत्री.

१७ अलेक्झंड्राइट (दिवसाचे प्रकाशांत)

१९ अलेक्झंड्राइट (कृत्रिम प्रकाशांत)

२१ खाणींतील पिरोजा

१५ तयार गोमेद

२१

लघुरत्नपरीक्षा

प्रकरण पहिलें

रत्नांचो उत्पत्ति, काठिण्य, तेज व आकार

मौक्तिक आणि प्रवाळ हीं रत्नें प्राणिज आहेत. अंबर अथवा तृण-मणि हें रत्न उद्भिज्ज आहे. बाकीचीं सर्व रत्नें खनिज आहेत. मौक्तिक, प्रवाळ आणि अंबर यांचें काठिण्य बेताचेंच असतें आणि त्यांचा आकारहि स्फटिकाप्रमाणें म्हणजे पैलूदार नसतो. मोत्याचें तेज हें त्यांच्या विशिष्ट रचनेचें आणि प्रकाशकार्याचें फल होय. प्रवाळाचें आणि अंबराचें तेज जिल्हूहून आलेलें असतें. खनिज रत्नांचें काठिण्य, तेज व आकार हे गुण त्यांस त्यांच्या उत्पत्तीच्या विशिष्ट परिस्थितीमुळें प्राप्त झालेले असतात.

रत्नें मुख्यतः सिलिका (सिकता-रेती), अल्युमिना, (अल्युमिनीयम धातूवर प्राणवायूचा म्हणजे ऑक्सिजनचा परिणाम होऊन तयार झालेली माती), चुना आणि कोळसा ह्या चार अगदीं सामान्य अशा द्रव्यांचीं बनलेलीं आहेत. असें असतां रत्नांचे मुख्य गुण जे काठिण्य, तेजस्विता आणि दुर्मिळता हे गुण त्यांस कसे प्राप्त झाले, त्यांस स्फाटिक आकार कसे आले, आणि त्यांस सुंदर व मोहनीय रूप कसें प्राप्त झालें याचा मोठा चमत्कार वाटतो. पण मौक्तिक, प्रवाळ, अंबर सोडून बाकीचीं खनिज रत्नें भूगर्भामध्ये, भयंकर वजनाखालीं, पराकाष्ठेच्या उष्णतेंत, रासायनिक घटना होऊन तयार होतात. ही परिस्थिति व तीमुळें घडणारा प्रकार हीं समजून आलीं म्हणजे हें कोडें उलगडतें.

खनिज रत्नांची उत्पत्ति अखिल सृष्टीच्या उत्पत्तीच्या मार्गांतच झालेली आहे. सर्व सृष्टीला अस्तित्व आणण्याकरितां जे विद्युत्कण उत्पन्न झाले त्यां-

पासूनच आपली पृथ्वि उत्पन्न झाली आहे. ही प्रथम तप्तधूममय होती. उष्णताविसर्जनामुळे ती द्रवमय होऊन निवत असतां तिच्या उदरांत अभिजन्य खडक उत्पन्न झाले. ते सर्व स्फटिकरूप आहेत. ह्या खडकांस नीस अथवा जंबूर दगड हें नांव देण्यांत आलें आहे. हे अभिजन्य खडक तयार होत असतां त्यांत माणिक, वैदूर्य, स्वर्णवैदूर्य, वज्रभासीय, लाल, चुनडी, तोरमली, याकृत, कांचमणि इत्यादि रत्ने तयार झालीं. पृथ्वीच्या गर्भातील अभिजन्य खडकानंतर सागरांच्या तलांवर स्तरित खडक तयार झाले. हे होत असतां त्यांत ज्वालामुखीचे स्फोट होऊन हिंदी हिरे विजावरश्रेणींत तयार झाले आहेत. तसेंच तेथल्या गर्भातील अत्यंत उष्णतेमुळे अल्यूमिना माती वितळून तिचीं तेथें माणिक व नील हीं रत्ने तयार झालीं आहेत. तशींच तेथील सिलिका वितळून तिचीं काच-मण्याचीं रंगीत रत्ने तयार झालीं आहेत. हें लक्षांत ठेविलें पाहिजे कीं, खडकांत सामान्यतः सिलिका, अल्यूमिना, चुना, लोह वगैरे अनेक द्रव्ये असतात. तथापि विशिष्ट स्थळीं विशिष्ट द्रव्ये असून निरनिराळ्या खडकांतील घटक द्रव्यांचें प्रमाणहि स्थलविशेषीं कमीजास्त असतें. यामुळे निरनिराळ्या ठिकाणीं निरनिराळीं खनिजे—रत्ने—तयार होतात. कोणताहि खडक वितळला म्हणजे त्या खडकांत असलेलीं सर्व द्रव्ये वितळून सर्वांचा एक संयुक्त जळजळीत रस तयार होतो. हा हळूहळू निवतो तसतशीं तेथें रत्ने तयार होतात. एकाद्या स्थळीं खडक बनण्याच्या क्रिया चालूं असतां कवचाच्या हालचालीमुळे, ज्वालामुखीमुळे व इतर कारणांनीं त्या ठिकाणीं अत्यंत उष्णता उत्पन्न होऊन तप्त रस तयार होतो. त्यावेळीं त्या ठिकाणच्या गर्भातील उष्ण वाफ प्रसृत होते. ती प्रथम तेथील नजीकच्या खडकाच्या फटींत शिरून त्या खडकास भाजून काढूं लागते. तिच्या मागोमाग तो तप्त रसही त्या फटींत शिरूं लागून तेथील खडकांस तो द्रवरूप देतो व नवीन तयार झालेल्या ह्या द्रवांत मिसळतो. अशा वेळीं ह्या दोन्ही प्रकारच्या तप्त रसांतील द्रव्यांची देवघेवही होते व ह्यामुळे दोन्ही खडकांत मूळचीं नसणारीं खनिजे ह्या देवघेवीमुळे अगदीं नवीन प्रकारचीं अर्शा तयार होतात. हे मिश्र खडक हळुहळू निवतात व निवतांना तेथें माणिक, नील, लसण्या हीं पूर्वपरिचित रत्ने आणि द्रव बनलेल्या दोन्ही खडकांत

पूर्वी तयार होत नसलेली अशी नवीन रत्ने चुन्यापासून झालेली चुनडी, पाच, स्पायनेल इत्यादि ही तयार होतात.

ह्या मिश्र खडकांस रूपांतरित अथवा विकृत खडक म्हणतात. जी रत्ने फार खोलांत तयार होतात, त्यांवर खडकांचें फार भारी वजन असल्यामुळें तेथील उष्णताविसर्जनास फारच मोठा कालावधि लागतो; पण ह्यामुळें तेथें खनिजांचें स्फटिकीभवन होऊन वाढ होण्यास मनसोक्त वेळ मिळतो; म्हणून फार खोलांत तयार झालेली रत्ने आकारानें मोठी आणि फार घन अथवा कठीण होतात. ह्यामुळें ही रत्ने रंगारूपानें मनोज्ञ आणि पोतानें घट्ट अशी असतात. पृथ्वीच्या उदरांत विकृत खडक तयार होण्याच्या क्रियेंतील जळजळीत तप्त रस ज्वालामुखीच्या स्फोटानें कधी कधी बाहेर वाहूं लागतो व तेथें त्या रसाचे थरावर थर बसून हळूहळू निवतात. हे ज्वालामुखीचे खडक होत. यांत कांचमण्याची रत्ने, हिरे वगैरे सांपडतात. विकृत खडकाच्या तप्त रसांत आलिविह्न जातीच्या रत्नप्रस्तराचें प्रमाण जास्त असल्यास त्यास नवीन सर्पेटाइन जातीच्या खडकाचें रूप येतें. अशा खडकांस दक्षिण आफ्रिकेंत ब्ल्यु ग्राऊंड अथवा निळी जमीन असें म्हणतात. तेथें या अशा जमिनींतून हिरे निघतात. हिऱ्याच्या उत्पत्तीच्या प्रकाराचें निश्चित ज्ञान अद्यापि झालें नाहीं हें खरें, तथापि ते खोल भूगर्भांत तयार होतात एवढें निश्चित झालें आहे, तेथें कार्बन आणि ग्राफाइट पुष्कळ आहेत. त्यावर खोलांतील अत्यंत उष्ण पाणी व प्रचंड भार यांचा परिणाम दीर्घकाल होऊन त्याचा धातुमय—कदाचित् लोहमय—कार्बन बनला असावा व त्या कार्बनला पुढें हिऱ्याचें रूप आलें असावें असें हल्लींचें मत आहे. खोल भूगर्भांतून ज्वालामुखी स्फोटानें ते वर येतात. स्तरित खडकांतहि हिरे सांपडतात ते असेच खालून पृष्ठभागापर्यंत आलेले व नंतर वाहून जाऊन स्तरित खडकांत समाविष्ट झालेले असेच असतात.

रेती, माती, चुना, कोळसा ह्यांसारख्या फुसक्या द्रव्यांस हिरेमाण. कांत असणारें जें काठिण्य उत्पन्न झालें तें ती रत्ने तयार होत असतां पृथ्वीच्या खोल भागांत व अत्यंत उष्णतेंत जें त्यांच्यावर भयंकर दडपण

पडलें व तें अगणित काल राहिलें त्याचा परिणाम होय, जीं रत्नें पृथ्वीच्या उथळ भागांत तयार होतात तीं त्या मानानें कमी कठीण असतात. रत्नांस आलेले तेज व रंग हे गुण अन्तर्भागांतील दाटीत झालेल्या घर्षणाच्या व उष्णतेच्या परिणामाचा व सूक्ष्म प्रमाणांत त्यांत लोहक्रोमादि मिसळलेल्या रंजक द्रव्यांचा परिणाम आहे. पृथ्वीवर नेहमीं दिसणारे त्याचें उदाहरण मृदु व भुरकट मातीचीं मडकीं तयार करून व भाजून कुंभार त्यांस टणकपणा (काठिण्य) आणि लाली आणतो हें होय. मडकें जितकें उत्तम भाजावें तितका टणकपणा व लाली त्यांत जास्त येतें. मातीच्या मडक्यांत हे धर्म आणणारे दडपण व उष्णता कितीशी असते ? त्याच्या हजारोपट जास्त उष्णता व दडपण पृथ्वीच्या पोटांत असतें. शिवाय पडीझडीनें व दुसऱ्या रासायनिक क्रियादि अनेक कारणांनीं ह्या दोन्हीं कारणांची पृथ्वीच्या अंतर्भागांत वाढ होत असते आणि अशा स्थितींत रत्नांचीं घटक द्रव्ये हजारोहजार वर्षे दडपलेलीं असतात. अशा परिस्थितींत असलेल्या उष्ण रसांतून रत्नें निर्माण होतात. यामुळें त्यांस काठिण्य वगैरे गुण येतात. हा उष्ण रस हळुहळू निवत गेला म्हणजे रत्नांस निरनिराळे पैलूदार आकार लाभतात. हे आकार धारण करण्याचा धर्म घटकांच्या परमाणूंस स्वाभाविक असतो. ह्यामुळें आपलेपणामुळें निरनिराळ्या जागीं एकत्र आलेले परमाणू आपापला स्फटिकाकार धारण करतात. हा धर्म प्रत्यक्ष प्रयोग करून तुरटीच्या साधनांनं स्पष्ट करून दाखवितां येतो. पाणी कढत असतां त्यांत पुष्कळ तुरटी विरघळवून तो द्रव सावकाश आटूं दिला म्हणजे तुरटीचे सुंदर अष्टपैलू स्फटिक बनतात. खनिज पदार्थांचा हा एक धर्मच आहे. मात्र हें कढतें पाणी सावकाश निवूं दिलें पाहिजे. म्हणजेच त्यांतून तुरटीचे स्फटिक वेगळे होतात. एरवीं असे स्फटिकाकार होणार नाहींत. रत्नांस ह्या धर्मांमुळेंच पैलूदार आकार येतो. निरनिराळ्या घटक द्रव्यांच्या रत्नांचे निरनिराळे पैलूदार आकार होतात. म्हणून प्रयोगार्थ निरनिराळा स्फटिकाकार घेणारीं द्रव्ये कुटून तीं पुनः एकत्र मिसळलीं व त्यांचे स्फटिक होऊं दिले तर कुटलेल्या द्रव्यांप्रमाणें त्यांचे निरनिराळ्या जातीचे भिन्नभिन्न स्फटिकाकार तयार होतात. त्यांत चूक होत नाहीं. हेंही एक सोपा प्रयोग करून दाखवितां येईल. चूर्णीकृत मोरचूत आणि चूर्णीकृत तुरटी यांचें सारख्या

प्रमाणांत मिश्रण करून तें उकळत्या पाण्यांत विरवावें व कांहीं वेळ कढें द्यावें व नंतर सावकाश थंड होऊं द्यावें. थंड झाल्यावर मोरचुताचे निळ्या रंगाचे व तुरटीचे विनरंगी स्फटिक निरनिराळे तयार झाल्याचें आढळेल.

भूगर्भांत निरनिराळ्या रत्नांस लागणारीं भिन्नभिन्न घटक द्रव्यें एकत्र द्रवरूप झालेलीं व एकमेकांत मिसळलेलीं असतात. त्यांतून भिन्न-भिन्न रत्नांचे घटक निराळे कसे होतात व त्यांचीं भिन्नभिन्न रत्नें कशीं तयार होतात हा एक महत्त्वाचा प्रश्न उत्पन्न होतो. त्याचें उत्तर असें आहे कीं, भिन्नभिन्न रत्नांचे घटकांत स्वतंत्र आपलेपणा असतो. ह्यामुळें तप्त रसांतील उष्णतेच्या साहाय्यानें ते घटक परमाणु स्वजातीयांशीं एकरूप होतात. या परमाणूच्या धर्मास आपलेपणा (Natural selection) हें नांव आहे. ह्या धर्मांमुळें मिश्रित रसांतून निरनिराळ्या रत्नांचे घटक परमाणु भिन्न होऊन ते निरनिराळा स्फटिकाकार घेतात. रत्नांचा दुसरा धर्म असा आहे कीं भिन्न भिन्न रत्नें उष्ण तेच्या भिन्न भिन्न अंशांवर रत्नत्व पावतात. सर्व रत्नांस तयार होण्यास एकाच अंशावरील उष्णता चालत नाही; म्हणून तप्त रस हळूहळू निवत असतां ज्या ज्या अंशांवर त्याची उष्णता येईल त्या त्या अंशांवर तयार होणारीं रत्नें त्या त्या वेळीं तयार होतात. ह्यामुळें रत्नें तयार होण्यांत धांदल अगर चूक होत नाही. याप्रमाणें एकत्र मिश्रित रसांतूनच भिन्न भिन्न रत्नें भिन्न भिन्न वेळीं तयार होतात. हीं गर्भांत तयार झालेलीं रत्नें कधीं भूस्फोटाच्या जोरामुळें ज्वालामुखींतून उडून बाहेर पसरतात, (असा प्रकार हिऱ्यासंबंधानें घडतो.) अथवा पर्वतीकरणाच्या क्रियेमुळें पर्वत-शिखरावर आलेलीं आढळतात अगर पर्वताच्या अन्तर्भागीं निरनिराळ्या खोलींवर आलेलीं असतात. पृष्ठभागावर पसरलेलीं रत्नें प्रवाहाबरोबर नदीनाल्याच्या गाळांत अगर समुद्राच्या बालुकेंत जाऊन पडतात. तेथून व अन्तर्भागांत निरनिराळ्या खोलींवर आलेलीं रत्नें खाणींमधून माणसांच्या हातीं लागतात.

रत्नांचें वर्गीकरण

रत्नांचे पुष्कळच प्रकार आहेत. त्यांचे महारत्ने व उपरत्ने असें दोन विभाग केले गेले आहेत. ज्या रत्नांचा रंग घवघवीत व चमकणारा असून मृदु व मोहनीय असतो, जीं बहुतेक कमी जास्ती पारदर्शक असतात, ज्यांचें तेज भारी असतें, हिऱ्याखेरीज जीं वजनदार असून उत्तम जिल्हई येण्यासारखीं असतात, त्यांची गणना महारत्नांत केली गेली आहे. ज्या रत्नांत हेच गुण कमी प्रमाणांत असतात तीं उपरत्ने म्हटलीं गेलीं आहेत. अगदीं प्राचीन काळीं माणिक, हिरा व मोतीं एवढ्यांसच महारत्ने म्हणत. पुढें पाच आणि पुष्पराग यांचीहि गणना महारत्नांत होऊं लागली. नंतर त्यांत आणखी नील, गोमेद, लसणिया आणि पोवळें ह्यांचा समावेश करून त्या सर्वांस मिळून नऊ महारत्ने म्हणूं लागले. प्राचीन काळीं माणिक ह्या रत्नास पहिलें स्थान होतें. कारण त्या वेळीं हिऱ्याचें पूर्ण तेज बाहेर आलें नव्हतें. हिऱ्याचें तेज अठराव्या शतकाच्या सुमारास त्याला विलियन आकार देण्यांत येऊं लागल्यापासून मनस्वी वाढून त्यांत अग्निसदृश चमक (फायर) दिसूं लागली, त्यामुळें त्याचा क्रम माणकावर जाऊन त्यास पहिल्या प्रतीचें रत्न म्हणूं लागले.

उपरत्नांचें परिगणन निरनिराळ्या ग्रंथांत निरनिराळें केलेलें दिसतें. त्यांत कित्येक ठिकाणीं महारत्ने व उपरत्ने ह्यांच्या पोटभेदांसही उपरत्नांत समाविष्ट केलेलें आहे. हीं पोटरत्ने त्या त्या महारत्नांच्या आणि उपरत्नांच्या वर्णनांत प्रतिष्ठित केलीं पाहिजेत. तीं वजा जातां महत्त्वाचीं उपरत्ने अवशिष्ट राहतात तीं:- चुनडी, तोरमली, कांचमणि, अकीक, पेरोज, राजावर्त, पीलु (जेड), अंबर, वज्रभासीय (झिकॉन), ककेंतन, मासमरणि, मंचक, कर्कोद, सुगंधी, टिट्टिभ, रुचक, उत्पल, गंधशस्य, पिंड, सीस, नीलांग, शेषमणि, कर्पूराश्मा, मुक्ताशुक्ति आणि शंख. ह्याशिवाय नामनिर्देश न केलेलीं जमेस धरलीं तर उपरत्नांची संख्या शंभरांवर होते. उपरत्नांपैकीं निवडक उपरत्नांचें मात्र वर्णन पुढें केले आहे.

रत्नांची परीक्षा

पूर्वकालीन ग्रंथांतून सांगितलेली रत्नपरीक्षा नेत्रेंद्रिय, स्पर्शज्ञान, निकष (कसोटी) इत्यादि साधनांनीं होत असे. अली कडे रत्नांचें पृथक्करण केलें गेल्यामुळें त्याच्या घटकांचें ज्ञान झालेलें आहे त्यावरून, प्रकाशसाधनें उपलब्ध झालेलीं आहेत त्यावरून, रत्नावर होणाऱ्या उष्णतेच्या व विद्युल्लतेच्या परिणामावरून, तसेंच विशिष्टगुणत्व, दार्ढ्य, भिदुरता, स्फटिकरचना वगैरे परीक्षून रत्नें ओळखण्याची शास्त्रीय पद्धति निघाली आहे. क्ष किरणांनींही त्यांत आपला वांटा उचलिला आहे. यामुळें सांप्रत परीक्षेचीं शास्त्रीय साधनें विविध झालीं आहेत. त्या योगानें खऱ्याखोऱ्याची पारख तज्ज्ञाला त्वरित व बिनचूक होऊं शकते.

प्रकरण दुसरें

रत्नांचें संक्षिप्त वर्णन महारत्नें

१ हिराः—घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति—कर्ब (कार्बन—शुद्ध कोळसा) ह्या मूलद्रव्याचा हिरा बनलेला आहे असें शास्त्रीयरीत्या सिद्ध झालेले आहे. हिऱ्याला रत्नमुख्य म्हणतात. हिंदुस्थान हिऱ्याची आद्य भूमि आहे. येथें हिरे सांपडण्याचे तीन मुख्य प्रदेश आहेत. (१) एक प्रदेश मद्रास इलाख्यांत कृष्णा व गोदावरी यांच्या खोऱ्यांत व त्याच्या दक्षिणेस कडाप्पा, बल्लारी, कर्नूल व उत्तरेस भद्रचेलम् हीं ठिकाणें. यासच गोवळकोंड्याच्या खाणी म्हणत. वास्तविक खुद्द गोवळकोंड्यास हिऱ्याच्या खाणी मुळींच नसून येथें हिऱ्यांचा मोठा व्यापार होत असे. त्यावरून तेथच्या हिऱ्यांस गोवळकोंड्याचे हिरे म्हणत. (२) दुसरा प्रदेश महानदी व गोदावरी ह्या दोन नद्यांमधील होय. या प्रदेशांत संबळपूर आणि वैरगड या ठिकाणीं हिऱ्याच्या मोठ्या खाणी आहेत. (३) तिसरा प्रदेश बुंदेलखंडांत आहे. तेथील पन्ना शहराजवळ मुख्य खाणी आहेत. ह्या प्रदेशांपैकी कृष्णा—गोदावरीच्या प्रदेशांत कोल्हूर येथें प्रसिद्ध कोहिनूर हा हिरा सांपडला होता.

येथें हिरे रेती व चिखल यांच्या संचयांत; अथवा गोटे, गारगोट्या, रेती यांच्या गड्ड्यांत सांपडत. हल्लीं हिंदुस्थानांत पन्ना येथें कांहीं हिरे अद्याप सांपडतात. बाकी बहुतेक ठिकाणें बंद आहेत. सन १९३६ सालच्या सरकारी भूगर्भपाहणीखात्याच्या वृत्तांतावरून कळतें कीं ह्या सालीं हिंदुस्थानांत १४५७ क्यारट हिरे सांपडले. ते मुख्यत्वेकरून पन्ना संस्थानांत सांपडले. इतरत्र क्वचित् थोडी पैदास होते. हिंदुस्थानचे पूर्वेकडील बोर्निओ, मलाक्का, जावा, सेलिबीज या बेटांत हिरे सांपडतात.

इ. स. १७२८ साली दक्षिण अमेरिकेतील ब्राझिल देशांत हिरे सांपडू लागले. तेथे ते हिरे मुख्यत्वेकरून रतींत सांपडत. ब्रिटिश ग्वायनांत स. १८१० साली हिरे सांपडू लागले. उत्तर अमेरिकेत क्यालिफोर्निया, वर्जिनिया आणि मेक्सिको या देशांत हिरे सांपडतात. सांप्रत दक्षिण आफ्रिकेत सर्वांत मोठ्या व महत्त्वाच्या हिऱ्याच्या खाणी आहेत. येथील खाणींचा शोध इ. स. १८६७ साली लागला. सर्व जगांतील मोठा कलियन हिरा येथे सांपडला. उरल पर्वतांत—तसेंच ऑस्ट्रेलिया, न्यू साउथ वेल्स आणि तास्मानिया यांतही हिरे सांपडतात.

(२) नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य, भिदुरता व विशिष्ट-गुरुत्व:—निरनिराळ्या रत्नांचे अणु निरनिराळा स्फटिक आकार धारण करतात. स्फटिकीभवनांने झालेले खाणींतील नैसर्गिक हिऱ्याचे आकार बहुशः अष्टपैलू असतात. कधी कधी ह्या अष्टपैलूंच्या प्रत्येक पैलूंत तीन अगर सहा आणखी पैलू असतात. असा हिरा बहुतेक वर्तुळाकार म्हणजे अंडाकृति होतो. हिऱ्याचे हिंदी कृत्रिम आकार अनेक आहेत. त्यांपैकी (१) परब हा पातळ असून बिनपैलूंचा असतो. (२) पलचा हाहि पातळ पण त्याच्या एका बाजूस पैलू असतात. (३) त्रिलंदी यास एका बाजूस पैलू असून माथ्यावर टोक असते. (४) मुखलसी यास दोन्ही बाजूस पैलू असतात. (५) चादर यास सर्वांगभर पैलू असतात. हिऱ्याचे विलायती कृत्रिम आकार त्रिलियन, गुलाबघाटी, टेबलघाटी, पायऱ्यांचे टेबलघाटी मदारघाटी इ० आहेत. ह्या सर्व आकारांत त्रिलियन हा प्रमुख असून ह्या आकाराच्या कारणाने हिऱ्यांत आगीसारख्या लकेरी मारतात व अनेक रंगांच्या तेजस्वी छटा मारतात, यामुळे हा फार दीप्तिमान दिसतो. हिऱ्याचे काठिण्य सर्वांत अधिक असते. ते दहा या आंकड्याने दर्शवितात. कोळशासारख्या फुसक्या व दुस्त काळ्या द्रव्यास जे अत्यंत काठिण्य आणि लोकोत्तर तेज येते त्याचे कारण असे आहे की, त्यावर पृथ्वीच्या खोल गर्भांत कोट्यवधि टनांचे वजन पडते व तेथे ते द्रव्य अशा वजनाखाली गर्भातील तीव्रतम आंचेने वर्षोवर्ष शिजत असते; हे वजन, ही उष्णता व हा काल ह्याचा परिणाम त्या द्रव्यावर घडून आल्याने त्याचा फुसकेपणा जाऊन त्याच्या अणूंत लोकोत्तर

काठिण्य येतें आणि काळिमा जाऊन लोकविलक्षण तेज म्हणजे चकाकी येते.

हिरा इतका कठीण असला तरी पैलूशीं समांतर अशा चार ठिकाणी तो फुटणे शक्य असतें. पण भलत्याच भागावर आघात केला तर तो फुटत नाही. म्हणून अडाणीपणानें तो अभेद्य म्हटला जातो.* हिरा फोडतां येतो इतकेंच नव्हे तर त्याचें चूर्णहि करितां येतें. हें चूर्ण हिरे व इतर रत्नें यांस जिल्हई देण्याकरितां वापरतात.

दक्षिण आफ्रिकेंत सांपडलेला सर्वांत मोठा कलियन हिरा त्यास असलेला ऐत्र (दोष) काढून टाकण्याकरितां हिऱ्यांतील भिदुरतेच्या दिशे-नेच फोडण्यांत आला होता. तो एका घांवाबरोबर फुटला. भिदुरतेची दिशा पारखून काढल्यावर तो फोडण्यास श्रम कांहींच लागत नाहींत. हिऱ्याचें विशिष्टगुरुत्व ३.५२ असतें.

(३) रंग, तेज, उपयोग, किंमत—जो हिरा अगदीं निभेंळ, पाण्याच्या त्रिंदूसारखा दळदळीत, पूर्ण पारदर्शक, आणि पूर्ण रंगहीन

* दुसरा लोकभ्रम असा आहे कीं टेंकणाच्या रक्तानें हिरा भंग पावतो म्हणजे फुटतो. हा लोकभ्रम जारी होण्याचें कारण वैद्यक ग्रंथांत आहे. रसरत्नसमुच्चय या वैद्यकीयग्रंथांत हिऱ्याचें भस्म करण्याचा एक प्रकार सांगितला आहे. त्यांत असें लिहिलें आहे कीं:—

विलिप्तं मत्कुणस्यास्त्रे सप्तवारं विशोषितम्
कासमर्दरसापूर्णे लोहपात्रे निवेशयेत्
सप्तवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु

याचा अर्थ असा कीं वज्राला (हिऱ्याला) टेंकणाच्या रक्ताचा लेप देऊन तें वाळवावें. असें सात वेळ करावें. नंतर कासविदाच्या रसानें भरलेल्या लोखंडाचे पात्रांत तो हिरा ठेवावा. मग त्याला सात वेळ कोळ-शाची आंच द्यावी म्हणजे खरोखर हिऱ्याचें भस्म होईल. याचा अनुभव आम्हांला नाहीं. असें भस्म होत असलें तरी एकट्या टेंकणाच्या रक्तानें तें होत नाहीं. त्याच्यापुढील विधि केले म्हणजे होतें. पण तेवढ्यावरून टेंकणाच्या रक्ताच्या संसर्गानें हिरा भंग पावतो हा प्रवाद खरा नाहीं.

असतो तो उत्तम जाणावा. तथापि उत्तम सफेत म्हणजे रंगहीन असून त्यांत थोडी निळ्या रंगाची झांक असेल तरी तो उत्तमांत गणतात; किंबहुना अशा नील वर्णाच्या झाकीचा हिरा सर्वांत उत्तम असेंही कित्येक मानतात. पिवळ्या रंगाचा हिरा हलका समजतात. पाचेसारखे हिरवे, माणकासारखे लाल, व निळे असे हिरे अत्यंत दुर्मिळ होत. गवतासारख्या हिरव्या रंगाचे हिरे मिळतात त्यांस 'वनस्पति हिरा' म्हणतात. गुलाबी रंगाचे हिरे बरेच असतात. कित्येक हिरे काळ्या रंगाचेही असतात. कित्येक फिकक्या रंगाच्या हिऱ्यांचा रंग रेडियमच्या साहाय्याने हिरवागार करितां येतो.

हिऱ्यांचें तेज त्यांत शिरणाऱ्या प्रकाशकिरणांच्या परावर्तनांनै फार वाढतें आणि वक्रीभवनांनै हिऱ्यांतून इंद्रधनुष्यासारख्या निरनिराळ्या रंगांच्या मजेदार लकेरी मारतात. नैसर्गिक आकाराच्या हिऱ्यांतल्यापेक्षां कृत्रिम विलियन आकार दिलेल्या हिऱ्यांतून हे दोन्ही चमत्कार फार मोठ्या प्रमाणांत दृष्टीस पडतात. हिऱ्याच्या उच्चतम काठिण्यामुळे त्यास दिलेली जिल्हई तशीच उच्चतम चमकदार होते.

हिऱ्याचा मुख्य उपयोग दागिने करण्याकडे होतो. हिऱ्याच्या आंगठ्या फार प्राचीनकाळापासून वापरण्यांत येत आहेत. हिरा हें शुक्राचें प्रिय रत्न आहे. शुक्राची पीडा न व्हावी म्हणून हें आंगावरही वापरतात. देवादिकांच्या किरीटांत, राजेलोकांच्या गळ्यांतील हारांत, त्यांच्या तरवारीच्या मुठींवर, हत्ती-घोड्यांच्या शृंगारांत, फार काय पण नौकादिक वाहनांवरही अनेक प्रकारांनीं बसवून हिरे वापरण्यांत येतात.

बोर्ट आणि कार्बोनेडो हे काळ्या रंगाचे हिरे कठीणतर असल्यानें कातळास भोंकें पाडण्याकडे* त्यांचा उपयोग हल्लीं करित असतात. हिऱ्याच्या साहाय्यानें सर्व रत्नांस भोंकें पाडतां येतात. जात्या अणकुचीदार टोंकाचा हिरा मुठींत बसवून कांचा कापण्याकडे व कांचावर अक्षरें कोरण्याकडेही त्याचा उपयोग करतात.

* इंद्र आपल्या वज्रानें (हिऱ्यानें) पर्वताचें चूर्ण करितो असा लौकिकी प्रवाद आहे. त्याचा व्यावहारिक असाच अर्थ घेतल्यास याचा उपयोग फार प्राचीन काळापासून इकडे असाच होत आहे असेंच म्हणावें लागेल.

सफेत, पाणीदार, कांतिमान व निर्दोष हिरा फार महाग विकतो. असा हिरा आकारानें बिलियन असून वजनानें २ ते १० रतीपर्यंत असल्यास त्याची किंमत दर रतीस ४०० ते १००० रुपये पर्यंत असते. तोच सदोष व रंगानें पिंवलसर असल्यास दर रतीस २०० ते २५० रुपये पर्यंत किंमत पडते. देशी पैलू असलेले हिरे १५ ते १२५ रुपये रतीपर्यंत मिळतात. बिनपैलूंचे ह्यापेक्षाही कमी किंमतीस मिळतील. बेघाट हिऱ्यास किंमत पाऊणपट व सदोष हिऱ्यास पावपट पडते.

(४) हिऱ्याचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय हिरे, हिऱ्याची परीक्षा व प्रख्यात हिरे:-हिरा निर्मळ, हलका, वीज-अग्नि-इन्द्रधनुष्य यांच्यासारख्या लकेरींनी चमकणारा, प्रकाशाचें आत्यंतिक परावर्तन करणारा, कोणत्याही पदार्थावर चरा पाडण्याइतका कठीण असणें हे हिऱ्याचे गुण आहेत. काळे, पांढरे, तांबडे छाटे, रेषा, खाडे व जाळें असणें हे हिऱ्याचे दोष आहेत. हिऱ्यांत तीन मोठे काळे छाटे असल्यास त्या दोषास काकपद म्हणतात.

कांचेचा एक प्रकारचा रांधा तयार करितात, त्यास पेस्ट किंवा स्ट्रास म्हणतात. त्याचे कृत्रिम हिरे करतात. कांचमण्याचे (कार्टझचे) ही कृत्रिम हिरे अनेक ठिकाणीं करितात; गोमेद, पुष्पराग, वैदूर्य यांचेहि कृत्रिम हिरे करतात.

नैसर्गिक रत्नांचे जे घटक आहेत तेच घेऊन त्यांचीं तीं तीं रत्नें अलिकडे तयार करूं लागले आहेत त्यांस शास्त्रीय रत्नें असें म्हणतात. हीं कल्चर मोत्यांचीं भावंडेंच आहेत. असे शास्त्रीयरीत्या माणिक व नील बनवितां येतात. व्यापारांत उपयोग करतां येईल असे शास्त्रीय हिरे अद्याप तयार होऊं लागले नाहींत.

हिऱ्याची परीक्षा करणें हें नजरेचें काम आहे. तें अभ्यासानें येतें. सर्व रत्नांपेक्षां हिऱ्यांत लखलखीतपणा व तेज जास्त असतें. त्यांत अनेक रंगाच्या तेजस्वी छटा मारतात. हिऱ्याचें आंग (पोत किंवा घडण) इतर रत्नांपेक्षां कठीण दिसतें. त्याचा स्पर्शहि हाताला कठीण लागतो. हिऱ्यावर काणस लागू होत नाहीं. हिऱ्यानें सर्व रत्नांवर चरा पडतो.

इतर रत्नें हिऱ्यावर चरा पाडूं शकत नाहींत; पण चमत्कार असा कीं, हिऱ्यानें हिरा कापला जातो. खऱ्या हिऱ्याची टाळ वरऱ्या बाजूस मारते; खोट्याची आंतल्या बाजूस मारते व खोलगट दिसते. खरा हिरा तेजाबांत टाकिला तर जशाच्या तसा राहतो. खोटा फुटून त्याचे तुकडे होतात. खरा हिरा विद्युज्जागृत होतो म्हणजे त्याला रेशमी वस्त्रानें घासून जवळ हलका कापूस नेला तर तो त्यास ओढून घेतो. खोट्यानें तसें होत नाहीं. खऱ्या हिऱ्यावर मुखानें श्वास टाकिला असतां त्यावर पांडुरकेपणाची झांक कांचेवर टाकिलेल्या श्वासाचे झांकेपेशां जास्त दाट येते व तांबडतोव्र जाते. कांचेवरची जास्त वेळ टिकते. हिऱ्याचा स्पर्श कांचेपेशां जास्त थंड असतो, स्वच्छ पाण्यांत खरा हिरा ठेविला तर त्याची चकाकी व तेज कायम राहेंत व पैलू जशाचे तसे दिसतात. खोट्या हिऱ्याची चकाकी पाण्यांत मंद होते व पैलू वांकडे-तिकडे व टोबळ दिसतात. सूक्ष्मदर्शक यंत्रानें पैलू पाहिल्यास नकली हिऱ्याचे जशाचे तसे दिसतात, पण खऱ्या हिऱ्याचे पैलू एका रेषेंत दिसत नाहींत. कृत्रिम हिरा कांचेचा केलेला असल्यास आंत रेंघोट्या व बारीक बुडबुडे दिसतात. खऱ्या हिऱ्यांत तसें दिसत नाहीं. विशिष्टगुरुत्वावरून, नैसर्गिक स्फाटिक आकारावरून व पारखण्याच्या आणखीही काहीं शास्त्रीय तऱ्हा आहेत त्यांवरून खऱ्याखोट्याची पारख करितां येते.

ऐतिहासिक व जगप्रसिद्ध असे अनेक हिरे आहेत. त्यांपैकीं कोहिनूर ५००० वर्षांपूर्वी कोलूरच्या खार्णींत सांपडलेला आहे. तो हल्लीं इंग्लंडच्या राजाजवळ आहे. हा हिरा भारतवर्षीय वीरपुरुष कर्ण वापरीत असे. एकंदर जगांत प्रसिद्ध शुभ्र हिरे सुमारे २० आहेत. पैकीं निम्मेपेशां अधिक हिंदुस्थानांत सांपडलेले आहेत. सर्वांत मोठा शुभ्र हिरा कलियन हा दक्षिण आफ्रिकेंतील खार्णींत सांपडला. इतर रंगाचे प्रसिद्ध हिरे सुमारे १४ आहेत. त्यांपैकीं सुमारे निम्मे हिरे दक्षिण आफ्रिकेंतील खार्णींत सांपडलेले आहेत.

माणिक—(१) घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति—माणिक हें रत्न कुरुविंदाचें बनलेलें आहे. कुरुविंद अथवा कुरुंद यास इंग्रजीत या

शब्दाचाच अपभ्रंश झालेला कोरंडम हा शब्द आहे. याची शास्त्रीय सारणी Al₂O₃ अशी आहे. यावरून याचे घटक अॅल्युमिनियम आणि ऑक्सिजन हे असल्याचें स्पष्ट होतें. अॅल्युमिनियमच्या मूलतत्त्वाचा ऑक्सिजनशी संयोग होऊन जो गंज अथवा जंग तयार होतो त्याला अॅल्युमिनियमचा ऑक्साईड हें शास्त्रीय नांव आहे. व्यावहारिक भाषेत ह्यास अॅल्युमिना माती अथवा फटकीचें सत्त्व म्हणतात. हें पांढऱ्या रंगाचें असून जांब्या दगडांत सांपडतें. ही माती अगदीं शुद्धावस्थेंत असतां अथवा तींत सुमारे शेंकडा १ इतकीं रंग देणारीं प्राणिजें असतां तिचें स्फटिकीभवन झालें म्हणजे तिचीं शुभ्र, व रंगीत माणकें—नील, पुष्पराग इ० मौल्यवान रत्नें बनतात. ह्या मातींत चुना, सिलिका वगैरे पदार्थांचें मिश्रण असलें तर तिचे सामान्य कुरंद, एमेरी वगैरे पाषाण बनतात. निर्भेळ कुरंद रंगहीन असतां त्याचें शुभ्र रंगाचें माणिक होतें. त्यांत क्रोमिक ऑक्साईडचें सूक्ष्म मिश्रण असतां तांबड्या रंगाचें माणिक होतें.

माणकाचे मुख्य प्रकार दोन आहेत. एक पद्मराग नांवाचें लाल माणिक व दुसरें नीलगंधी. नीलगंधी हें बाहेरून तांबूस पण अंतर्भागीं निळसर असतें. हेंही पद्मरागाप्रमाणें श्रेष्ठ मानतात. ह्याची उत्पत्ति लंकेतील रावणगंगेंत होते.

माणकाचे ओबडधोबड खडे खार्णीत, खडकांत, नदीचे गाळांत व रेतीरेवशात सांपडतात. भूगर्भातील घडामोडींनीं आणि पृथ्वीच्या गर्भातील उष्णता व उष्ण पाणी यांचा व्यापार घडून विकृत खडक तयार होण्याच्या क्रियेंत द्रवरूप झालेले खडक हळूहळू थंड होत असतां त्यांतील कुरंदाच्या घटकांचे पट्टकोन पद्धतीचे स्फटिकाकार तयार होतात. भूकंप, पर्वतीकरण वगैरे क्रियांनीं भूगर्भातील भाग भूपृष्ठावर येऊन तेथून पुनः पर्जन्यानें धुपून गेला असतां त्याबरोबर हीं रत्नें नद्यांच्या प्रवाहांत व गाळांत गेलेलीं सांपडतात. ब्रह्मदेश, सयाम, सीलोन, अमेरिकेंतील उत्तर क्यारोलिना, रशियांतील ओरेनबर्ग, आफ्रिकेंतील न्होडेशिया व हिंदुस्थानांत म्हैसूर, मद्रास-कडे, पंजाबांत व उदेपूर ह्या शहराजवळ माणकें सांपडतात. माणकांची सर्वांत जास्त पैदास ब्रह्मदेशांत होते. लाल नांवाचें माणिक ब्रह्मदेशांत क

सीलोनांत सांपडतें. पेरू देशांतील केपलंड पर्वतावर लाल फार सांपडतात. किरमिजी अगर पारव्याच्या रक्तासारखीं उत्कृष्ट लाल माणकें ब्रह्मदेशांतील मोगाक शहराजवळ सांपडतात. तेथें सन १९३६ सालीं १५५३८१ क्यारेट वजनांचीं माणकें सांपडलीं.

(२) नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य व विशिष्टगुरुत्व:—
माणकाचा नैसर्गिक आकार स्फटिकशास्त्रांतील षट्कोणपद्धतींरैकीं समभुज ह्या पोटभेदात येतो. तथापि प्रत्यक्ष तो तितका रेखीव असत नाही. तो अनेकदां लघुकोन पड्भुज मनोऱ्याप्रमाणें असतो. माणकाचे नैसर्गिक खडे घांसून त्यांस गोल, तिकोनी, षट्कोणी, अष्टकोणी, कमलघाटी वगैरे अनेक तऱ्हेचे देशी आकार देतात. हल्लीं माणकांस विलियन आकारही देऊं लागले आहेत. माणकाचें काठिण्य ९ आहे. ह्याचें काठिण्य हिऱ्याचे खालोखाल असल्यामुळें ह्यानें हिऱ्याशिवाय इतर रत्नांवर चरा पडतो. ह्याचें विशिष्टगुरुत्व ४.६ आहे.

(३) माणकाचा रंग, तेज, उपयोग, किंमत:—माणकाचा रंग लाल असतो; पण पांढऱ्या रंगाचींही माणकें आढळतात. ह्या रत्नाचा लालसर रंग कमीजास्त गहिरा किंवा अगदीं फिक्का लाल असाही असतो. पारव्याच्या रक्तासारखा लाल रंग उत्कृष्ट मानितात. त्यांत किंचित् निळ्या रंगाची झांक असल्यास तो मनपसंत मानितात. माणकाचा रंग सर्व आंगभर सारखा असतो असें नाही. हें रत्न गहिऱ्या लाल रंगापासून तों जांभळ्या रंगापर्यंत अनेक प्रकारच्या लाल रंगांचें असतें. सर्वांगानें स्वच्छ गहिऱ्या लाल रंगाच्या माणकास फार करून लाल असें म्हणतात. उत्तम लाल तो कीं, जो पाणी भरलेल्या रौप्य पात्रांत ठेविला असतां आपल्या प्रभेनें पाण्यास किंचित् रक्तमय भासवितो; अथवा अंमळ हातावर ठेविला तर सभोंवार लाल प्रभा पसरवितो. हा अमूल्य आहे. लाल लहान असल्यास त्यास माणकी म्हणतात. माणकाच्या काळसर रंगाच्या जातीस श्याम म्हणतात. कांहींचा रंग दुधक, लाल—पांढुरका, लालसर गुलाबी, फिक्का गुलाबी असतो. कांहीं माणकें गुलवाशीच्या फुलाच्या रंगाचीं, कांहीं जास्वंदीच्या फुलाच्या रंगाचीं, कांहीं पिकलेल्या डाळिंबाच्या दाण्याच्या रंगाचीं असतात.

जास्वीच्या फुलाच्या रंगाचीं सर्वांत उत्तम, गुलबाशीच्या रंगाचीं त्याच्या खालोखाल, आणि त्याच्याखालोखाल डाळिंबीच्या फुलाच्या दाण्याच्या रंगाचीं समजतात. काळसर व सफेत माणकें निकृष्ट मानितात. उत्कृष्ट माणकाचें तेज हिऱ्याच्या तेजाजवळजवळ असतें. परंतु जास्त जास्त मलिन रत्नांत तें वज्रसदृशापासून कांचसदृश होत जातें. कांहीं माणकांत खैराच्या निखान्यासारखी प्रखर प्रभा दिसते; अशी प्रभा सिंहलद्वीपांत सांपडणाऱ्या माणकांत आढळते.

माणकांचा उपयोग फार प्राचीन काळापासून जडावाच्या दागिन्यांत होत आला आहे. प्राचीन काळीं कानाच्या दागिन्यांत व आंगठ्यांत माणकांचा उपयोग करीत. सांप्रतही माणकाच्या आंगठ्या करितात. तसेंच माणिक, पाच वगैरे मौल्यवान रत्नांच्या मौल्यवान कंठ्याही करितात. माणकांच्या लोलक, लालड्या करून त्या दागिन्यांत वापरतात. श्रीमंत लोक कोट वगैरे कपड्यांचीं बटणे हीं माणकाचीं करितात. प्राचीन काळच्या आर्य राजांच्या मुकुटास माणकें लावीत असत. टांचणीच्या डोक्याएवढ्या माणकांचा उपयोग खिशांतील घडयाळांच्या चक्रांना आधार देण्याकडे करितात. हिंदुस्थानांत माणकांस फार करून पैलू न पाडतांच वापरतात; पण पैलू पाडून वापरण्याची प्रथा दिवसेंदिवस जास्त पडत चालली आहे. पूर्वीच्या काळच्या गोल व लांबट माणकांचे मण्यांस हल्लीं पैलू पाडून त्रिलि. यन आकार देतात. माणिक हलकें असल्यास त्याचा भाव मालाच्या दर्जाप्रमाणें १ रुपयापासून २५ रुपये रतीपर्यंत असतो. चांगले व मोठे खडे असल्यास त्यांचा भाव ५० रुपये रतीपासून ४०० रुपये रतीपर्यंत असतो. उत्तम पैलू पाडलेला लाल दोन रतीहून जास्त वजनाचा असल्यास त्यास २०० रुपये रतीपासून १००० रु. रतीपर्यंतहि किंमत पडते. अस्सलप्रमाणें उत्तम कृत्रिम शास्त्रीय माणकें तयार होऊं लागल्यानें नैसर्गिक माणकांची किंमत सध्या उतरली आहे.

(४) माणकाचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय माणकें, त्यांची परीक्षा, प्रख्यात माणकें व पोटारत्नें:-तुळतुळीत, स्वच्छ, तेजस्वी, वजनदार, सुंदर आकृतीचें, प्रभेनें सर्वत्र भरलेलें पण त्यांतही विशेषतः

मध्यभागी कांतियुक्त व अतिलोहितवर्ण असें माणिक असणें हे माणकाचे गुण समजतात. माणकाच्या वरच्या बाजूस दुधकाची चादर पडल्यासारखी दिसणें म्हणजे फिक्का दुधासारखा पांढरा रंग पसरल्यासारखा दिसणें हा त्याचा ऐत्र म्हणजे दोष आहे. तसेंच आंतल्या बाजूस छोटे असणें, बारीक कण असणें, रेषांसारखें जाळें असणें, धूम्ररंग अथवा अभ्रासारखा अंधुकपणा असणें, खाडे असणें, एक प्रकारचें फूल असणें हेहि त्याचे दोष आहेत.

कांचमण्यासारख्या रत्नास उष्णता देऊन त्यास सूक्ष्म तडे पाडून त्यांतून आत रंग भरून उत्कृष्ट अशीं माणकें व दुसरीं अनेक रंगांचीं अन्य जातींचीं कृत्रिम रत्नें तयार करितात. शिवाय कांचेचा पेस्ट अथवा स्ट्रास नांवाचा रांधा तयार करून त्याचींहि माणिकसुद्धा सर्व प्रकारचीं रत्नें तयार करितात. अशीं रत्नें वापरण्यानें काळीं पडतात.

शास्त्रीय रत्नांची व्याख्या हिऱ्याबद्दल लिहितांना दिली आहे. शास्त्रीय रत्नें माणिकें व इंद्रनील यांचीं फार करितात. नैसर्गिक व शास्त्रीय रत्नांचे घटक एकच असल्यानें त्यांचे गुणधर्मही एकच असतात. तथापि त्यांस ओळखून काढण्याचीं निश्चित साधनें उपलब्ध झालीं आहेत. त्यांपैकीं महत्त्वाचीं अशीं कांहीं खालीं दिलीं आहेत:—

(अ) शास्त्रीय रत्नांत हवेचे लहान बुडबुडे असतात व ते बहुधा गोल असतात. नैसर्गिक रत्नांत असे क्वचित्च आढळतात. तेही गोल नसून ओबडधोबड, कोणयुक्त व कांहींसे स्फटिकाकार असतात.

(आ) शास्त्रीय रत्नांच्या अंतर्भागीं रेषा असल्यास त्या बांकदार असतात. नैसर्गिकांतील सरळ असतात.

(इ) शास्त्रीय रत्नांचा रंग अनेकदां सर्वत्र एकसारखा असतो. नैसर्गिकांमधील रंग एकाच रत्नाच्या निरनिराळ्या भागांत कमीजास्त असतो. नैसर्गिकांत रंगाचे पट्टे असले तर ते बांकदार कधींही नसतात. समांतर अथवा इतस्ततः पसरलेले असतात.

(ई) नैसर्गिक माणिक व नील या रत्नांत दुधक हा दोष पुष्कळ वेळां आढळतो. तसा पांढुरकेपणा शास्त्रीय रत्नांत कधीं दिसला तरी तो

दुर्बिणीतून पाहिला तर तो दुधक नसून ते बुडबुड्यांचे थवे असल्याचें आदळून येतें.

(उ) नैसर्गिक रत्नांच्या पृष्ठभागाला जितकी सफाई असते तितकी शास्त्रीय रत्नांत नसते.

माणकांसुद्धां सर्व कृत्रिम रत्नांची परीक्षा काठिण्य, विशिष्टगुरुत्व या साधनांनीं करून तीं ओळखितां येतात. हिऱ्याचे खालोखाल माणिक व नील यांचें काठिण्य आहे, म्हणून हिऱ्याशिवाय बाकीच्या रत्नांनीं त्यांवर ओरखडे पडत नाहींत. माणिक व नील यांवर काणस चालत नाहीं. माणिक व नील ह्यांनीं ह्याच रत्नांवर आणि हिऱ्याशिवाय बाकीच्या सर्व रत्नांवर चरे पाडितां येतात म्हणून या साधनानें हीं रत्नें ओळखितां येतात. कांचेचीं कृत्रिम माणकें व नील काणशीनें तांबडतोव कानसले जातात, यामुळें त्यांचा खोटेपणा तेव्हाच दिसून येतो.

खरीं खोटीं रत्नें कसोटीवरूनही ओळखतां येतात. रत्न कसोटीवर घांसतांना हलकें गेलें तर तें कृत्रिम होय. कढविलें असतां ज्या रत्नाचा तजेला जातो तेंही कृत्रिम होय असा रत्नशास्त्राचा आदेश आहे. 'युक्ति-कल्पतरू'त लिहिलें आहे कीं, " स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजातिलिंग खलु सार्वजन्यम् " म्हणजे फार कमी तुळतुळीतपणा, हलकेपणा, आणि मृदुपणा हीं नकलीं रत्नांचीं सर्वसाधारण चिन्हे आहेत. (हलकेपणासंधानें हिरा मात्र अपवाद समजावा.) प्रत्येक जातीच्या रत्नाचें विशिष्टगुरुत्व निरनिराळें असतें म्हणून तें तपासून रत्नें एकमेकांपासून व नकली रत्नांपासून निवडतां येतात. याला शास्त्रीय रत्नें मात्र अपवाद त्याहेत. प्रकाशाचीं अनेक साधनें आहेत त्यांचाही उपयोग कृत्रिम अकृत्रिम रत्नें ओळखण्यास करितां येतो. माणकास घांसलें असतां तें विद्युज्जागृत होतें. रत्नें ओळखण्यास रंग हें साधन मात्र बहुतेक निरुपयोगी आहे. कारण एकाच जातीचीं रत्नें अनेक रंगांचीं असतात. मात्र निष्णात पारखी रत्नांच्या तेजाच्या सूक्ष्म छटा पाहून रत्नांची परीक्षा करूं शकतात.

ब्रह्मदेशच्या खार्णीत एक ४०० क्यारट वजनाचें प्रचंड माणिक सांपडलें होतें; त्याचा एक तुकडा सत्तर क्यारटचा, दुसरा पंचेचाळीस

क्यारटचा असे करून त्याचीं दोन कांतीव माणकें तयार करण्यांत आलीं. बाकी राहिलेल्या तुकड्यांचीं तिनकांतीव स्थितींतच सात लाख रुपये किंमत आली. शिवाय ह्या खाणींत दुसरें मोठें माणिक ३०४ क्यारट वजनाचें व तिसरें १७२ क्यारट वजनाचें सांपडलें होतें. कबूतराच्या अंड्या-एवढें मोठें माणिक रशियाच्या राणीजवळ होतें. पारिस येथें ८१३ रति वजनाचा सुमार अर्घ्या अंड्याएवढा एक लाल आहे. रशियाच्या राणीच्या मुकुटांत एक लाल कबूतराच्या अंड्याएवढा होता.

माणकाचीं पोटरेलें सौगंधिक (Spinel), कुरुविंद (Rubicelle), मांसखंड (Balas Ruby) वगैरे अनेक आहेत.

नील अथवा शनि-(१) घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति-माणकाप्रमाणें नील हें रत्नही कुरुविंदोद्भव (कुरुंदापासून झालेलें) आहे. कुरुंदाचे प्रस्तरांत टिख्यानिक प्राणिलाच्या सूक्ष्म मिश्रणानें ज्यास निळा रंग येतो त्यास नील अथवा शनीचें रत्न म्हणतात. एकाच खाणींत माणिक व नील हीं अनेकदां सांपडतात. उत्पत्तिसंबंधानें आणि सांपडण्याच्या तऱ्हासंबंधानें माणकाचीं केलेलीं वर्णनें नील ह्या रत्नालाही लागू पडतात. नीलाच्या जगांतील मोठ्या खाणी सयाम (श्याम) ह्या देशांत आहेत. येथील नील आकारानें मोठे आणि गुणांनीं सरस असतात. ब्रह्मदेशांत व सीलोनांतही नीलाची उत्पत्ति होते. सीलोनांत रत्नपूर नगराजवळ सांपडणारे नील तेजस्वी असतात. इराणांत, हिमालयाच्या वायव्येकडील भागांत, व पंजाबांतही नील सांपडतात. शिवाय अमेरिका, युरोप, आफ्रिका व ऑख्रेलिया ह्या खंडातही थोडेफार नील कित्येक ठिकाणीं सांपडतात.

(२) नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य व विशिष्ट-गुरुत्व-नील व माणिक हीं कुरुंदार्चींच होत असल्यानें माणकांप्रमाणेंच नीलाचेही आकार, काठिण्य आणि विशिष्टगुरुत्व हीं एकसारखींच आहेत.

(३) नीलाचा रंग, तेज, उपयोग, किंमत-नीलाच्या रंगापैकीं सर्वांत उत्तम रंग गहिरा, मखमालीच्या रंगाचा होय. हा फक्त इंद्रनील ह्या जातींत आढळतो. आळशीच्या फुलाच्या रंगाच्या निळाला किंमत

फार येते. अगदीं फिक्रट पाण्येर निळ्या रंगापासून तों गहिरा होत जात जात उत्तम आळशीच्या फुलाच्या घवघवीत निळ्या रंगापर्यंत जाणाऱ्या ह्या रंगाच्या अनेक पायऱ्या असतात. त्याहूनही पुढें हा रंग काळ्या शाईसारख्या रंगाचा होत गेलेला असतो. लालसर व धूम्रवर्णाचेही नील असतात. शास्त्रीय तऱ्हेनें केलेल्या कृत्रिम नीलरत्नाचा रंग नैसर्गिक नील-रत्नाच्या उत्तम रंगाप्रमाणें असूं शकतो. पुष्कळसे इंद्रनीलमणि रात्रीपेक्षां दिवसास चांगले दिसतात. पण मोटाना येथून येणारे इंद्रनील विजेसारख्या तेजानें युक्त असे निळे असतात ते मात्र दिवसापेक्षां रात्रीच्या कृत्रिम प्रकाशांत फार चमकतात. रंगाची तकाकी आणि पारदर्शकता हीं ह्या रत्नांत महत्त्वाचीं समजलीं जातात. म्हणून अशा नीलाला फार किंमत पडते. निळाचे तारे असतात, त्यांचें तेज चांगलें असतें.

आपल्या रत्नविषयक ग्रंथांतून इंद्रनील, महानील, वर्णाढ्य, जलनील वगैरे निळाच्या जाती दिल्या आहेत. ज्या निळाच्या मध्यभागीं इंद्रधनुष्याप्रमाणें प्रभा दिसतात त्यास इंद्रनील म्हणतात. अन्यत्र असेंही म्हटलें आहे कीं, इंद्रनील मण्यांत निळ्या रंगाच्या पंक्ति असतात. जो आळशीच्या फुलाच्या रंगाचा असून दुधांत ठेविला असतां दुधाला निळा रंग आणितो त्यास महानील म्हणतात. जो नील बालसूर्यासमोर ठेविला असतां निळी प्रभा ओकतो त्यास वर्णाढ्य हें नांव आहे. जलनील हा फिक्रट निळ्या रंगाचा असून वजनानें हलका असतो. हीं नांवें हल्लींच्या रत्नांच्या व्यापाऱ्यांचे मुखांतून ऐकूं येत नाहींत.

नीलरत्न हें शनीचें प्रिय रत्न आहे. म्हणून शनीदेवाला प्रसन्न ठेवण्याकरितां ह्या रत्नाची आंगठी करून वापरतात. शनीला प्रिय म्हणून ह्या रत्नाचें नांवही शनी असेंच पडलें आहे. नवप्रहाचे आंगठींत हें बसवावें लागतें. तें १। रति वजनाचें असावें लागतें व शनीच्या होऱ्यावर बसवावें लागतें. आंगठीशिवाय इतर रीतीनेंही हें शरीरावर धारण करितात.

नीलाची किंमत करणें झाल्यास त्याचा आकार, रंग, तेज, ऐत्र यांचा विचार करून करितात. नैसर्गिक साधारण नील ५ रुपये रतीपासून १०० रुपयेपर्यंत मिळतो. अगदीं हलके नील ह्याहूनहि कमी किंमतीस

मिळतात. ऐब्रदार नीलाची किंमत पाऊणपट, व घाट कमी व मड अशा नीलाची किंमत पावपट समजावी. मोराच्या मानेवरील अथवा पिसान्यावरील रंगाप्रमाणे ज्यांत सतेज लकेर मारते त्या नीलास ५०० ते १००० रुपये रतीप्रमाणे किंमत पडते; पण एकंदरीत माणकापेश्यां नीलाची किंमत कमी असते. शास्त्रीय नीलाची किंमत फारच कमी म्हणजे सुमारे आठ आणे क्यारटप्रमाणे असते.

(४) नीलाचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय नील, त्यांची परीक्षा व प्रख्यात नीलः—जडपणा, तुळतुळीतपणा, सर्वांगभर सारखा उत्तम रंग, बाजूता प्रकाश फांकत असणे, व विद्युज्जागृति हे नीलाचे गुण समजतात. नीलाचे अंतर्भागीं अभ्रासारखा पडदा असणे, रेतीसारखे कण असणे, फुटीर असणे, रंग रूक्ष दिसणे, आंत दुधक असणे, छटे, जाळे, रेघा व खळगे असणे हे नीलाचे दोष होत. ह्याच्या कृत्रिम व शास्त्रीय प्रकारांची माहिती माणकाप्रमाणे समजावी. नीलाची परीक्षा माणकाप्रमाणेच करावी.

हल्लीं माहीत असलेल्या प्रख्यात नीलांपैकीं बरेचसे नील हिंदुस्थानांत सांपडलेले आहेत. सर्वांत मोठा एक नील १९०० क्यारट वजनाचा व दुसरा ९५१ क्यारट वजनाचा असे दोन नील ब्रह्मदेशाच्या राजाच्या खजिन्यांत होते म्हणतात. ब्रह्मदेशांतील माणकाच्या खाणींत मोठे नील सांपडतात. तेथे सन १९२८ सालीं ४५६ रति वजनाचा नील पूर्ण निर्दोष व उत्तम वर्णाचा असा सांपडला होता. इ. स. १९२३ सालीं ब्रह्मदेशाच्या खाणींतून १०२००० क्यारट वजनाचीं नीलरत्नें निघालीं.

पाच अथवा पन्ना

(१) घटना उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति-पाचेचा मुख्य घटक सिलिका आहे. सिलिका म्हणजे सिकता-रेती. पांढरी वाळू ही शुद्ध सिलिका होय. पाचेच्या घटनेत सिलिकेशिवाय अल्युमिनियम आणि बेरिलियम (अथवा ग्लूसिनम) हे धातुही असतात. त्यातील बेरिल या धातुमुळे पाश्चात्य लोक यास बेरिलचे म्हणजे वैडूर्याचे रत्न म्हणतात. बेरिल हा शब्द संस्कृत वैडूर्य ह्या शब्दापासून निघालेला दिसतो. संस्कृतांत पाचेला वैडूर्य हें एक

नांव आहे. विदुर पर्वतांत हें रत्न सांपडे म्हणून त्यास 'वैदूर्य' म्हणजे विदुरोत्पन्न हें नांव प्राप्त झालें. इतर कांहीं रत्नांप्रमाणें हें पाश्चात्य देशांत गेल्यावर त्यांस त्यांतील घटक बेरिल धातु असल्याचें आढळल्यावरून त्यांनीं यास 'बेरिलचें रत्न' हें नांव दिलें. हल्लीं पाच हिंदुस्थानांत फारशी निपजत नाही; पण पूर्वी तिची उत्पत्ति येथें बरीच असावी असें दिसतें. पाच फक्त हिंदुस्थानातून येते असें प्लिनीनें आपल्या ग्रंथांत लिहिलें आहे.

पाच ह्या रत्नाच्या मुख्य खाणी कोलंबिया, ब्रेझिल व पेरू ह्या अमेरिकेंतील देशांत आहेत. प्राचीन काळीं ईजिप्त देशांतील खाणींतून पाच काढीत असत. आशिया खंडांतील उरल व अल्ताई पर्वतांत व सैबेरिया व ब्रह्मदेश या देशांत पाचेच्या खाणी आहेत. मद्रास इलाख्यांत कांहीं पाचेच्या खाणी असून खंवायतेंत व अजमीर प्रांतांत पाचेचे प्रस्तर सांपडतात. पाचेची व्यापारी उलाढाल कलकत्ता व मुंबई येथें फार होते.

(२) नैसर्गिक व कृत्रिम आकार, काठिण्य व विशिष्ट-गुरुत्व—पाचेचे समपार्श्व षट्कोनी आकाराचे खडे खाणींत सांपडतात. कृत्रिम आकारापैकीं त्रिलियन आकार कित्येक पाचरत्नांस देण्यांत येत असतो. हिरेमाणकांप्रमाणें अनेक कृत्रिम आकार ह्या रत्नांसहि दिलेले आढळतात.

ह्याचें काठिण्य हिऱ्याचें पुष्कळ खालीं म्हणजे $७\frac{1}{2}$ असल्यानें हिऱ्याचे दागिन्यांत पाचेचे दागिने टेंविले असतां त्यास चरे पडतात. पाचेचें विशिष्टगुरुत्व २.६७ पासून २.७३२ पर्यंत असतें. पन्ना बराच ठिसूळ असल्यामुळे हातांतून खालीं पडल्यास त्यास तडे पडतात. म्हणून फार काळजीनें वापरावा लागतो.

(३) रंग, तेज, उपयोग, किंमत—उत्तम पाचरत्न सतेज गवताच्या हिरव्या रंगाचें असतें. हा रंग त्यास क्रोमियमच्या प्राणिलानें आलेला असतो. पाचेच्या हिरव्या रंगांत दुसऱ्या कोणत्या तरी रंगाची झांक असते. पिवळी सोनेरी सतेज झांक असल्यास तो पन्ना उत्तमांत गणिला जातो. झांक सतेज पिवळी नसल्यास तो मध्यम समजतात. पिवळी झांक नाही व हिरवा रंगही कमी अशी पाच कनिष्ठ समजावी. ह्याहीपेक्षां

हलके पन्ने म्हणजे जे पांढरे असून त्यांत थोडीशी हिरवी झांक असते ते. कित्येक पन्ने हिरव्या काळसर रंगाचे असतात. ह्याची एक चारा म्हणून जात आहे, ती हिरव्या गवताच्या रंगाची असते. पाचेची चमक कांचे-सारखी असते. पाचेचें तेज अत्यंत कोमल असल्यामुळें त्यास तकाकी फार मारते. एकाच रंगाचा व भरपूर पाणीदार पन्ना असला आणि तो तळहातावर ठेवून त्याजकडे सूक्ष्म नजरेने पाहिलें, तर त्यांतून किरणांच्या सूक्ष्म लकेरी फुटून बाहेर पडताहेत कीं काय असें दिसतें व तळहात हिरवा दिसतो. असा पन्ना पाणी भरलेल्या कांचेच्या पेल्यांत ठेविला तर पाण्याचा रंग हिरवा दिसूं लागतो. हा पन्ना अमूल्य होय.

पाचेचा उपयोग आंगठ्या करण्याकडे फार होतो. दुसऱ्याहि नाना प्रकारच्या दागिन्यांत पाचेचा उपयोग करितात. हिरव्या थंड रंगामुळें श्रीमंत लोक पाचेचे चष्मे बनवितात. हिंदुस्थानांत पूर्वी पाचेचा लांबट मणी करून वापरीत असत. हल्लीं तेच मणी कापून त्यांस सोन्याच्या कोंदणांत बसवून वापरतात. पाऊण रति वजनाचा खडा घेऊन तो बुधाचे होऱ्यावर नवग्रहाचे आंगठींत बसवितात. पन्ना हें बुधाचें प्रिय रत्न आहे.

पाचेची किंमत अलीकडे फार वाढली आहे. उत्तम पाचेस दर रतीस ५०० ते १५०० रुपयेपर्यंतहि किंमत पडते. हलके खडे फिकक्या रंगाचे, आंत रेपा असून पैलू पाडलेले अशा खड्यांस क्षिरम म्हणतात. त्याचा भाव दर रतीस २५ ते १५० रुपयेपर्यंत असतो. खडा तेजाला मट्ट असल्यास किंमत पावपट येते.

(४) पाचेचे गुणदोष, कृत्रिम व शास्त्रीय पाच, तिची परीक्षां व प्रख्यात पन्ना-तुळतुळीत, तेजस्वी, बालतृणाच्या वर्णांचे, पूर्ण निर्मल, वजनदार आणि कोमल असणें हे पाचेचे गुण आहेत. रक्षता, विस्फोट म्हणजे अन्तर्भागीं फोडासारखा ऐत्र असणें, छाटे, मळकटपणा, आंत रजःकण असणें, निस्तेजता आणि खडा रंगीवैरंगी असणें हे पाचेचे दोष आहेत.

अनेक द्रव्यांच्या मिश्रणानें पाचेकरितां रांध्याची कांच तयार करून तिचे तुकडे पाडितात. ते पाचेसारखे हिरवे चकचकीत होतात. त्यांस

बिलियनसुद्धां सर्व आकार देऊन पॉलिश करून कृत्रिम पाचेचीं रत्नें हुबेहुब तयार करितात. खोट्याला खऱ्याच्या तुकड्याची जोड देऊन दुबेळकीं, तिबेळकीं रत्नें तयार करितात. हीं मिश्र रत्नें गरम अगर थंड पाण्यांत अगर दारूंत अगर क्लोरोफॉर्ममध्ये बुडवून ठेविलीं तर त्यांचे सांघे निखळून तीं ओळखतात. पाचेचा खडा सूर्यतेजाकडे धरून त्याचें निरीक्षण करावें. आंत बुडबुडे दिसतील तर तो खोटा म्हणून समजावें. बंद करून बसविलेल्या खड्याखालीं रंग असतो म्हणून त्याचा तपास करावा. उष्णतेच्या साह्यानें अथवा धक्का देऊन स्फटिक मणि पिचवून त्याचे फटीं-तून अंतर्भागीं रंग शिरवून कृत्रिम पत्त्रे तयार करितात. त्याप्रमाणें केलें आहे कीं काय ह्याचें निरीक्षण करावें आणि पत्त्र्याचा सौदा करावा.

अमेरिकेंत हॅपशायरमध्ये पाच रत्नाचा (बेरिलचा) १॥ टन वजनाचा एक स्फटिक सांपडला होता. डेव्हानशायरचे ड्यूकसाहेबांचे ताब्यांत पाचेचा एक मोठा स्फटिक आहे. त्याचें वजन १७४७ क्यारट आहे. विलायतेतील पदार्थसंग्रहालयांत १५६ $\frac{३}{४}$ क्यारट वजनाचा पाचेचा खडा आहे. श्रीमंत राजे भोसले, नागपूर यांच्या जामदारखान्यांत रामपंचायतनाच्या पांच मूर्ति एकसंधी पाचूच्या आहेत. पैकीं रामाची मूर्ति ३३२ रति वजनाची आहे. तेथेंच ८८ वजनाचें पाचेचें शिवलिंग आहे.

सागरराग (Aquamarine) व मार्गानाइट हीं बेरिलचीं पोट-रत्नें आहेत.

गोमेद—ह्या रत्नाचें इंग्रजी नांव हिंसोनाईट अथवा सिन्यामन स्टोन (दालचिनीच्या रंगाचें रत्न) असें आहे. हें चुनडीच्या जातीचें रत्न असून सिकता, अल्यूमिना माती आणि चुना ह्यांचें बनलेलें आहे. सीलोनमध्ये, आल्प्स पर्वतांत, मेक्सिको देशांत, उरल पर्वतांत व अन्य कांहीं स्थळीं हें रत्न सांपडतें. ह्याचेही नाना प्रकारचे आकार असतात. त्यांत गोल आणि पानघाट उत्तम मानिले जातात. कृष्ण गोमेद, रक्त गोमेद, पीत गोमेद असे याचे प्रकार आहेत. गोमूत्रसम म्हणजे पिवळट तांबूस रंगाचा गोमेद भ्रष्ट होय. हाच राहूला प्रिय असतो. ह्याच रंगाला सुवर्णासारखा आरक्त रंग म्हणतां येईल. हाच ह्या रत्नाचा उत्तम रंग होय. मधाच्या थेंबाच्या

रंगाप्रमाणें रंगहि उत्तम मानला जातो. शिवाय याचे रंग पिवळा, रक्त, श्वेत, पीत असेहि आहेत. संस्कृत व इंग्रजी ग्रंथांत याचा एक शुक्लवर्णी प्रकार वर्णिला आहे. पण ह्या वर्णाचा गोमेद अलीकडे तरी इकडे दिसत नाही. ' ग्रासूलर ' म्हणून इंग्रजीत एक प्रकार आहे. तो इतर रंगाखेरीज पांढुरक्या रंगाचाहि असतो. कांहीं गोमेद दुरून पाहिले तर जास्त लाल दिसतात पण डोळ्यांजवळ धरिले तर जास्त पिवळट दिसतात. गोमेदाचे नृदुपणा, तुळतुळीतपणा आणि जडपणा हे गुण समजतात; आणि हिऱ्याप्रमाणें खाडे वगैरे असणें हा दोष मानितात. याचें काठिण्य $७\frac{1}{2}$ असून विशिष्टगुरुत्व ३.४४ ते ३.६२ असतें. याचा उपयोग आंगठ्या करण्याकडे विशेष होतो. ह्याचे मणिही करितात. मुंबईत व जयपूर येथें गोमेदाचे पैलूदार खडे तयार करितात. हें हलक्या प्रतीचें रत्न आहे. ह्याची किंमत २५ ते ३० रु. तोळा किंवा ४ आणे ते २ रुपये रतीप्रमाणें हलका भारी पाहून असते. ह्याच्या खरेखोटेपणाची परीक्षा मागील रत्नांप्रमाणेंच करावी.

पुष्पराग अथवा पुष्कराज—ह्या रत्नाचा मुख्य घटक अल्यूमिना असून त्यांत सिकताही बरीच असते. हें रत्न अरबस्तान, पेरू, बोहिमया येथें व हिंदुस्थानांत सांपडतें. रशियांतही ह्याच्या खाणी पुष्कळ आहेत. ब्राझिल देशांत व सिलोनांतही पुष्कराज सांपडतात. हिंदुस्थानांत सांपडणारा पुष्पराग सर्वांत उत्तम असतो. हा फिक्का पिवळा, सोनेरी, गहिरा पिवळा, पांढरा, केशरी, लालसर, निळसर, हिरवट, गुलाबी, नारिंगी वगैरे अनेक रंगांचा असतो. पैकीं सैनल म्हणजे पिवळी वजनदार जात आणि सफेता म्हणजे पांढरी जात ह्या दोन जास्त प्रसिद्ध आहेत. मुख्य रंग पांढरा असून आंत सोनेरी झांक असलेला पुष्पराग उत्तम मानितात. वजनदारपणा, स्निग्धता, मनोहरपणा, स्वच्छता इत्यादि याचे गुण असून छाटे, खाडे, कण, डाग वगैरे याचे दोष आहेत. याचें काठिण्य ८ व ९ यांचे दरम्यान असतें. याचें विशिष्टगुरुत्व ३.६ असतें. याचेहि ब्रिलियन, रोजकट वगैरे आकार असतात. ह्याच्या खरेखोटेपणाची परीक्षा मागील रत्नांप्रमाणेंच करावी. पुष्पराग दिसण्यांत मृदु दिसतो. हिरा कठीण दिसतो. पुष्परागांत हिऱ्याइतकी चमक नसते. ह्या दोन्ही प्रकारांवरून पांढरा पुष्प-

राग पांढऱ्या हिऱ्यापासून ओळखावा. पिवळा कांचमणि व पिवळा पुष्प-
राग हे मिथिलेटेड आयोडाइडमध्ये टाकिले तर पुष्पराग बुडतो व कांच-
मणि तरतो. तसाच तोरमलीचा खडाही तरतो. ह्यावरून त्यांस ओळखावें.
पुष्परागाचा उपयोग दागिने करण्याकडे होतो. ह्याच्या शुभ्ररंगी खड्याच्या
त्रिलियनकूट आंगठ्या हिऱ्यासारख्या दिसतात. उत्तम पुष्पराग पिवळा
अगर सफेता असल्यास किंमत १०० ते २०० रुपये रतीपर्यंतही पडते.
मध्यम रत्नास ५० रुपये रतिपर्यंत आणि कनिष्ठ खड्यास ४ ते ५ रुपये
रतीपर्यंत किंमत पडते. औरंगजेब बादशहापार्शी ३१४ रतींचा एक पुष्प-
राग होता. त्यास त्यांन १८०,००० रुपये दिले होते.

कौरंटक, काषायक, सोमलक वगैरे ह्याचे पोटभेद आहेत.

लसणिया व मार्जारनेत्री-वैदूर्य म्हणजे इंग्रजी बेरिल याचें
पाचरत्न होतें आणि त्याच्या स्वर्णवैदूर्य (Chryso beryl) ह्या जातीचीं
लसण्या. (लशुन, लसणिया), मार्जारनेत्री (Cat's eye) हीं रत्नें
होतात. स्वर्णवैदूर्यांत अल्युमिना ८०.२ भाग असून बेरिलियम
१९.८ भाग असतो. बेरिलियम यासच ग्लुसिना असेंहि नांव आहे. यांचींच
मुख्यत्वेकरून हीं रत्नें बनलेलीं आहेत. स्वर्णवैदूर्यांच्या साध्या खड्यास
पैलू पाडून त्याचे त्रिलियन आणि दुसरे गोल, लावट वगैरे आकाराचेहि
लसणे तयार करितात. बिनपैलूचेहि खडे असतात. स्वर्णवैदूर्यांच्या दोरेदार
खड्यास बहिर्वक्र मदारघाटी (Cabochon) ह्या विशिष्ट आकाराचा
कापून मार्जारनेत्री बनवितात. ह्यात मार्जाराच्या नेत्रांतील बुबुळांतल्या-
प्रमाणें अनेक रंग चमकतात. लंकेंत नदीच्या वाळवेंत नीळ व तोरमली-
बरोबर लसण्येही सांपडतात. पेगू, बोर्निओ, उत्तर अमेरिका, ब्राझिल,
उरल पर्वत यांतही लसण्ये सांपडतात. खंत्रायतेजवळील रत्नपूर गांवींही
लसण्ये सांपडतात. लसण्याचे रंग हिरवा, हिरवट पांढरा, पिवळट हिरवा,
पिवळा, सोनेरी, सफेत, करडा, उदी, धूम्र, काळसर, निळसर असे
असतात. त्यांत सोनेरी पिवळ्यापासून उदी हिरव्या व क्वचित् काळ्या
रंगाच्या झांकी मारतात. सोनेरी म्हणजे कनकवर्णाचा मार्जारनेत्री आणि
लसणिया उत्तम मानितात. स्वर्णवैदूर्यांच्या मार्जारनेत्रींत सफेत रंगाचा

किंवा क्वचित् सोनेरी रंगाचा दोरा अथवा दोरे खेळत असतात, त्यांस सूत असें म्हणतात. अडीच सुती मार्जारनेत्री उत्तम मानतात. लसण्या स्वच्छ, काळसर पांढरा व वजनदार असणे हे त्याचे गुण आहेत. तेजोहीनत्व, जाळें वगैरे त्याचे ऐत्र आहेत. लसण्याचें काठिण्य ८.५ असून विशिष्टगुरुत्व ३.५ ते ३.८ आहे. त्याच्या खऱ्याखोऱ्याची परीक्षा मागील रत्नांप्रमाणें करावी. लसण्ये व मार्जारनेत्री यांची किंमत वजनदारपणा व दोरा यांवर अवलंबून १० रुपये रतीपासून १०० रुपये रतीपर्यंत असते. मार्जारनेत्री हें केतूचें प्रिय रत्न आहे. सीलोनांत सांपडलेला पूर्ण निर्दोष असा ४३ $\frac{३}{४}$ क्यारट वजनाचा लसण्या हल्लीं विलायतेंतील पदार्थसंग्रहालयांत आहे. अलेक्झांड्राईट आणि कर्कोद हीं यांचीं पोटरेणें आहेत.

प्रवाळ अथवा पोवळें—हें रत्न बहुतेक सर्वांच्या माहितीचें आहे. त्याची उत्पत्ति प्रवाळकीटक ह्या प्राण्यापासून समुद्रांत होतें. हें रत्न चुन्याचें बनलेले आहे. प्रवाळकीटक एकास एक संलग्न असे वेलीप्रमाणें वाढतात, व ते मयत झाले म्हणजे त्यावरच दुसरें प्रवाळकीटक वाढतात. व मरतात. असें वर्षानुवर्ष चालून ह्याचे खडक बनतात. त्यांच्या तुकड्यापासून वाटोळे, लंबोडे अशा आकाराचे मणी तयार करितात. हेंच प्रवाळरत्न होय. इटाली व ग्रीसकडे याची उत्पत्ति व घडण होते. पाढरीं, पिवळीं, लाल ह्या रंगांचीं पोवळीं असतात. पिवळ्या रंगात लाल झांक असलेलें तक्रतकीत व वजनदार पोवळें उत्तम मानतात. ह्याच्या माळा करून गळ्यांत घालतात व भस्म करून औषधांत वापरतात. नेपल्सपासून व्हेसुविसचे वाटेवर सर्व जगांत मोठीं अशीं व्यापारोपयोगी पोवळीं तयार करण्याची फॅक्टरी आहे. तेथें पोवळ्यावर हातानें उत्तम प्रकारचें नकसकाम करितात. येथें पोवळ्यांच्या सुंदर माळा, बटणें, आंगठ्या, ब्रूचिस तयार होतात. तसेंच पोवळ्यांवर सुंदर देवतांचीं चित्रें, व सुंदर स्त्रियांचीं चित्रेंहि काढिलीं जातात. नेपल्स येथेंहि पोवळ्यांचे कारखाने फार आहेत. पोवळ्याची किंमत ४ आणे तोळ्यापासून १ रुपया तोळ्यापर्यंत असते. मोठ्या पोवळ्याचा दर ह्याहूनही जास्त असतो. आलकंदक व वैवर्णिक हे ह्याचे पोटमेद आहेत.

मोती, शिंपले व शंख

(१) मोत्याची घटना, उत्पत्तिस्थान व व्याप्ति—मोती हे प्राणिज रत्न आहे. ह्याची उत्पत्ति कालवांपासून होते. ती जलाशयांत—मुख्यतः समुद्रांत—आणि क्वचित् नद्यांतून होते. विरलेला चुना पाण्यांत पुष्कळ असतो. त्या चुन्याशी ह्या कालवांचा पुष्कळ तऱ्हेचा व्यवसाय असतो. हा प्राणी ह्या चुन्याने आपल्या शरीराचे रक्षण करणारे शिंपले तयार करतो. ह्या प्राण्याच्या बहिर्भागास एक मांसाची दुलई असते. हिच्या कडांच्या सूक्ष्म पेशी शिंपल्याच्या वरचा शिंगासारखा थर व मधला समपार्श्व थर बनवितात व कडांपासून अन्तर्भागांत असलेल्या दुलईच्या पृष्ठभागावरील सूक्ष्म पेशी मौक्तिक रस तयार करितात व तो शिंपल्याच्या आंतला चकचकीत भाग बनविण्याकडे लावतात.

शिंपला तयार करण्याकरितां घेतलेला एकादा कण त्याच्या दुलईच्या घडीत घट्ट झाला व खूपू लागला अगर् त्याच्या दुलईत अथवा शरीरांत एकादा सूक्ष्म जीवजंतु अथवा पदार्थ घुसला तर हा प्राणी स्वसंरक्षणार्थ आणि तो पदार्थ अथवा कण न खुपेल असा गुळगुळीत करण्याकरितां त्यावर मौक्तिक रसाचे फेरे फिरवू लागतो व ह्याप्रमाणें सतत करित राहून आपणास आनंद देणारे असें मौक्तिक रत्न तयार करितो. ह्या फेऱ्यांनी बसणारे मौक्तिकरसाचे थर फार पातळ असतात; तथापि ते सोडविले असतां सुटे होतात. कारण एक थर फिरवून झाल्यावर व तो सुकल्यावर त्यावर दुसरा थर असे हे थर वाढत गेलेल असतात; व ते नेहमीं सुरू राहात असल्यानें मोत्याची वाढ सतत होत राहते. म्हणून ह्या कालाच्या मानानें मोती मोठे होतें. ह्यावरून समजून येईल कीं, मोत्याची वाढ मौक्तिकरसाच्या पातळ पत्र्यांनीं झालेली आहे. एक थर फिरवून झालेल्या भागावर जिल्हई चढलेली असते. म्हणून मोत्याचे वरचे कवच सुटलें तरी आंत मोत्यासारखाच रंग व चक्रीकी असते. मात्र शिंपल्याच्या बाहेरच्या शिंगासारख्या भागाचा अगर् मधल्या भागाचा घटक पदार्थ क्वचित् चुकून इकडे लागला असला तर मात्र या भागाचा रंग विघडतो. पण असें क्वचितच घडतें.

सागरांत काय किंवा नद्यांत काय मोतीं कालवेंच तयार करितात; पण त्यांच्या शिंपल्यांत फरक असतो. खाऱ्या पाण्यांतील मोतीं तयार करणारे प्राण्यांचा शिंपला दुहेरी म्हणजे उघडझांप करणारा व वाटोळा असतो. पण गोड्या पाण्यांतील मोतीं तयार करणाऱ्या कालवांचा शिंपला अखंड व लांबोडा असतो. निरनिराळ्या जातींच्या ह्या दोन कालवांनीं तयार केलेल्या मोत्यांत फरक असा असतो कीं, खाऱ्या पाण्यांतील मोतीं गोड्या पाण्यांतील मोत्यांपेक्षां सरस असतात.

गोड्या पाण्यांतील मोतीं समशीतोष्ण कटिबंधांतल्या नद्यांत तयार होतात. खाऱ्या पाण्यांतील मोतीं उष्ण कटिबंधांतील देशांत अथवा उष्ण पाण्याचे प्रवाह असणाऱ्या समुद्राचे भागांत होतात. ग्रेट ब्रिटन, फिन्लंड, युनायटेड स्टेट्स वगैरे देशांतील व चीन, जपान या देशांतील नद्यांत गोड्या पाण्याच्या मोत्याची बरीच निपज होते.

प्राचीन काळीं सीलोन आणि इराणचें आखात येथूनच मुख्यतः सर्व जगास मोत्यांचा पुरवठा होत असे. सांप्रत हिंदी महासागरांत, इराणच्या आखातांत, तांबड्या समुद्रांत, मध्य अमेरिकेच्या किनाऱ्याजवळील समुद्रांत, ऑस्ट्रेलियाच्या किनाऱ्याजवळील पासिफिक महासागरांत व पासिफिक महासागराचे इतरही कांहीं भागांत खारे पाण्यांतील मोत्यांची निपज मुख्यतः होते. वेस्ट इंडीजजवळील कांहीं भागांतील शंखांत गुलाबी रंगाचीं मोतीं सांपडतात. सिलोनांतील मानारचे आखातांत, हिंदुस्थानांतील तुतिकोरिनजवळ, बेहेरिन बेटाजवळील लिंगा येथें, पश्चिम ऑस्ट्रेलिया व व्हेनेझुएला येथें असलेले नैसर्गिक मोतीं काढण्याचे कारखाने महत्त्वाचे असून हल्लीं प्रसिद्धीस आलेल्या समुद्रांतील कल्चर मोत्यांचे कारखाने फक्त जपानचे समुद्रांत आहेत.

(२) मोत्यांचे आकार, काठिण्य व विशिष्टगुहत्व-नैसर्गिक मोत्यांचे आकार वाटोळा, लांबट, चपटा, वांकडातिकडा, डमरूवजा, बसका, अर्धवर्तुळ वगैरे अनेक असतात. गोल, गरगरीत, वाटोळा आकार उत्तम. आधुनिक कल्चर म्हणजे लावणीचीं मोतीं व्यापारांत जीं आढळतात त्यांची निपज सर्व प्रकारच्या आकारांची होत असली तरी विक्रीला ठेवलेलीं मुख्य मोतीं बहुतेक

सुंदर वाटोळीं, लांबट, बसकीं आणि अर्धवर्तुळ अशींच आढळतात. मोत्यांचें साधारणमानाचें काठिण्य ३.५ ते ४ पर्यंत असून विशिष्टगुरुत्व सुमारे २.७ असतें. कोरीं मोतीं, जुन्या मोत्यांपेक्षां वजनानें जास्त भरत असून रंगालाही सरस असतात. वजनानें जड असेल तें मोतीं चांगलें. कल्चर मोत्यांची घडावण सर्वत्र थरावर थर अशी नसते. ह्यामुळें त्यांस नैसर्गिका-इतका कठीणपणा नसतो. म्हणून तीं टिकाऊपणांत कमी असतात.

(३) मोत्यांच्या जाती, रंग, तेज, उपयोग, किंमत:-नैसर्गिक मोत्यांत बसराई अथवा चोखा, बदला अथवा दबदार अशा दोन जाती मानतात. सुकुमार पोताच्या, तेजस्वी, निर्दोष आणि गोल अशा मोत्यांस बसराई म्हणतात. हलक्या जातीच्या, खडबडीत, कमी गोलवट, चपट्या, जरा लांबट अगर अरुंद अशा मोत्यांस बदला मोतीं म्हणतात. चोख्या मोत्यांत आणखी जीवन व पातळ जीवन असे पोटभेद आहेत.

जुन्या मोत्यांस मजीठ म्हणतात. एका जातीच्या लांबट मोत्यांस नूर म्हणतात. काळ्या मोत्यांस कागावाशी म्हणतात. खडबडीत चपटे मोत्यांस गांवशाही म्हणतात. जुन्या मोत्यांचीं भोकें भोंगळ झालेलीं असतात.

मोतीं उत्तम सफेत, शुक्री, मीठा, लाल, काळीं, श्याम, सोनेरी, हुर्मूजी, गुलाबी, गुळधानी वगैरे अनेक रंगाचीं असतात. सफेत मोतीं युरोपियनांस आणि पिवळें मोतीं चिनी लोकांस आवडतें. तांबडें कानर्ड लोक पसंत करितात. आपले इकडे गुलाबी मोत्यांची जास्त आवड असते. फिकट पांढऱ्या रंगाचीं, कमी चकाकी असलेली पण काळीं नव्हत अशा मोत्यांस शुक्री रंगाचीं मोतीं म्हणतात. ह्यांची झांक गुलाबी रंगाकडे असूं शकेल. लालीशीं मिश्र असलेल्या सफेत रंगाच्या मोत्यांस हुर्मूजी म्हणतात. मीठा म्हणजे पिवळट गुलाबी रंग. गुळधानी रंगाचीं म्हणजे बऱ्याच लालसर रंगावर असलेलीं. खुलता सफेत म्हणजे तांबूस रंगावर असलेला सफेत रंग. पूर्ण पांढरा नव्हे अगर पूर्ण लाल नव्हे अगर पूर्ण पिवळा नव्हे अशा रंगामागें खुलता हा शब्द वापरण्याचा प्रघात आहे. मोत्यांचें तेज ताऱ्याच्या प्रकाशाप्रमाणें लुकलुकणारें अथवा चंद्रबिंबासमान असावें हें उत्तम. मौक्तिक हें चंद्राचें प्रिय रत्न आहे.

मोत्यांचा उपयोग मुख्यतः दागिन्यांकडे होतो हे सुप्रसिद्ध आहे. मोत्यांचे भस्म अनेक विकारांवर उपयोगी पडते. नवग्रहांचे आंगठीत बटणाच्या आकाराचे मोती बसवितात. श्रीमंत चिनी लोक हातांतील पंख्यांना व छत्र्यांना मोती जडवितात. ते बैठकीच्या कापडाला व आंग-वस्त्रालाहि मोती गुंतवितात.

हिंदुस्थानात मोत्यांची किंमत चवावर असते. प्रथम वजनाने रति काढून हिशोबाने त्याचे चव करितात. तो हिशेब करण्याची रीत अशी:— रतीचा वर्ग करून त्यास ५५ नीं गुणून ९६ नीं भागावे. जो भागाकार येईल त्यास मोत्यांच्या संख्येने भागावे. जो भागाकार येईल तो मोत्यांचे चव समजावे. जसे:—जर ११ मोती २४ रति वजन असतील तर

$$\frac{२४ \times २४ \times ५५}{९६} = \frac{३१६८०}{९६} = \frac{३३०}{११} = ३० \text{ चव झाले. जर दर}$$

चवास २० रुपये किंमत असली तर $३० \times २० = ६००$ रुपये किंमत ११ मोत्यांची झाली. पण जर एकच मोती २४ रति वजन असेल तर $\frac{३१६८०}{९६}$ यास ११ नीं न भागतां मोत्यांची संख्या १ ही असल्याने

तिने भागावयाचे. म्हणजे ३३० हा भागाकार येतो. हे एका मोत्याचे चव झाले. जर दर चवास २० रुपये भाव असेल तर $३३० \times २० = ६६००$ रुपये किंमत एका मोत्याची झाली. ह्यावरून असे दिसून येईल की जेव्हां सर्व मिळून २४ रति भार मोती लहान लहान अशी ११ होती तेव्हां त्यांची सर्वांची मिळून किंमत ६०० रुपये झाली. परंतु जेव्हां एकच मोती २४ रति भार वजनांत भरले तेव्हां त्याची एकट्याची किंमत ६६०० रुपये झाली. हे पाहून आश्चर्य वाटते. पण आश्चर्य वाटण्याचे कारण नाही. ही किंमत दुर्मिळतेबद्दल आहे. कारण एवढ्या भारी वजनाचे मोती क्वचितच मिळते व मिळाले म्हणजे ते घेणे असल्यास अशीच किंमत द्यावी लागते.

मोत्यासंबंधाची व्यावहारिक कोष्टके:—

| | | |
|------------------|--|-------------------|
| १६ तंडुल = १ रति | | ६। बदाम = १ दोकडा |
| २४ रति = १ टांक | | १०० दोकडे = १ चव |

६२ रति म्हणजे एक कोरा रुपयाभार असं प्रमाण आहे. म्हणजे १ रति सुमारे दीड गुंज होते. मुंबईच्या वेस्ट एंड वॉच कंपनीने ठरविल्या-प्रमाणे १ ३/४ रती म्हणजे एक क्यारट होतो. मुंबईच्या बाजारांत एका क्यारटची किंमत रतीपेक्षा एका रुपयास सव्वा आप्यानें जास्त धरितात. इंग्लिश लोक आणि नेपाळी लोक मोती रतीचवाचे हिशोबाने विकत घेत नाहीत. ते क्यारटवर किंवा टांकावर घेतात. बाकी सर्व हिंदुस्थानभर व अरबस्तानांतसुद्धां चवाच्या पद्धतीनेच मोती विकतात.

मळलले मोती साफ करणे झाल्यास तांदुळाच्या, मिठाच्या, साखरेच्या किंवा रिठ्याच्या पाण्यांत भिजत घालून धुऊन साफ करावे. लिंबू वगैरे आंबट जिन्नसांत मोती भिजत ठेवू नये; फार वेळ ठेवल्यास त्याचा चुना होतो. तसेच सोड्याचे पाण्यानें व साबणांही मोती साफ करितात. परंतु एकादे जातीचे मोती काळें पडते. मोती अंगावर घालून नेहमीं अग्निसन्निध बसू नये. खराब होतात. मोती आंगावर ठेवून निजून नये. निजल्यास मोती झिजतात. मोत्याचे दागिने व हिरेमाणकाचे दागिने एकत्र ठेवू नये. मोती जास्त मृदु असल्यानें त्यावर चरे पडण्याची भीति असते.

हल्लीं बसराई मोत्यांचा भाव उत्तमाचा दर चवास रुपये ४५ ते ५० पर्यंत आहे. मध्यमाचा रु. २५ ते ३० पर्यंत आहे. कनिष्ठाचा रुपये १२ ते १५ पर्यंत आहे. बदला अथवा ढबदार मोत्यांचा भाव उत्तमाचा रुपये १२ ते १५ पर्यंत, मध्यमाचा रुपये ८ ते १० पर्यंत, कनिष्ठाचा रुपये ३ ते ५ पर्यंत आहे. बसराई जीवन बारीक दर चवास ६० ते ६५, बसराई जीवन मोठी साईझ रुपये ७५ ते १०० आहे. लहान व्यापारी सारख्या आकारचीं व रंगारूपाचीं उत्तम कल्चर मोती चवावर व बाकीचीं उत्तम व हलकीं यांची भेसळ असलेलीं तोळ्यावर विकतात. मोठे व्यापारी पौंडाच्या व तोळ्याच्या वजनाने कल्चर मोती विकतात. जपानी पाकीटांतील उत्तम कल्चर मोती १०० रुपये तोळा, मध्यम ६०, ४०, ३०, २०, १० रुपये तोळा व कनिष्ठाचा भाव १२ ते १० रुपये तोळ्यास असा आहे. चवाचे दर रंग, रूप पाहून १ रुपया ते ५ रुपये चव असा आहे.

(४) मोत्यांतील गुणदोष—कृत्रिम व कल्चर मोती, त्यांची परीक्षा व प्रख्यात मोती—मोती पूर्ण वर्तुळाकार, तेजस्वी, तुळतुळीत, वजनदार, कोमल व निर्मळ असावे. हे मोत्याचे सहा गुण आहेत. निर्मळ मोती म्हणजे स्वच्छ व अगदी निर्दोष तें निर्मळ मोती. तुळ-तुळीत म्हणजे चंद्रबिंबासमान स्निग्ध. कोमल म्हणजे सुकुमार पोताचें. फाट, नर, पोटनर, करवा, छाटे, खळगे वगैरे मोत्यांचे बरेच दोष आहेत. मोत्यांच्या वरच्या बाजूला फुटका भाग किंवा भेग दिसते तिला फाट हें नांव आहे. मोत्यांत चिरल्यासारखी रेष दिसते तिला नर म्हणतात. इंग्रजी आठाच्या आंकड्याचा म्हणजे ४ असा आकार अगर सभोवार खोलगटपणा असलेल्या दोषास करवा म्हणतात. मोत्यावर जे ठिबके दिसतात त्यांस छाटे असें म्हणतात.

कृत्रिम मोती कांचेची आणि इतर पदार्थांची अशीं दोन प्रकारची आढळतात. एका प्रकारच्या माशाच्या खवल्यांचें मोत्यांच्या रंगाचें सत्त्व निघतें तें कांचेच्या मोत्यांस बाहेरून अगर आंतून लावून उत्तम खोटी मोती तयार करतां येतात. कल्चर मोती जपानांत तयार होतात. जपानी लोक प्रथम समुद्रांतून कालवाचे शिंपले बाहेर काढितात. मग कल्चर मोत्यांची क्रिया करणारे तज्ञ लोक शिंपल्याच्या अंतर्भागांतून कापून अगोदरच तयार ठेविलेल्या मौक्तिक रसाच्या गोल गोळ्या हत्यारांचे साधनानें शिंपल्यांतील कालवांच्या शरीरांत घुसवून ठेवितात. कालवास ह्या गोळ्या खुपू लागतात. त्यांच्या प्रतिकारार्थ म्हणून ते निरुपद्रवी कालव त्या गोळ्यांवर आपल्या शरीरांत तयार होणारा मौक्तिकरस थापटून व त्यावर रसाचे फेरे फिरवून त्यांची इजा कमी करण्याचा प्रयत्न करितात व असें करून कल्चर मोती बनवितात.

कल्चर मोती आणि नैसर्गिक मोती यांत एक मोठा फरक आढळतो; तो असा कीं नैसर्गिक मोत्यांत मध्यवर्ती पदार्थावर मौक्तिकरसाचे फार पातळ असे कांद्याच्या पापुद्याप्रमाणें अनेक थरावर थर असतात, तसे कल्चर मोत्यांत नसतात. कल्चर मोत्यांतील मध्यवर्ती गोळीवर प्रथम मौक्तिकरसाचा एकच एक जाड थर असून

त्यावर एक पातळ थर असलेला आढळतो. ह्याचें कारण असें दिसतें कीं स्वाभाविकपणें शरीरांत शिरलेला कण फारच बारीक असल्यामुळें त्या प्राण्याला त्याची इजा कमी असते. ह्यामुळें त्यावर हें कालव मौक्तिकरसाचे अनेक फेरे सावकाश फिरवीत राहतें व त्यामुळें त्याचे पापुद्यावर पापुद्रे असे अनेक तयार होत असतात. कल्चर मोतीं बनविण्याकरितां कालवाच्या शरीरांत घुसविलेली गोळी फार मोठी असते. तिची इजा ह्या प्राण्यास भयंकर होत असावी. म्हणून तो प्राणी ह्या गोळीच्या-भोंवतीं थोडथोड्या मौक्तिकरसाचे फेरे फिरवीत न बसतां तीवर त्या रसाचा जाड लगदा एकदम बसवीत असला पाहिजे; व असें करून आपली इजा शक्य तितकी लवकर शमवीत असला पाहिजे. एरवीं दोन्ही प्रकारच्या मोत्यांतील ह्या फरकाचें कारण देतां येत नाही. रचनेंतील ह्या फरकामुळें असें होईल कीं कल्चर मोत्याचा वरचा थर झिजला म्हणजे आंतील गोळी-वरच्या लगद्याला मोत्याच्या वरच्या थरासारखी जिल्हईं नसल्यानें हीं मोतीं निस्तेज दिसतील. शिवाय आंतील गोळी जाड व त्यावरील थर घाईघाईनें दिलेला ह्यामुळें खरबरीत दिसतील. शिवाय त्यावर एकच पातळ थर असल्यामुळें मोत्यांची बांधणी घट्ट न झाल्यानें थर ढिला होतो आणि फुटतो असें आढळून येतें.

कल्चर मोत्याचे घंद्यांत मुळांतच व्यापारी दृष्टि फार झाली आहे; ह्यामुळें मोतीं मोठें दिसावें म्हणून कालवाच्या आंगांत शिरकवावयाची गोळी दिवसेंदिवस मोठी मोठी होत चालली आहे. आणि ती कालवाच्या शरीरांत फार वर्षेही राहूं न देतां कालव समुद्रांतून लवकर बाहेर काढण्यांत येऊं लागलें आहे. जर गोळी बसविल्यावर कालवाचा समुद्रांत राहण्याचा काळ वाढविला तर मोत्यांच्यावरचे थरही वाढण्याचा संभव आहे. पण लवकर लवकर पैसे मिळविण्याचे धोरणापुढें मोत्यांच्या सुधारणेचें धोरण बाळगलें जात नाही. ह्या कार्मीं जपानास कोणी प्रतिस्पर्धी अजून निघाला नाही. तो निघाल्यास कल्चर मोत्यांत सुधारणा खास होईल. जपानी समुद्रांतील मोतीं करणाऱ्या कालवांची जात सीलोन, इराण, अरबस्तान इकडील मोत्यांच्या कालवाच्या जातीपेक्षां निराळी आहे. शिवाय जपानची

हवा थंड व इकडील हवा उष्ण ह्यामुळेही मोत्यांच्या तेजांत फरक राहतो. इकडील म्हणजे सीलोन, इराण, अरबस्तान येथील मोत्यांत ओरिएंट असे नांव ठेविलेले जे सौंदर्य असते ते जपानच्या मोत्यांत नसते. म्हणून इकडच्या समुद्रांत हा कल्चर मोत्यांचा धंदा कोणी सुरू केल्यास तो जपानच्या कल्चर मोत्यांस मागे टाकील यांत शंका नाही.

वरील प्रकारच्या फरकाच्या गोष्टी असल्या तरी हल्लींच्या हलाखीच्या काळांत खर्चाच्या दृष्टीने कल्चर मोती वापरणे फायदेशीर दिसते. ते लवकर विटेल, फुटेल वगैरेमुळे लवकर फुकट जाईल असे काहीं असले तरी कल्चर मोती इतकी स्वस्त मिळतात की, ती लवकर लवकर त्रिघडली तरीहि प्रत्येक वेळी नवी तर मिळतीलच; पण अशी तीन चार वेळां पुनः पुन्हां ती मोती घ्यावी लागली तरीहि ती स्वस्तच पडतील. शिवाय कल्चर मोत्यांच्या धंद्यांत व्यापारी दृष्टीने एक चांगली गोष्ट आहे ती अशी की, गरगरीत वाटोळा व चांगला तजेलदार व आवडत्या रंगाचा असाच माल बाजारांत जाऊं दिला जातो. वाईट माल निघेल त्याचा बहुतेक जपानांतच नाश केला जातो. म्हणून नैसर्गिक मोत्यापेक्षां कल्चर मोत्यांचा माल नेहमीच मनोहर व दृष्टीला भुलवणारा असतो. ज्यांना महाग अशीं मनपसंत नैसर्गिक मोती घेण्याची ऐपत असेल त्यांनी तीं घ्यावीं. पण बाकी सामान्य जनतेने आपली गरज कल्चर मोती घेऊन भागविणे सोईचें व शहाणपणाचेंहि दिसते.

कृत्रिम मोती, कल्चर मोती आणि नैसर्गिक मोती ओळखण्याचे अनेक प्रकार आहेत. नुसत्या डोळ्यांच्या साधनांनी त्यांची परीक्षा अगदीं बिनचुक होणे कठीण आहे. ही ओळखण्याची एक शास्त्रीय पद्धति आहे ती अशी:—तपासावयाचें मोतीं सीडारचे तेलान्त बुडवून काढून ते मोठ्या शक्तीच्या सूक्ष्मदर्शक यंत्राखाली ठेवावे. नंतर त्यावर मोठ्या जोराचा विजेचा प्रकाश पाडून तो स्थिर करावा. असें केले म्हणजे मोत्यांतून प्रकाशाचें परावर्तन न होतां ते बरेंच पारदर्शक होतें. मग त्यांच्या अंतर्भागाचें निरीक्षण करावे. मोतीं नैसर्गिक असेल तर अंतर्भागांत पापु-द्यावर पापुद्रा असून ते एकमेकांस समांतर आहेत अशी रचना दिसेल.

कल्चर मोत्यांत बाहेरचा थर मात्र पापुद्यासारखा दिसून त्याच्या आंत तें मोती ज्या द्रव्यानें आंतून भरलें असेल त्याची एक गोळीच दिसेल. थर दिसणार नाही. कृत्रिम मोती पोकळ दिसेल. अगर इतर रीतीनें ओळखेल.

जगांतील सर्वांत मोठें मोती बेरेस्फर्ड हें आहे. हें लंडन येथें दक्षिण केन्सिंगटनचे पदार्थसंग्रहालयांत दाखविण्यांत आलें होतें. हल्लीं हें आल्बर्ट म्युझिअममध्ये आहे. ह्याची लांबी २ इंच असून परीघ ४ $\frac{1}{2}$ इंच आहे. ह्याचें वजन ३ औंस आहे. पूर्ण निर्दोष असें मोती इराणचे शहाजवळ होतें तें इ. स. १६६३ सालीं फ्रेंच जव्हेरी ट्याव्हर्निअर ह्यानें पाहिलें होतें. ह्याची किंमत ३२०००० डॉलर होती. ह्याची लांबी सुमारे तीन इंच होती. एक हिंदी मोती निद्रितसिंह ह्या नांवाचें होतें. त्याची किंमत २२५०० डॉलर आली होती. अर्शा बरीच मोठी मोती प्रसिद्ध आहेत. गायकवाड सरकारचे जामदारखान्यांत बरीच साधारण मोठी मोती असून तेथें एक मोत्यांची शाल आहे. तिची किंमत १००००० पौंड आहे म्हणतात.

मोत्यांचे शिंपले—भावप्रकाशांत “मुक्ताशुक्ति” ह्या नांवानें आणि अर्कप्रकाशांत “मौक्तिकी शुक्ति” ह्या नांवानें मोत्यांच्या शिंपल्याची म्हणजे त्याच्या अंतर्भागांतील मौक्तिकरसाच्या थराची गणना उपरज्जांत केली आहे. ह्याचें रंगरूप सर्व मोत्यांचेंच असल्यानें ह्याची गोळी तयार करून ती जपानी कल्चर मोत्यांचा मध्यवर्ती पदार्थ म्हणून त्याच्या शरीरांत घुसवीत असतात. हा त्याचा अलीकडचा मोठा उपयोग आहे. मोती काढण्याच्या कांहीं ठिकाणीं मोत्यांपेक्षां हे शिंपलेच जास्त मौल्यवान असतात. कारण तेथील शिंपल्याच्या अंतर्भागावरील मौक्तिकरसाचा थर फार जाड, शुभ्र व तेजस्वी असतो. असे शिंपले ऑस्ट्रेलियांत फार सांपडतात. अमेरिकेंतील मिसिसिपी नदीमधील कालवाचे शिंपलेही असेच मौल्यवान असतात. शिंपल्याच्या मौक्तिकरसाची सुंदर बटणें करितात. खोदीव कामास लावण्याकडे व नकशीकामास लावण्याकडे ह्याचा फार उपयोग होतो. डाका येथें सांप्रत याचीं कांकणें व बांगड्याही करितात.

शंख—ह्यांचाहि उपरज्जांत समावेश होतो. सीलोनच्या व हिंदुस्थानाजवळच्या हिंदी महासागरांत शंख सांपडतात. कित्येक शंखांत

मोतीहि सांपडतात. ह्या शंखांपैकीं कांहीं शंख दक्षिणावर्ती म्हणजे ज्याची सर्पिल रचना उजव्या बाजूस आहे असे असतात. अशा शंखांस बौद्ध-घर्मी, सिंहली, चिनई व हिंदु लोक फार पूज्य मानतात. जुन्या काळीं हे लोक अशा उजव्या शंखाची किंमत सोन्याच्या भारंभार देत असत.

प्राचीन काळीं शंखांचीं कांकणें करीत असत. हल्लीं डाका येथें शंखाचे दागिने करतात. सुरती शंख फार मोठे असल्यामुळें त्यांचा कांकणें व बांगड्या करण्याकडे जास्त उपयोग होतो. तिटकुरी व पाती ह्या जातीचे शंखास लकाकी जास्त असल्यामुळें त्यांचा उपयोग कोंदणाचे कामीं जास्त होतो. राणीशंखाचा उपयोग करून केलेलें सुंदर गुलाबी केमिओ नांवाचें खोदीवकाम फारच शोभिवंत दिसतें.



प्रकरण तिसरें

रत्नांचें संक्षिप्त वर्णन (पुढें चालूं).

उपरलें

उपरलें-१ चुनडी (संस्कृत पुलकमणि) लोलक, लालडी-
चुनडीला इंग्रजींत गार्नेट (Garnet) म्हणतात. चुनडीचे मुख्य घटक अल्यू-
मिना, लोह, चुना, मॅग्नेशिया, मॅगनीज, क्रोमियम, आणि सिलिका हे
आहेत. ह्यांमुळें ह्याच्या सहा जाती झाल्या आहेत. त्यांपैकी गोमेद हिचा
अंतर्भाव नवमहारत्नांत केला गेल्यानें तिचें वर्णन पूर्वीच होऊन गेलें आहे.
बाकीच्या पांच जातींपैकीं केपमाणिक ह्या जातीचा रंग अनेकदां माणका-
सारखा लाल असतो. तिसऱ्या जातीस चुनडींतील लाल असें म्हणतात.
चवथी जात पाचेसारखी हिरवी असते. हिला उरेलियन पाच म्हणतात.
शिवाय आणखी दोन सामान्य जाती आहेत. चुनडी हें रत्न निरनिराळ्या
मनोहर रंगांचें असतें. पण हें विपुल सांपडत असल्यामुळें किंमत फार
पडत नाहीं. ह्यामुळें गरीबासही हें वापरून रत्नाची हौस भागवितां येते.
ह्यांपैकीं केप माणिक ही जात सर्व जातींत कठीण असते. तसेंच हिचा रंग
माणकासारखा सुंदर असल्यानें किंमतही जास्त पडते. चुनडींतील लाल
यास बहिर्वक्र आकार दिला तर त्याचा रंग जास्त खुलून दिसतो. उरेलियन
पाच ह्या जातीचा हिरवा रंग इतका अप्रतिम असतो कीं, त्यामुळें त्याची
योग्यता रंगीत रत्नांत पुष्कळ वरच्या प्रतीची ठरते. हिचा उपयोग हारा-
सारख्या दागिन्यांत लोकाप्रमाणें करितात. चुनड्या पृथ्वीच्या पाठीवर अनेक
ठिकाणीं सांपडतात. त्यांतील सीलोन, हिंदुस्थान व ग्रीनलंड येथील उत्तम
असतात. ह्यांचे स्फटिक द्वादश फलकी असतात. चुनडीचें काठिण्य ६ ३/४
ते ७ ३/४ असतें व विशिष्टगुरुत्व ३.१५ ते ४.३ इतकें असतें. चुनडीचा
दागिन्यांत उपयोग करितात. जयपुरांत चुनडीचे लोलक व गोखरूदार
मणि तयार करून त्यांच्या माळा करितात. लालडी ही दिसण्यांत,

घटनेत व रचनेत चुनडीसारखीच असते. पण तिचे विशिष्टगुणत्व चुनडी-हून कमी असते व ह्या रत्नांत सिलिकेचा अंश जास्त असतो.

२ तोरमली-ह्या रत्नाचे नांव तुरमली आहे. इंग्रजीत त्याचाच अपभ्रंश झालेला शब्द तूर्मलीन् हा वापरतात. या रत्नाचे संस्कृतांतील नांव गंधर्व असे असल्याचे एका ग्रंथांत लिहिले आहे. हे रत्न मुख्यतः अल्यूमिना, सिलिका आणि टंक (Boron) या घटकांचे बनलेले असते. यांत दुसरीही बरीच द्रव्ये सूक्ष्म प्रमाणांत मिसळली असल्यामुळे ही रत्ने अनेकविध रंगांची झाली आहेत. पांढऱ्या रंगामुळे व चकचकीत तेजामुळे ह्याच्या पांढऱ्या जातीस आपणाकडे हिऱ्याचे उप-रत्न मानतात, तर हेंच रत्न मूलमेन शहरी सिलोनी हिरे म्हणून विकले जाते. हिऱ्यासारखे शुभ्र, माणकासारखे लाल, निळासारखे अस्मानी आणि पाचेसारखे हिरवे या रंगांची ही रत्ने विशेष शोभिवंत दिसतात. रंगावरून ह्या रत्नाच्या दहा जाती झाल्या आहेत. ह्या रत्नाचा रंग सर्वांगभर सारखा नसतो. हिरवी तोरमली तापविली असतां पांढरी होते. तोरमलाचे काठिण्य ७ ते ७ $\frac{1}{2}$ असून विशिष्टगुणत्व २.९४ ते ३.१५ इतके असते. हिचे तेज कांचसदृश असते. हिला कपड्याने घासले असतां विद्युत् जागृत होते.

तोरमली चित्रित वज्रतुंडाच्या भगदाडीत, दलपाषाणांत व चुऱ्याच्या पैलूदार दगडांत सांपडते. ही सीलोन, ब्राझिल, सैबेरिया, उत्तर अमेरिका, मादागास्कर येथे व ब्रह्मदेशांत सांपडते. हिंदुस्थानांत बंगाल, म्हैसूर, काश्मीर येथे सांपडते. सुरत व मद्रास येथे हिची बरीच मोठी विक्री होते. तेथे ही चार आणे ते तीन रुपये रतीपर्यंत अगर कोडीच्या भावावरही विकली जाते. शुभ्र रंगाची तोरमली चिंचपेठ्यांत व आंगठ्यांत वापरतात. ह्या व इतर रंगाच्या तोरमल्या अनेक दागिन्यांत वापरतात.

उत्तम तोरमलीत हिऱ्यासारखी चमक मारते पण ती मंद असते; व आंतील बाजूस मारते. हिच्या कडा नेहमी सुखट व निस्तेज असतात. मिथिलेटेड आयोडाईडच्या साधनांने हे अनेक समरंगी रत्नांपासून ओळखतां येते.

आर्यवैद्यकांतील रसायनप्रकरणांत वैक्रांत या नांवाच्या रत्नाचें भस्म सांगितलें आहे. कोणी वैद्य वैक्रांत म्हणजे तोरमली असें म्हणतात, तर कोणी वैक्रांत म्हणजे बिलोर अथवा स्फटिक होय असें प्रतिपादितात. डॉक्टर देसाई आणि बनारसच्या आयुर्वेदिक कॉलेजांतील प्रो. कुलकर्णी हे वैक्रांत म्हणजे फ्लूअर स्पार (चित्रखनिज) होय असें म्हणतात. वैक्रांत रत्नाबद्दल हा असा तीव्र मतमेद आहे.

३ कांचमणि म्हणजे स्फटिक रत्न—कांचमणि हें एक महत्त्वाचें उपरत्न आहे. सिकतेचें पैलूदार झालेलें हें रत्न आहे. ह्यास इंग्रजीत रॉक क्रिस्टल (Rock Crystal) म्हणतात. मौलिक द्रव्य सिलिकॉन ह्याचें आक्सिजनाशीं एकास दोन ह्या प्रमाणांत मिश्रण होऊन पांढरी वाळू तयार होते. ही पृथ्वीच्या पोटांत भयंकर वजनाखालीं तीव्रतम उष्णतेमुळें वितळून जाऊन मग हळुहळू निवाली असतां तिचे निर्जल असे तेजस्वी व पारदर्शक पैलूदार कांचमणि तयार होतात. हिंदुस्थानांत हिमालय पर्वतांत, विंध्याद्रींत, तापी नदीच्या किनाऱ्यावर, काठेवाडांत, छिंद-वाड्यांत, वरंगळ येथें व कावेरी नदींत कांचमणि रत्न सांपडतें. याशिवाय सिलोनांत, मादागास्कर बेटांत, आल्प्स पर्वतांत, काकेशस पर्वतांत, व सैबेरिया, ब्रेझिल, जपान ह्या देशांतही कांचमणि रत्न सांपडतें. कांचमण्याचें काठिण्य ८ असून विशिष्टगुरुत्व २.६५ पासून २.८ पर्यंत असतें. हें रत्न षट्कोण पद्धतीपैकीं आहे.

जो स्फटिक अत्यंत निर्मळ व तुळतुळीत असतो तो उत्तम समजावा शुभ्र वर्णाच्या कांचमण्यापासून भीष्ममणि हें रत्न तयार होतें. भीष्ममणि या नांवाचें रत्न हल्लीं बाजारांत मिळत नाहीं. त्या रत्नाचा अथवा त्याच्या नांवाचा लोप झालेला दिसतो. कांचमण्याच्या अगदीं रंगरहित खड्याचे तंजावरकडे वल्लभ नांवाचे व पंजाबांत मरी नांवाचे कृत्रिम हिरे तयार करितात. शिवाय खंबायत, जयपूर, काश्मीर येथें कांचमण्याचे अनेक आकाराचे खडे तयार करण्याचे कारखाने आहेत.

कांचमण्याचे फार दिवसांपासून पेबलचे चष्मे तयार करीत आले आहेत. शिवाय याच्या मूर्ति, पेले, तरवारीच्या मुठी व अंतर्गोल व

बहिर्गोल भिंगें तयार करितात. प्रयोगशाळेंतील जास्त उष्णतेचे प्रयोगांत साध्या कांचेचा टिकाव लागत नाही. ह्याकरितां प्रयोगाचे कामासाठीं कांचमण्याचीं प्रयोगसाधनें तयार करितात.

ह्या रत्नाच्या रंगयुक्त खड्यांचीं अनेक रत्नें तयार होतात. उत्तम जांभळ्या रंगाच्या कांचमण्याचें आमाथिस्ट म्हणजे याकूत हें मनोहर व लोकप्रिय रत्न तयार होतें. पिवळ्या रंगाच्या कांचमण्याचा कृत्रिम पुष्प-राग होतो. वैडूर्याचें जसें मार्जारनेत्री हें रत्न होतें तसें याचेंही होतें. शिवाय व्याघ्रनेत्री व श्येननेत्री ह्या नांवाचीं रत्नेंही होतात. मादागास्कर येथे जे कांचमण्याचे खडे सांपडतात त्यांच्या एका चौरस इंचांत हजारों खळगे असून त्यांत द्रव किंवा वायु असतात. ह्यामुळे हे खडे उजेडांत धरून फिरविले म्हणजे त्यांच्या अन्तर्भागीं फार मजेदार अशा रंगाच्या लकेरी दिसतात व ह्यांस घासलें तर फार सुवासिक असा वास येतो. कांचमण्याला तापवून उष्ण पाण्यांत बुडवून सच्छिद्र करून आंत रंग भरून अनेक कृत्रिम रत्नें तयार करितात. कांचमण्याचीं सर्व रत्नें स्वस्त मिळतात.

कांचमण्याचे फार मोठे स्फटिकाकार प्रस्तर सांपडतात. मादागास्कर बेटांत ह्याचा एक स्फटिक २० फूट परिघाचा सांपडला होता.

सूर्यकांत, चंद्रकांत, जलकांत, हेमगर्भ, वायव्य, देवेज्य, मुक्ता-ज्योतीरस, राजावर्त, राजमय, बहामय वगैरे नांवांचीं ह्याचीं पोटरत्नें आहेत.

४ अक्कीक ही सिकतेची अव्यक्त पैलूदार जात आहे. हीं मिश्र झालेल्या द्रव्यामुळे अक्कीकाचे अनेक रंग झाले असून हीं रत्नें तयार होण्याच्या स्थानांवरून व प्रकारावरून ह्याचे अनेक आकार झाले आहेत; व अशा भेदांवरून ह्याच्या रत्नांस निरनिराळीं नांवे ठेवण्यांत आलीं आहेत. ह्या रत्नांपैकीं कांहींची रचना पट्यापट्यांची असते. त्यांस इंग्रजींत अॅंगेट ही संज्ञा आहे.

इंग्रजीतील क्वाल्सेडोनी, अॅंगेट आणि ओपल ह्या तिन्ही जाती अक्कीकाचेच पोटभेद आहेत. त्यांपैकीं क्वाल्सेडोनी व अॅंगेट ह्या जाती निर्जल असून ओपल ही जात सजल आहे. ओपलचें वर्णन निराळें केले आहे.

अकीक थराथरांनीं बनलेला असतो. त्याचें काठिण्य सुमारे ७ असून विशिष्टगुरुत्व २.६२ ते २.६४ असतें. ह्याचे खडे ज्वालामुखी पर्वताचे आसपास बिळांतून किंवा शिरांतून सांपडतात. नद्यांत ज्या चकमकी सांपडतात त्या प्रवाहाबरोबर वाहत आलेले अकीकच होत.

ज्या अकीकाची रचना गोठलेल्या कणांची असून रंग सारखे अस-
असतात त्या जातीस क्याल्सेडोनी हें नांव आहे. हा अकीक अथवा क्याल्से-
डोनी तयार होतांना त्यांत लोहप्राणिलाचें सूक्ष्म मिश्रण झालें असलें तर
त्याला मांसासारखी किंवा रक्तासारखी तकाकी व लाल रंग येतो. अशा
जातीस क्रान्नेलियन म्हणजे रुधिराक्ष किंवा रुधिराख्य म्हणतात. क्याल्सेडो-
नाइट हा पदार्थ जर अकीकाशीं संमिश्र झाला असला तर गहिरी हिरवी
प्रेज ही जात तयार होते. दुसरी याची क्रिसोप्रेज नांवाची जात आहे. ही
पूर्वी हिंदुस्थानांत स्वर्णांगी ह्या नांवानें प्रसिद्ध होती. स्वर्णांगी हें रत्न निळें,
हिरव्या रंगासारख्या वर्णांचें, शुद्ध सोन्याचें रजःकणयुक्त, शोभाढ्य आणि
मनोहारी असतें. आणखी एक ब्लडस्टोन नांवाची अकीकाची जात आहे.
तिला संस्कृत नांव ज्योतीरस असें आहे. ह्याचा रंग हिरवा काळा असून
त्यावर नर्मद्या गणपतीच्या रंगाचे लहान ठिबके असतात. हेच ठिबके
मोठे असले तर त्या जातीस हेलिओटॉप हें नांव देतात. नर्मदे गणपती,
बाण हे क्याल्सेडोनीच्या ज्यास्पर म्हणजे संगयशव ह्या प्रकारांत येतात.

अकीकाच्या अॅगेट ह्या जातीस सुलेमानी पत्थर अथवा शिलेमणि
म्हणतात. ह्याच्या अनेक पोटजाती आहेत. त्यांपैकी ओनिक्स म्हणजे पालंक
ही जात महत्त्वाची आहे. हें रत्न बहुधा काळसर अथवा तपकिरी रंगाचें
असून त्याला फार उत्तम तजेला असतो. त्यावर बहुधा पांढरे पट्टे अस-
तात आणि कधी कधी त्यांत हिरवट थर असतो. ह्याच्या सीलच्या
आंगठ्या करितात. गळ्यांत घालण्याकरितां किंवा जपाकरितां मणीही
करितात. हल्लीं कृत्रिम ओनिक्स जर्मनीत पुष्कळ तयार होऊं लागला
आहे. अॅगेटच्या आणखी प्रकारांपैकी सब्जी म्हणजे शेवाळीसारखा
देखावा दाखविणारें, अॅगेट, गंज म्हणजे ज्यांवर झाडें, डोंगर वगैरे देखावे
दिसतात तो, मोचा अॅगेट हे आणि दोरेदार अॅगेट हे प्रकार प्रसिद्ध आहेत.

अकीकास कांतण्याचें व पैलू पाडण्याचें काम हिंदुस्थानांत विशेष खंबायत व भडोच येथें फार चालतें. रेवा कांठांतील रतनभोर प्रांतांत, खेडा जिल्ह्यांतील कपडवंज, अहमदाबाद जिल्ह्यांतील रणपूर आणि राजपिपळा संस्थानांतील रत्नपूर येथें ह्याच्या खाणी आहेत. खाणींतून काढिल्यावर ह्याचे दगड विस्तवांत आरक्तोष्ण केले म्हणजे याचे रंग खुलतात. ह्याचीं बटनें आंगठ्यांचे खडे, कंठ्या व माळा करण्याचे मणि व डूल वगैरे अनेक सुंदर प्रकार होतात. ह्यांची खंबायती खडे म्हणून प्रसिद्धी आहे. पूर्वी खंबायतेंत ६ ते ८ लाख रुपयांचा माल तयार होत असे. पण हे जिन्नसही कृत्रिम रीतीनें तयार होऊं लागल्यामुळें आतां येथें फक्त लाख दीडलाख रुपये किंमतीचा माल निघू लागला आहे.

५ ओपल—ही सिलिकेची अव्यक्त स्फटिक सजल जात आहे. ओपल हें इंग्रजी नांव आहे. ह्या रत्नाचें संस्कृत नांव शिवघातु (शंकराचें बीज) असें असून रंगावरून पडलेलें दुसरें नांव दुग्धस्फटिक व हिंदी नांव दुधिया पत्थर असें आहे. इंग्रजीत याचें दुसरें नांव मिल्कस्टोन म्हणजे दुधाच्या रंगाचें रत्न असें आहे. क्वचित् मिल्क ओपल असेंही म्हणतात. ह्या रत्नांत ९० भाग सिकता व १० भाग पाणी असतें. नैसर्गिक उष्ण पाण्याच्या वाहत्या झऱ्याबरोबर जी सिकता विद्रुत होऊन वहात असते तिचे थर अग्न्युत्पन्न खडकाच्या पोकळींत किंवा चुऱ्याच्या दगडाच्या पोटांत बसत बसत इंद्रधनुष्याच्या रंगाप्रमाणें चमक दाखविणारें हें रत्न तयार होतें. ह्याचें काठिण्य ५.५ ते ६.५ असून विशिष्टगुरुत्व २ ते २.२१ असतें. ह्याचे रंग दुधासारखा पांढरा, पिवळा, तांबडा, श्याम, हिरवा किंवा करडा असे असतात. ह्याचें तेज कांचसदृश किंवा राळेसारखें अथवा मोत्यासारखें असतें. ह्या रत्नाचे अंतर्भागीं खळग्या असतात त्यांत हवा व कधीं कधीं पाणी असतें. ह्यामुळें त्यांत तऱ्हेतऱ्हेच्या रंगाच्या लकेरी दिसतात. त्यांत कधीं निखान्यासारख्या लाल, कधीं उज्ज्वल अंजिरी रंगाच्या, तर कधीं पाचेप्रमाणें हिरव्यागार रंगाच्या आणि लकलकीत किरमिजी व निळ्या रंगाच्या झांकी मारतात. ह्याच्या फायर ओपल म्हणजे अग्निपुलक या जातीच्या रत्नांचा रंग तांबूस अगर संत्र्याच्या रंगासारखा असतो. हा

रंग घवघवीत असून रत्नाच्या आंतल्या बाजूसही आगीसारखी तांबडी चमक असते.

ह्या रत्नाला अनेकदां पैलू पाडलेले आढळतात. पण पुष्कळसे खडे बहिर्वक्र आणि चपटे असेच असतात. पहिल्या प्रकारचे खडे लोलकाप्रमाणे आणि दुसऱ्या प्रकारचे मुख्यतः आंगठ्यांमध्ये उपयोजितात. ह्याच्या सामान्य जातीच्या खड्याच्या गळ्याच्या व हाताच्या गुंड्याही करितात. हे रत्न हिंदुस्थानच्या अनेक भागांत सांपडते. युरोपांतील हंगेरी देशांत, न्यू साऊथ वेल्समध्ये, ऑस्ट्रेलिया व हॉड्युरास येथे ही ओपल रत्ने सांपडतात. ह्याच्या फायर ओपल ह्या रत्नाच्या जातीकरितां मेक्सिको देश प्रख्यात आहे. नगर जिल्ह्यांतील सीना नदीच्या तीरावरही हा सांपडतो.

ह्या रत्नाची किंमत त्याच्या चांगल्या रंगाच्या व लकरीच्या घोरणा-प्रमाणे एक रुपयापासून तीस रुपये रतीपर्यंत असते. हलकें रत्न याहूनही कमी किंमतीस मिळते.

६ पॅरोज-राजावर्त अथवा लाजवर्द, पीलू अथवा जेड, अंबर अथवा तृणमणि आणि वज्रभासीय अथवा झिकॉन-हीं हलकीं रत्ने वापरांत कधीं कधीं आढळतात. पैकीं पॅरोज अपारदर्शक असूनही त्याची रत्नांत गणना होते, व तो दागिन्यांत वापरण्यांत येतो. त्याच्या हिरवट निळ्या रंगाच्या खड्यांस मागणी जास्त असते. विशेषतः पार्शी व मुसलमान लोक हे रत्न जास्त वापरतात. लाजवर्द यास गोविंदमणि असेंही म्हणतात. ह्याचा रंग निळा असतो. यास इंग्रजींत Lapis-lazuli म्हणतात. ह्याच्या स्फटिकीभूत पाषाणाचीच गणना रत्नांत होते. ह्याचा आकार द्वादशफलकी असतो. चिनई भांड्यांवर निळ्या रंगाची वेलबुट्टी ह्याचीच काढलेली असते. जेड हे चिनी व जपानी लोकांचें आवडतें रत्न आहे. ह्याचें संस्कृतांतील नांव पीलू असें आहे. ब्रह्मदेशांत ह्याच्या मोठाल्या खाणी आहेत. त्याचे मोलोन येथें मुख्य कारखाने असून त्यांत ह्याच्या आंगठ्या, कर्णफुले, कांकरणे वगैरे करतात. अंबर हे रत्न संस्कृतांत तृणकांत किंवा तृणमणि ह्या नांवानें प्रसिद्ध आहे. आषघांत वापरतात तें हे नव्हे. तें निराळें असतें. हे उद्भिज्ज रत्न आहे. राळ ज्या वृक्षापासून

होते त्याच्या राळेचा अश्मीभूत झालेला हा पदार्थ आहे. ह्याचा मुख्य रंग पिंवळा असतो. ह्याला घासले असतां वीज उत्पन्न होते व जाळले असतां सुगंध सुटतो. चोळल्यासहि थोडा वास येतो. याचा वास मंद मंद व गोड असतो. म्हणून ह्यास सुगंधी रत्न म्हणतां येईल. ह्याच्या मण्याच्या माळा करून लहान मुलांच्या गळ्यांत घालितात. वज्रभासीय म्हणजे इंग्रजी शिकान होय. हे मुख्यत्वेकरून सीलोनांत मत्सुरा येथे फार सांपडते. ह्याच्यांत हिऱ्यासारखी झांक व अग्निमुल्य तेज असल्यामुळे ह्याच्या खड्यांस मत्सुराचे हिरे असे नांव मिळाले आहे. पण ह्याचे काठिण्य हिऱ्यापेक्षा फारच कमी म्हणजे ७१ असल्याने हा त्यामुळे ओळखतां येतो. ह्याचे अनेक रंगाचे खडे असतात. ह्याच्या विनरंगी खड्यांस बिलियन आकार देऊन त्यांचा आंगठ्यांत उपयोग करितात. त्यावेळीं हे केवळ हिऱ्याप्रमाणे दिसते.

७ अवांतर उपरत्ने व पौराणिक रत्ने—करकेतन, मासरमणि अथवा मसारगर्भ, मेचक, कर्कोद, सुगंधि, टिट्टिभ, रुचक, उत्पल, गंधशस्य, पिंड, सीस, नीलांग, शेषमणि, सस्यक इत्यादि अनेक अवांतर उपरत्ने आहेत. त्यांपैकीं कर्केतन अथवा करकेतन हे विशेष उल्लेखनीय आहे. ह्याचे वर्णन विष्णुपुराणांत आहे. तेथे असे म्हटले आहे की, “सर्वेषामेव रत्नानां धार्यं कर्केतनं स्मृतम्.” हे पवित्र रत्न धारण केल्याने संपत्ति, नोकरचाकर आणि धान्य यांची वृद्धि होऊन संतति व कलत्र-सुख मिळते इ. असे याचे फल सांगितले आहे. हे हल्लीं कोठें मिळत असल्याचे दिसत नाही. ग्रंथांतरीं याचा वर्ण रक्त, स्वर्ण अगर मध यांच्यासारखा असून तेज अग्नीच्या ज्वालप्रमाणे, विजेप्रमाणे अगर सूर्याप्रमाणे जळजळीत असते असे म्हटले आहे. दुसरे रत्न मासरमणि हे उत्तरेकडील म्लेच्छांच्या देशांत उत्पन्न होते असे “हिंदी रत्नपरीक्षा” ह्या पुस्तकांत लिहिले आहे. शिवाय हंसाप्रमाणे ह्याच्या अंगी पाणी दुधापासून निराळे करण्याचा धर्म असल्याचेहि त्यांत सांगितले आहे.

चिंतामणि रत्न, चिंतासिंधु, कौस्तुभ, परीस, स्यमंतकमणि आणि वैजयंतीमाला हीं पुराणप्रसिद्ध रत्नें आहेत. यांचें विस्तृत वर्णन श्री. खांबेटे यांच्या रत्नप्रदीप खंड २ यांत आलेलें आहे.

८ कित्येक इंग्रजी रत्नें—देशी विदेशी अशीं कांहीं रत्नें आहेत. त्यांपैकीं आलिग्निन—पेरोडाट अथवा क्रिसोलाइट, अपॅटाइट, डायओप्साइट, स्पायनेल, एपिडोट, आयडोक्रेज, फेनाकाइट, स्पोड्यूमिन, आम्याझोनाइट, क्रियानाइट, मार्गानाइट इत्यादि कधीं कधीं पाहण्यांत येतात. यांचें वर्णन श्री. खांबेटे यांच्या रत्नप्रदीप खंड २ मध्ये आहे.

— — —

प्रकरण चौथें

नवग्रहांचीं प्रिय रत्नें

नवग्रहांचीं प्रिय रत्नें—इंद्रगोप किड्याच्या रंगाप्रमाणें रंग असलेलें माणिक रवीला प्रिय असतें. लाल, पिवळा, पांढरा अगर सांवळा ह्या वर्णांचें मोती चंद्राला आवडतें. पिवळी झांक असलेल्या तांबड्या रंगाचें पोंवळें मंगळाला प्रिय आहे. मोर आणि चाष पक्षी ह्यांच्या पंखांच्या रंगकांतीप्रमाणें हिरवें पन्ना रत्न बुधाला आवडतें. सुवर्णाच्या कांतीप्रमाणें तेजयुक्त व पिवळ्या रंगाचा पुष्पराग गुरूला पसंत असतो, अति स्वच्छ आणि ताऱ्याप्रमाणें चमकणारा हिरा शुक्राला आवडतो. असित म्हणजे गहिन्या निळ्या रंगाचें आणि दाट मेघाप्रमाणें काळें असें नीलरत्न शनीला प्रिय असतें. पिवळट रंगावर लाल असें गोमेद रत्न राहूला प्रिय असतें. मांजराच्या डोळ्याच्या तेजाचें आणि फिरणारा दोगा असलेलें वैडूर्य रत्न (लसण्या) हें केतूचें प्रीतिस्थान आहे. प्रत्येक रत्नाचा साधारणपणें सर्वोत्तम रंग हा त्या त्या रत्नाच्या देवतेला प्रिय असतो हें पाहून ग्रहांकरितां रत्नें विकत घेणारांनीं तारतम्य वापरावें. ह्या ग्रहांना प्रसन्न करून घेणेकरितां ह्या रत्नांचीं दानें करावीं; आणि हीं रत्नें आंगावर वापरावीं म्हणजे त्या त्या ग्रहांपासून पीडा होत नाही.

नवग्रहांकरितां नवरत्नांची आंगठी व तींतील रत्नांचीं स्थानें—नवग्रहाचे आंगठींत हिऱ्याचें स्थान पूर्वदिशा हें होय. मोत्याचें स्थान आग्नेय दिशा, पोंवळ्याचें दक्षिण दिशा, गोमेदाचें नैर्ऋत्य दिशा, नीलाचें पश्चिम दिशा, वैडूर्याचें वायव्य दिशा, पुष्परागाचें उत्तर दिशा, पाचेचें ईशान्य दिशा आणि माणकाचें अवशिष्ट स्थान म्हणजे मध्यभाग हें होय.

ह्याप्रमाणें दिशांस तीं तीं रत्नें बसविण्याच्या घरांचे आकार पुढील प्रमाणें असावे—रवीचें घर वर्तुळ असावें. चंद्राचें चौकोनी, मंगळाचें तिकोनी, बुधाचें नागवेलीच्या पानाच्या आकाराचें, गुरूचें पंचकोनी, शुक्राचें अष्टकोनी, शनीचें रथाच्या आकाराचें आणि केतूचें पताकेच्या

आकाराचें असावें. जेव्हां ग्रह उच्चिचे असतील तेव्हां रत्ने बसवून घ्यावीं. नवरत्नांची आंगठी धारण करण्याचें फल—हीं नवरत्ने जो मुक्त मनुष्य हातांत (आंगठीच्या रूपानें बोटांत) धारण करितो तो नित्य सुखी राहील; शिवाय राजाला योग्य अशी संपत्ति त्याला लाभेल.

नवरत्नांच्या खरेदीच्या वेळा-रत्नें नऊ आणि वार सात म्हणून राहू व केतु ह्या ग्रहांची प्रियरत्नें शनीच्या रत्नांप्रमाणें समजून त्यांची खरेदी शनीच्या रत्नाच्या वेळेवर करावी. बाकीचीं खरेदी करणें तीं प्रत्येक वारी त्या त्या ग्रहाच्या हीन्यावर त्यांचीं त्यांचीं रत्नें खरेदी करावीं. रत्नें दिवसास खरेदी करावीं. रात्रीं कधींच खरेदी करूं नयेत.

रत्नांचे धार्मिक व आरोग्यविषयक उपयोग—संसार हा दुःख-मय व असार आहे असें तत्त्वज्ञान असणाऱ्या पौर्वात्यांनीं आपणांस संसार-सागरांतून सोडविणाऱ्या देवतांस प्रसन्न करून घेण्यासाठीं त्यांच्या मूर्ति करण्याकडे रत्नांचा महत्त्वाचा उपयोग केलेला आहे. हिऱ्यासारख्या तेजस्वी शुभ्र रत्नांचा उपयोग मूर्तीच्या डोळ्यांचे ठिकाणीं करण्यांत आलेला असे-अशा डोळ्यांच्या ठिकाणीं बसविलेल्या हिऱ्यांचा व येथून ते चोरीस गेल्याचा उल्लेखही प्रसिद्ध रत्नांच्या वर्णनांत आढळतो.

संस्कृतांत शिल्पशास्त्राचे अनेक ग्रंथ आहेत. त्यांत देवालय कसे बांधावें, त्यांतील मूर्ती कशा व कशाच्या असाव्या ह्यांचीही वर्णनें आलेली आहेत. त्यांपैकी काश्यपशिल्पांत शिवलिंग ' रत्नजं लोहजं वाऽथ लिङ्गं कृत्वा सयोनिकम् ' म्हणजे लिंग रत्नाचें अथवा लोहाचें असावें असें लिहिलें आहे. जर श्वेत अश्मज (शिलेचें) लिंग करणें असेल तर ती शिला मुक्तास्फटिकसन्निभा म्हणजे मोती, स्फटिक यांच्या प्रभेसारखी प्रभावान् असावी; व लिंगाकरतां घेणेची शिला जर कृष्णवर्णाची असेल तर तिच-देखावा राजावर्त रत्नासारखा (राजावर्तनिभाकारा—राजावर्ताची उत्तम निभा—थोडी लाली व जास्त नीलिमा—अशा वर्णमिश्रणाची झांक असलेली होय) असावा असेंही सांगितलें आहे. शिवाय वामनपुराणांत रत्नांचें रत्नाचलदान व रत्नधेनुदान असे धार्मिक उपयोगही सांगितले आहेत.

आरोग्यविषयक उपयोग म्हणजे रत्नांचीं भस्में करून रसायनांत उपयोग करावयाचा हा होय. ह्याचें वर्णन वैद्यकग्रंथांतून सविस्तर दिलेलें

असतें. त्यांतील प्रमुख म्हणून रसरत्नसमुच्चय या ग्रंथाचा उल्लेख करतां येईल. रत्नांचा दुसरा उपयोग रत्नांतील विजेपासून शरीरास होणारा आरोग्यलाभ हा होय. विद्युत् आपल्या शरिरांत आहे. तिचें योग्य प्रमाण नेहमीं कायम ठेवणें आरोग्यकारक आहे. हिरे, माणिकें, इंद्रनील वगैरे रत्नांत वीज असते. कांतलेल्या रत्नास कोरळ्या कपळ्यानें घासलें असतां त्यांत वीज उत्पन्न होते. तिला सौदामिनी असें नांव आहे. बहुतेक रत्नांतून वीज लवकरच निघून जाते. परंतु हिरे, माणिकें, इंद्रनील व पुष्पराग ह्यांजवर वीज पुष्कळ वेळपर्यंत जागृत राहाते. चित्रखनिज, कांचमणि, पुष्पराग आणि न्याल्साइट ह्यांवर दावानें वीज उत्पन्न होते. ट्रूमलाइन आणि पुष्पराज यांस तापविलें असतां त्यांजवर वीज उत्पन्न होते. ह्या प्रकारें रत्नें वीज उत्पन्न करणारीं असल्यानें तीं शरीरावर धारण करणाऱ्यास आरोग्याचे दृष्टीनें फार उपयुक्त आहेत. आपल्या पूर्वीच्या पद्धतीनें लिहिलेल्या पुस्तकांतून असें विधान केलेलें आढळतें कीं, रत्नें आंगावर धारण केलीं असतां तीं सूर्यादि ग्रहांच्या पीडांचें निवारण करितात, आणि दीर्घायुष्य व आरोग्य देतात. ह्याचें रहस्य तरी वर लिहिलेल्या गोष्टींतच आहे. म्हणून ज्यांना ऐपत असेल त्यांनीं पंचरशी धातूच्या पुतळ्या व आंगळ्या वापरण्यापेक्षा रत्नें धारण करावीं. रत्नें सौभाग्य, भाग्योदय, वशीकरण, प्रसन्नता व धैर्य ह्यांची प्राप्ती करून देतात आणि शरिराचा निस्तेजपणा व मालिन्यानें येणारी अलक्ष्मी दूर करितात व भूतबाधेचा नाश करितात.

प्रकरण पांचवें

रत्नाची परीक्षा करण्याची साधने

१ रत्नांचें काठिन्य व रत्नांची भिदुरता

रत्नांचें काठिन्यः—भिन्नभिन्न रत्नें भिन्नभिन्न मानानें कठिण असतात; परंतु एकाच जातीच्या रत्नांचें काठिन्य नेहमीं नियमित व कायम असतें. म्हणून रत्नें ओळखण्यास त्यांचें काठिन्य फार उपयोगी पडतें. काठिन्य ठरविणें अगदीं सोपें आहे. एकावर दुसऱ्यानें खरवडून कोणत्यावर सहज उल्लेखन होतें हें पाहिलें म्हणजे झालें. एका पदार्थावर दुसऱ्या पदार्थानें चरा पडण्यास जो प्रतिबंध होतो त्यास दाढ्य अथवा काठिन्य म्हणतात. कांहीं पदार्थ असे आहेत कीं, त्यांवर दुसऱ्या पदार्थानें चरा पाडतां येत नाही, तेव्हां हे पदार्थ त्या दुसऱ्यापेक्षां कठिण आहेत असें म्हणतात. साधारणतः ज्यांचें दाढ्य सदोदित सारखें राहतें असे दहा पदार्थ खनिजांतून निवडून काढून क्रमानें जास्त जास्त दृढ पदार्थांची पंक्ति लावून एक श्रेणी खनिज शाखांत तयार केली गेली आहे. सुमारे १०० वर्षांमागे मोहज नांवाच्या खनिजशास्त्रवेत्त्यानें ही श्रेणी तयार केली. ही साधारण अजमासिक आहे. परंतु अद्याप हीच अमलांत आहे. ती खालीं दिल्याप्रमाणेंः—

नंबर १ शंखजिरें; किंवा अभ्रक (Talc).

नंबर २ सेंधव किंवा खडकी मीठ (Rock-salt) अथवा जिप्सम (घापण).

नंबर ३ सफेत सुरमा (Calc spar).

नंबर ४ चित्रखनिज (Fluor spar).

नंबर ५ अपॅटाइट (Apatite).

नंबर ६ एक जातीचा चंद्रकांत (Orthoclase).

नंबर ७ गारगोटी (Quartz), कांचमणि (Rock-crystal),
चकमक (Flint).

नंबर ८ पुष्पराग (Topaz).

नंबर ९ कुरुंद (Corundum), माणिक, इंद्रनील.

नंबर १० हिरा (Diamond).

हिरा हा अत्यंत कठीण खनिज पदार्थ आहे. त्याने कुरुंदावर चरा पडतो; पण कुरुंदाने हिऱ्यावर चरा पडत नाही. कुरुंदाने पुष्परागावर चरा पडतो; पण पुष्परागाने कुरुंदावर पडत नाही. याप्रमाणे वरपर्यंत समजावे. एकादा पदार्थ हिऱ्याने खरवडला जातो; परंतु कुरुंदाने त्यावर चरा पडत नाही. तर अशा त्या पदार्थांचे काठिन्य नऊ आणि दहा यांचे दरम्यान आहे असे समजावे. तो पदार्थ काठिन्यांत ज्या मानाने कुरुंदाच्या वर असेल त्या मानाने त्याचे काठिन्य ९.२, ९.४ इ. असे हि दर्शविता येते. एकाद्या पदार्थाचे काठिन्य ७ आहे असे जेव्हां आपण म्हणतो तेव्हां त्याचा अर्थ असा की त्याने कांचमण्यावर चरा पडत नाही व कांचमण्याने त्यावर चरा पडत नाही. म्हणून हे दोन्ही पदार्थ सारख्याच दाढ्यांचे आहेत. ह्या श्रेणीतील नंबरावरून असे समजू नये की एक नंबरच्या पदार्थाहून दोन नंबरचा पदार्थ दुप्पट कठीण आहे. हे नंबर फक्त क्रम दाखवितात; प्रमाण दाखवित नाहीत. त्या दोन नंबरांमधील प्रमाण जवळ जवळ सारखेच नाही. इतकेच नव्हे तर त्यांच्या दरम्यानचा फरकहि फारच कमीजास्त आहे. हिरा हा इतका कठीण आहे की माणिक आणि हिरा यांमधील काठिन्याचा फरक अगदी प्रथमचे शंखजिरे आणि ९ नंबरचे माणिक यांच्यामधील काठिन्याच्या फरकापेक्षांहि जास्त आहे.

वरील श्रेणीतील पदार्थांपैकी नंबर ३ पर्यंतच्या पदार्थावर म्हणजे शंखजिरे, खडकी मीठ व सफेत सुर्मा यांवर कमीजास्त जोराने नखाने चरा पडतो. म्हणून ज्या दुसऱ्या पदार्थावर नखाने चरा पडतो ते पदार्थ काठिन्यांत नंबर ३ च्या पलीकडील नाहीत असे समजावे. नंबर ४ ते ७ पर्यंतच्या म्हणजे चित्रखनिज, अपॅटाइट व चंद्रकांत या पदार्थांवर चाकूने चरा पडतो म्हणून चाकूने ज्यांवर चरा पडतो तीं रत्ने काठिन्यांत नंबर

७ च्या आंतील आहेत असें समजावें. नंबर ७ इतकी पोलादी काणस कठिण असते म्हणून तिनें नंबर ७च्या गारगोटीवर चरा पडत नाही. गारगोटीच्या खालच्या नंबरच्या सर्व रत्नांवर काणसीनें चरा पडतो व तीं काणसीनें काणसलीहि जातात. म्हणूस ज्यावर काणस चालते तीं सर्व रत्नें नंबर ७ पेक्षां कमी काठिन्याची आहेत असें समजावें. कृत्रिम कांचेचीं रत्नें काणसीनें सहज काणसलीं जातात. कारण कृत्रिम रत्नें ज्या कांचेची अथवा रांध्याचीं केलेलीं असतात, त्या कांचेचें अथवा रांध्याचें दार्ढ्य सुमारे ५३ असतें. उत्तम पोलादी काणशीचा उपयोग जोर करून केला तर नंबर ७ च्या गारगोटीला अथवा कांचमण्याला थोडें काणसतां येतें. त्यावरून असा जोराने काणसून थोडा काणसला जाणारा पदार्थ नंबर ७ च्या काठिन्याचा समजण्यास हरकत नाही. काणशीचा उपयोग नंबर आठपासून वरचीं रत्नें म्हणजे पुष्कराज, माणिक, शनि आणि हिरा यांची परीक्षा पाहण्याकडे होत नाही. त्याच्यावरचें काठिन्य ओळखण्याचें साधन पाश्चात्य देशांत सुईचें तयार केलेलें असतें. हत्यारें करण्याकरितां वापरण्यांत येणाऱ्या पोलादाच्या सुईनें गारगोटी खरडली जाते. पोलादांत मॅंगानीज (Manganese) चा उपयोग केला असल्यास त्या पोलादाच्या केलेल्या सुईनें ७३ नंबरचें काठिन्य असणाऱ्या वज्रभासीय यासारख्या रत्नावर चरा पडतो. आणि फार वेगानें चालणाऱ्या हत्याराच्या (High speed tool steel) पोलादाच्या सुईनें ८ ते ८३ नंबरचें काठिन्य असणाऱ्या पुष्कराज लसण्यासारख्या रत्नालाहि त्या सुईच्या पाण्याच्या प्रखरतेच्या मानानें चरा पडतो. सर्वांत कठिण हिऱ्याला दुसरें कोणतेंही हत्यार कापूं अगर काणसूं शकत नाही. पण तो फक्त दुसऱ्या हिऱ्यानेंच कापला जातो (वज्रं वज्रेण भिद्यते). माणिक आणि नील यांवर त्यांचें सजाति जें कुरुविंद (कुरुंद) यानें चरा पडतो. हिरा व माणिक आणि नील यांवर हिरा आणि कुरुविंद यांशिवाय दुसऱ्या कशानेंच चरा पडत नाही. पारखेलें माणिक घेऊन तें पारखावयाच्या माणकावर घासावें. पारखावयाचें माणिक खरें असेल तर तें ह्या घर्षणाच्या योगानें जास्त तेजस्वी दिसेल व किंचिन्मात्र वजनांत कमी होणार नाही. जर खोटें असेल तर त्याचें वजन घटेल.

रत्नांच्या काठिण्याची श्रद्धी

- २ १/२ अंबर, जहरमोहरा (Serpentine).
- ३ ३/४ पोंवळें.
- ३ १/२ ते ४ मोती व जेट (Jet).
- ४ चित्रखनिज.
- ५ कायनाइट, आपेटाइट, लापिस लाझूली, डोंगरी कांच (Obsidian), कांच.
- ५ १/२ स्फीन.
- ६ ओपल, चंद्रकांत, सूर्यकांत, पिरोजा, डायओप्साइट.
- ६ १/२ सोड्यूमीन, पेरिडाट, डीमेंटॉइड अथवा अन्ड्राडाईट, चुनडी, जेड (नेफ्राइट) एपिडोट, आयडोक्रेज, हेमाटाईट, स्वर्णमुखी.
- ७ कांचमणि, तोरमली, जेड (जेडाइट).
- ७ १/२ गोमेद, पायरोप चुनडी (केप माणिक).
- ७ १/२ वैदूर्य (पाच) आमंडाइन गार्नेट (लाल पुलक मणि) शिकान, (वज्रभासीय) फेनेकाइट, अन्डेल्युसाइट, यूफ्रेज्.
- ८ पुष्पराज, लाल (स्पायनेल).
- ८ १/२ स्वर्णवैदूर्य-लसण्या, मार्जारनेत्री.
- ९ कुरंद (माणिक, नील).
- १० हिरा.

(ब) रत्नांची भिदुरता-कोणतेंहि स्फटिकीभवन पावणार रत्न काहीं नियमित दिशांनी चिरा पडून फुटण्यास पात्र असतें. ह्या त्याच्या घर्मास भिदुरता म्हणतात. साधारण नियम असा आहे कीं जे पदार्थ फार सुदृढ असतात तेच एका नियमित दिशेनें भिदुर अथवा फुटण्यास तत्पर असतात. अत्यंत कठीण रत्न हिरा हें रत्नहि ह्या नियमास अपवाद नाही. हिरा हा पैलूशीं समांतर अशा चार ठिकाणीं फुटणें शक्य आहे. फक्त एवढेंच कीं निरनिराळीं रत्नें फुटण्यास कमीजास्त जोराचा धक्का लागत

असतो. हिरा फोडण्यास फारच प्रयत्न लागतो. परंतु पुष्पराग नुसत्या कठीण दगडावर पडला तरी त्यास चीर पडते. म्हणून रत्ने सांभाळून वापरावीं लागतात. त्यांस हातांतून पडूं देतां कामा नये.

रत्नांची भिदुर पातळी ही बाहेरच्या कोणत्यातरी पातळीशीं समांतर असते. रत्नांच्या भिदुरतेची दिशा ओळखितां आल्यानें रत्नांची जात ओळखिण्यास मदत होते. म्हणून मोठे ग्रंथ वाचून अगर तज्ञांकडून समजून घेऊन स्वाभाविक भिदुरतेच्या ठिकाणांचा अभ्यास करावा. मोठ्या रत्नाचे वापरण्यालायक तुकडे करण्याकरितां अथवा अंतर्गत ऐब काढून टाकण्याकरितां जेव्हां रत्ने फोडावयाचीं असतात तेव्हां ह्या ज्ञानाचा फार उपयोग होतो.

२ रत्नांचें विशिष्टगुरुत्व

पाण्यास प्रमाणभूत कल्पून त्याच्या वजनाशीं खनिज पदार्थांच्या व सर्व इतर घन व द्रवरूपी पदार्थांच्या वजनाची तुलना करितात आणि पाण्याच्या जितके पट दुसरे पदार्थ जड असतात, त्या पटीच्या संख्येस विशिष्टगुरुत्व किंवा वजन म्हणतात. हें लक्षांत ठेविलें पाहिजे कीं, विशिष्टगुरुत्व काढतांना समान आकाराचे पदार्थ घेतात आणि विविक्षित पदार्थ तेवढ्याच आकाराच्या पाण्याच्या वजनाच्या किती पट आहे हें काढतात. तेवढ्याच आकाराच्या पाण्याच्या गंधक दुप्पट व गार तिप्पट जड आहे. लोखंडाचे सारख्या आकाराचे दोन तुकडे घेतले, तर त्यांचें वजन सारखें भरेल. समान आकारांत एकाच पदार्थाचा द्रव्यसमुच्चय सारखा असतो. परंतु एका तुकड्याच्या जागीं तेवढ्याच आकाराचा शिशाचा तुकडा घेतला तर त्याचें वजन जास्त भरेल. म्हणजे सारख्या आकारांत शिशाचें द्रव्य लोखंडापेक्षां जास्त असतें. ४° अंश उष्णतामानाच्या शुद्ध पाण्याचें विशिष्टगुरुत्व एक कल्पून नेहमीं दृष्टीसमोर येणाऱ्या अशा रत्नांचीं विशिष्टगुरुत्वे खालच्या यादींत दिलीं आहेत.

अंबर १.०८

ओपल २.१५

चंद्रकांत व सूर्यकांत २.५७

हिरा ३.५२

पुष्पराग ३.५३

स्पायनेल (लाल) ३.६०

पोंवळें २'६५
 कांचमणि २'६६
 मोतीं २'६५ ते २'८९
 पाच २'७४
 पिरोजा २'८२
 तोरमली ३'१०

गोमेद ३'६१
 स्वर्णवैडूर्य ३'७३
 पायरोप चुनडी ३'७८
 डेमंटाईड चुनडी ३'८४
 कुरुंद ४'०३
 लाल चुनडी ४'०५
 झिकॉन ४'२० ते ४'६९

कोणत्याहि पदार्थांचें विशिष्टगुणत्व काढणें झाल्यास ताजव्यांत त्याचें वजन काढावें. नंतर त्यास बारीक दोरीनें बांधून पारड्यास अडकवावें व पारड्याखालीं पाण्याचें भांडें ठेवून त्यांत पदार्थांस बुडूं द्यावें. पाण्याचा आधार मिळाल्यानें वजन कमी भरेल. जितकें वजन कमी भरेल तेंच पदार्थांच्या आकाराएवढ्या पाण्याचें वजन असतें. यानें पदार्थांच्या मूळ वजनास भागिलें म्हणजे विशिष्टगुणत्व निघतें.

३ रत्नांची चकाकी अथवा तेज

प्रकाशाच्या परावर्तनाचा एक परिणाम पदार्थांला तेज येणें हा होय. ह्या तेजाच्या चार प्रति आणि सात प्रकार अथवा जाति आहेत. उत्तम हिऱ्याचें तेज पहिल्या प्रतीचें म्हणजे प्रखर असतें. उत्तम पाचेचें तेज कोमल असतें. त्याबद्दल 'कोमलत्वं मरकते प्रशंसति परीक्षकः' असें वाक्य आहे. ह्या तेजाच्या प्रति Splendid (आगीप्रमाणें प्रखर), Shining (चकचकीत अथवा देदीप्यमान) Glistening (लुसलुशीत, कोमल), Glimmering (मिणमिणित; अल्पकांति) अशा दिल्या आहेत. पण ह्याच्या दरम्यानहि अनेक पायऱ्या आहेत. ह्या अमुक एका जातींतच असतात असें नाही. एकाच जातींतहि ह्या तेजाच्या कमीजास्त प्रती असूं शकतात. एवढें मात्र खरें की ज्या पदार्थांचें काठिन्य जास्त आणि ज्यांच्यांतून प्रकाशाचें परावर्तन जास्त होतें त्याचें तेज जास्त असतें. शिवाय जिल्ह-ईनेंहि तेज अथवा चमक वाढते. कारण पृष्ठभाग खडबडीत असल्यास तेज एकवटत नाही.

तेजाचे प्रकार आहेत ते:-

- १ घातुसदृश म्हणजे घातुसारखें तेज.
- २ वज्रसदृश म्हणजे हिऱ्यासारखें.
- ३ कांचसदृश म्हणजे कांचेसारखें. हिऱ्याशिवाय बहुतेक रत्नांचे तेज असें असते.
- ४ तैलसदृश म्हणजे तेलकट किंवा मेणकट-लसण्या आणि गोमेद यांचें तेज असें असते.
- ५ राळसदृश म्हणजे राळेसारखें.
- ६ कौशेयसदृश म्हणजे रेशमासारखें.
- ७ मौक्तिकसदृश म्हणजे मोत्यासारखें.

रत्नांची पारख रत्नांच्या तेजाच्या ओळखीवर करतां येते. ही पारख शिकण्याचा अभ्यास करावा लागतो. हिऱ्याचें तेज प्रखर असतें. रोज पहाण्याच्या संवयीनें तें ध्यानांत राहातें. शिवाय त्याचे तेजाचा प्रखरपणा दुसऱ्या जातीच्या रत्नाशीं ताडून पहावा लागतो. पांढऱ्या खोट्या रत्नाच्या तेजाशीं, पांढऱ्या तोरमल्लीच्या तेजाशीं आणि पुष्करागाच्या तेजाशीं त्याची वारंवार तुलना करून पाहून दृष्टीला शिक्षण दिल्यानें हें तेज ओळखतें. रत्नांचें तेज ओळखणें उपजत अंग-स्वभावावर पुष्कळ अवलंबून आहे. परंतु तो उपजत स्वभाव सर्वोनाच लाभलेला नसतो. म्हणून अभ्यास व संवय करून तो अंगीं आणावा लागतो. हिऱ्याखेरीज बहुतेक रत्नांचें तेज कांचेसारखें असतें; पण रत्नांच्या कमीजास्त काठिन्यामुळे त्यांचे तेजांत कमीजास्त तीक्ष्णता दिसून येते. उदाहरणार्थ खरा पुष्कराग आणि पिवळ्या कांचमण्याचा पुष्कराग यांची एकदम तपासणी केल्यास खऱ्या पुष्करागाच्या उच्च काठिन्यामुळे त्याचें तेज नीच काठिन्याच्या कांचमण्यापेक्षां जास्त तीव्र असलेलें दिसून येतें. तसेंच कुरंद पुष्करागाहून जास्त कठीण असल्यानें त्याचीं रत्नें जीं माणिक आणि शनि त्यांचें तेज पुष्करागाच्या तेजापेक्षां पुष्कळच तीव्र असतें. जितकें कठीण रत्न तितकी जास्त जिल्हई त्याला येते. ह्यामुळेही त्याच्या तेजास जास्त तीक्ष्णता येते.

४ रत्नांचे रंग

हिरा व मोती ह्यांचा रंग पांढरा असतो. माणकाचा रंग तांबडा असतो. नीलरत्न निळें असतें. पाच रत्न हिरवें. गोमेद पांढरट पिवळें. पुष्कराज तांबूस पिवळा (पिंजर), प्रवाळ लाल आणि वैडूर्य (लसण्या) हे पांढुरकें हिरवें असतें. हे ह्या नवमहारत्नांचे सामान्य रंग आहेत. पण ह्यांपैकीं बहुतेक रत्नें आणखी अनेक रंगाचीं असतात. जसें:-हिरा हा पिवळा, गुलाबी, निळा, हिरवा व तांबडाहि असतो. तसेच माणिक, पुष्कराग वगैरे रत्नांचेहि अनेक रंग आहेत. उपरतेंहि एकाहून जास्त रंगाचीं असतात. म्हणून नुसत्या रंगावरून रत्नाच्या जातीचा निर्णय करितां येत नाही. रंगाच्या छटा, गहिरेपणा, फिकेपणा, रत्नाच्या आंगभर कमीजास्त रंग असणें इत्यादि रंगांतर्गत कांहीं सूक्ष्म साधनें आहेत त्यांचीं रत्नें ओळखण्याचे कामीं मदत होते. याची जास्त माहिती आमच्या रत्नप्रदीप खंड दुसरा प्रकरण बारावें यांत दिलेली आहे. अवश्य तर ती तेथें पहावी.

विशिष्ट रत्नांचे विशिष्ट गुणः-हिरा हलका असेल तो प्रशंसनीय, माणिक वगैरे रत्नें वजनदार असतील तीं प्रशंसनीय पाच कोमल दिसेल ती प्रशंसनीय.

प्रकरण सहावें

करसंज्ञा आणि सांकेतिक भाषा

सर्वदा सर्व भाण्डेषु सर्वपण्ये विशेषतः

जानीयात्सर्व भाषाश्च करसंज्ञां वणिग्वराः ॥

व्यापाराला भांडवल काढलें असतां, त्यांतहि विशेषतः विक्रीकरतां माल मांडला असतां, ज्या लोकांशीं व्यापारी संबंध येतो त्या लोकांच्या सर्व भाषा व्यापाऱ्यांनीं शिकल्या पाहिजेत व सौदा करण्याच्या हस्तसंज्ञाहि जाणल्या पाहिजेत असा आदेश वरील श्लोकांत दिलेला आहे. हा श्लोक अगस्त्यमताच्या एका पोर्थातील परिशिष्टांत आढळतो. तेथें त्यानंतर पूर्वकालीन करसंज्ञांचें वर्णन केलें आहे. तें हल्लींच्या काळांत जसेंच्या तसें चालू नाही. अगस्त्यमत हा ग्रंथ दक्षिण हिंदुस्थानच्या तामिल भागांत तयार झाल्याचें दिसतें. यांतील वजन व वजनांचीं नांवें त्या प्रदेशांतील आहेत. हें परिशिष्ट मूळ ग्रंथकर्त्यानें लिहिलें नसावें असा संशय घेण्यास बरीच जागा आहे; पण परिशिष्टांतील वर्णन तद्देशीयच आहे असें मानिल्यास त्यांत वर्णिलेला हस्तसंज्ञांचा प्रकार कदाचित् त्या देशांत म्हणजे तामिल भागांत अद्यापहि चालू असेल पण तें समजण्यास मार्ग नाही. या ग्रंथाच्या वाचकांस महाराष्ट्रांतील मुंबई बाजारांत व्यापारांत चालू असलेल्या करसंज्ञेच्या ज्ञानाची आवश्यकता आहे म्हणून त्या करसंज्ञेचें आणि तत्सम सांकेतिक भाषेचें वर्णन पुढें केलें आहे.

वस्त्राखालीं हात घालून हस्तसंज्ञांनीं सौदा करण्याची पद्धत युरोपीयनांत नव्हती असें ले ल्यापिदेर अंदियाँ या ग्रंथाचे लेखक लुई फीनो यांच्या उद्गारावरून दिसतें. परंतु आपल्या देशांत सर्व महत्त्वाच्या व्यापारांत असे पदराखालीं सौदे होत असतात. कपाशी, धान्यें, फळें,

जवाहीर वगैरे या बहुतेक सर्व व्यापारांत हस्तसंज्ञा आहेत. अनेक व्यापाऱ्यांचा घोळका बसला असतां अशा साधनांनै बाहेर न कळतां चुटकी-सरसे सौदे होतात. शिवाय आपल्या येथें कोणी व्यापारी विकण्याकरतां माल घेऊन आला व त्यानें माल दाखविला अशा वेळीं तेथें बसलेल्या आपल्या एकाद्या माहितगार हितचिंतकास हा माल घेऊं नये असें सुचविणें असल्यास तोही जणूं कांहीं किंमत विचारण्याच्या मिषानें वस्त्राखालीं हात घालून आपला नुसता आंगठा धरतो म्हणजे आपण समजावें कीं हा माल घेण्यासारखा नाही. ही सौदा न करण्याबद्दल इशान्याची खूण आहे. यामुळें न बोलतां आपणास त्याचा इशारा मिळाल्यामुळें त्याच्या बोलण्यानें येणारा वाईटपणा वांचतो.

(१) पांच बोटांपैकीं पहिलें बोट म्हणजे आंगठ्याजवळील तर्जनी^१ हें धरले असतां १, १०, १००, १०००, असा अर्थ होतो. सौदा करणारे दोघेहि पुरे जाणते व्यापारी असले म्हणजे माल काय किंमतीचा आहे याचा अंदाज दोघांनाहि असतो म्हणून नुसतें पहिलें एक बोट धरलें असतां १, १०, १००, १०००, यांपैकीं जो योग्य आंकडा असेल तो ते समजतात. ज्यावेळीं दोघांपैकीं कोणी इसम पुरा जाणता नसेल त्या वेळीं बोटें धरून दहा अगर त्याचें पुढील दशक समजाविणें असतील तर एक, दोन बोटें धरून तोंडांनै 'दाही' हा शब्द उच्चारवा म्हणजे दहा, वीस इत्यादि समजले जातात. एक अगर जास्ती बोटें धरून शंभर अगर त्याचें शतक समजाविणें असल्यास 'सो' असा शब्द उच्चारवा म्हणजे शंभराचा, दोनशेंचा इत्यादिकांचा बोध होतो. एक बोट धरून हजार ही संख्या उद्दिष्ट असेल तर "मोठें घर" असें बोलावें म्हणजे हजारांचा बोध होतो. एक ते नऊ हे आंकडे बोट धरून समजाविणें असल्यास "दाणा" शब्द तोंडांनै म्हणावा. असा शब्दानें खुलासा होत गेला म्हणजे अर्धवट जाणत्या माणसाचा

^१ तर्जनी म्हणजे आंगठ्याजवळचें पहिलें बोट. त्याजवळचें मध्यमा म्हणजे मधलें बोट हें दुसरें; त्याजवळचें अनामिका हें तिसरें; आणि शेवटचें कनिष्ठिका ऊर्फ करांगळी हें चवथें बोट असें समजावें. आंगठ्यासहित हीं चारी बोटें पकडलीं म्हणजे पांच बोटें झालीं.

मौघळ होत नाही. बरोबर व त्वरित अर्थबोध होत जातो. एकाच वेळेस दोन बोटें धरिलीं असतां २, २०, २००, २०००; तीन बोटें धरिलीं ३, ३०, ३००, ३०००; चार बोटें धरलीं असतां ४, ४०, ४००, ४०००; आणि पांच बोटें धरलीं असतां ५, ५०, ५००, ५००० असा अर्थ होतो. आपणाला सहा दाखवावयाचे असतां पहिलीं तीन बोटें म्हणजे तर्जनी, मध्यमा आणि अनामिका हीं दोनदां दाबावयाचीं, असें केलें म्हणजे याचा अर्थ ६, ६०, ६००, ६००० असा होतो. सहा दाखवावयाचे असतां बांच बोटें व एक बोट दाबून चालत नाही. सात दाखवावयाचे असल्यास चार बोटें व तीन बोटें दाबावयाचीं म्हणजे ७, ७०, ७००, ७००० असा त्याचा अर्थ होतो. आठ दाखवावयाचे असल्यास चार बोटें दोनदां दाबावयाचीं म्हणजे ८, ८०, ८००, ८००० असा अर्थ होतो. नऊ दाखवावयाचे असल्यास पहिलें एक बोट म्हणजे तर्जनी समोर नीट धरून प्रथम दाबावयाचें व पुन्हा तेंच बोट जरा आंत वळवावयाचें म्हणजे दहा उणे एक = नऊ असा अर्थ होतो व त्यानें ९, ९०, ९००, ९००० असा अर्थ दर्शविला जातो.

(२) अकरा दाखवावयाचे असल्यास एक पहिलें बोट (तर्जनी) पकडावें व दाही शब्द म्हणावा म्हणजे १० झाले. पुन्हा तेंच बोट पकडावें म्हणजे ११ होतात. याप्रमाणें प्रथम पहिलें बोट धरून सोडावें व नंतर वरील कलम १ यांत लिहिल्या पद्धतीनें दोन, तीन इत्यादि दोन ते नऊ आंकडे दाखविणारीं बोटें धरून १२ ते १९ पर्यंत आंकडे दाखवावे. याचप्रमाणें २१ ते ९९ पर्यंतच्या संख्या दाखविणेकरतां त्या त्या आंकड्याकरितां वर उरविलेल्या पद्धतीनें बोटें दाबावीं. जसें ३४ दाखवावयाचे म्हणजे पहिलीं तीन बोटें दाबून सोडावीं. व्यापारी सराईत नसल्यास तोंडानें 'दाही' हा शब्द म्हणावा म्हणजे ३० झाले. पुन्हा पहिलीं चार बोटें दाबावीं म्हणजे ४ एकूण ३४ झाले. याच पद्धतीनें पुढें, हजारला 'मोटें घर' म्हणतात तेथपर्यंत, कोणत्याही संख्येचें निदर्शन करतां येईल. जसें:—

४०३ दाखवावयाचे म्हणजे पहिलीं ४ बोटें दाबावीं व तोंडाने 'सो' असें म्हणावें. म्हणजे ४०० होतात. सो शब्द न म्हटला तर चार बोटें दाब-

ल्याने ४, ४०, ४००, ४००० हीं होतात. त्यांतून इच्छित आंकडा कोणता हे दाखविण्यासाठी 'सो' म्हटलेले चांगले. नंतर पुन्हा तीन बोटें दाबावीं व 'दाणा' असें म्हणावें म्हणजे तीन समजले जातात. जर दाणा शब्द म्हटला नाही तर ३ बोटें दाबल्यानें ३, ३० हे दोन्ही आंकडे होऊं शकतील; म्हणून त्यांतून इच्छित आंकडा कोणता हे दाखविण्यासाठी 'दाणा' शब्द उच्चारवा लागतो म्हणजे तीन झाले. असे ४०० + ३ एकूण ४०३ झाले.

४६० दाखवावयाचे म्हणजे पहिलीं चार बोटें दाबावीं म्हणजे ४०० होतात. ज्याचीं बोटें दाबावयाचीं तो इसम सराइत नसला तर चार बोटें दाबून तोंडानें 'सो' असें म्हणावें. पुन्हा पहिलीं तीन बोटें दोनदां दाबावी व इसम बिनसराइत असेल तर तोंडानें प्रत्येक वेळीं दाही असा शब्द म्हणावा म्हणजे ३० + ३० = ६० होतात. एकूण ४०० + ६० = ४६० झाले.

५७४ दाखवावयाचे म्हणजे सर्व पांची बोटें दाबावीं म्हणजे ५००, पुन्हा ४ बोटें दाबावीं व 'दाही' म्हणावें म्हणजे ४० होतील. पुन्हा तीन बोटें दाबावीं व 'दाही' म्हणावे म्हणजे ३० होतील एकूण ४० + ३० = ७०. नंतर ४ बोटें दाबावी म्हणजे ४ = ५०० + ७० + ४ = ५७४ झाले.

७०० दाखवावयाचे म्हणजे प्रथमच पहिली ४ बोटें दाबून तोंडानें 'सो' म्हणावें व नंतर पुन्हा पहिलीं तीन बोटें दाबावीं व तोंडानें 'सो' म्हणावें म्हणजे सातशें होतात. ७२२ दाखवावयाचे म्हणजे प्रथम चार बोटें दाबावीं व 'सो' म्हणावें म्हणजे ४००, पुन्हा ३ बोटें दाबावीं व 'सो' शब्द उच्चारवा म्हणजे ३००, पुन्हा २ दाबावीं व दाही शब्द उच्चारवा म्हणजे २०, पुन्हा २ दाबावी म्हणजे २ असे ७२२ एकूण झाले.

८३४ = पहिलीं बोटें दोनदां दाबावीं म्हणजे ८००, पुन्हा पहिलीं ३ दाबावीं म्हणजे ३०, पुन्हा पहिलीं ४ दाबावीं म्हणजे ४ एकूण ८३४. सो, दाही, दाणा हे शब्द ज्याशीं आपण व्यवहार करतो त्यांचे ज्ञान पाहून उच्चारवे अगर न उच्चारवे.

एक शेंकड्यास तोंडानें उच्चारण्याचा 'घर' असाही शब्द आहे. पण तो जवाहिरांत न वापरतां सोन्याच्या व्यवहारांत चालू आहे. जवाहिरें 'सो' शब्दच शंभराकरतां वापरतात. एक हजारस 'मोटें घर' किंवा 'मोडूं

घर' असें म्हणतात. चार आणे म्हणजे पावली, पाव रुपया दाखवावयाचा असल्यास तळ हातावर उभी एक रेघ, आठ आणे दाखविण्याकरतां उभ्या दोन रेघा, बारा आणे दाखविण्याकरतां उभ्या तीन रेघा '।', '।।', '।।।' अशा अगर टिंबाशिवाय नुसत्या १, ११, १११ अशा रेघा दाखवितात. एक आण्याकरितां तळहातावर आडवी एक रेघ - अशी दोन आण्यांकरतां दोन रेघा = अशा आणि तीन आण्यांकरतां ≡ अशा ओढून दाखवितात. उदाहरणार्थ:-२। ≡ दाखवावयाचे असल्यास पहिलीं दोन बोटे धरतात म्हणजे दोन रुपये झाके. मग पावली करतां तळ हातावर उभी एक रेघ व तीन आण्याकरतां उभ्या रेघेच्या पुढें आडव्या तीन रेघा काढतात. म्हणजे २। ≡ झाले. पंचविसाला म्हणजे पावशेंकड्याला 'पान' हा शब्द बोलतात. अर्ध्या शेंकड्याला दोन पान व पाऊण शेंकड्याला तीन पान म्हणतात.

सांकेतिक भाषा

बोळून-पण माहितगार व्यापारी नसेल अशा माणसांस न कळतां-तोंडानें सौदा करावया असल्यास आकड्याकरितां सांकेतिक शब्द वापरतात; ते असें:-

| संख्या | तिचा शब्द | संख्या | तिचा शब्द |
|--------|-----------|--------|-----------------|
| १ | कणी | २५ | सळीसूत अथवा पान |
| २ | मेली | ५० | मूळदाही |
| ३ | एकवई | ५५ | मूळमूळ |
| ४ | एरण | ६० | बेडदाही |
| ५ | मूळ | ६५ | बेडमूळ |
| ६ | बेड | ७० | समारदाही |
| ७ | समार | ७५ | तीन पान |
| ८ | थाल | १०० | कणी सो |
| ९ | बन | १५० | कणी सो मूळदाही* |

* या रकमेला कणी सो दोन पान म्हटलें तरी तें बरोबरच होईल. पण वडिवाट तशी नाही कणी सो मूळदाही म्हणण्याची आहे.

| संख्या | तिचा शब्द | संख्या | तिचा शब्द |
|--------|-----------|--------|-----------|
| १० | अंगळ | २०० | मेळी सो |
| ११ | अंगळकणी | ३०० | एकवई सो |
| १२ | बाबर | ४०० | एरण सो |
| १३ | तेपर | ५०० | मूळ सो |
| १४ | चोपर | ६०० | बेड सो |
| १५ | नफ्फर | ७०० | समार सो |
| १६ | बेडपडी | ८०० | थाल सो |
| १७ | समारपडी | ९०० | वन सो |
| १८ | थालपडी | १००० | मोठें घर |
| १९ | वनपडी | | |
| २० | सूत | | |

यापुढें दशसहस्र, लक्ष वगैरेकरितां सांकेतिक शब्द प्रचारांत नाहीत; कारण मोठे सौदे तडकाफडकीं होत नाहीत. व्यापाऱ्यांना ते ठरविण्याचें अगोदर बरीच सवड घेऊन विचार करावा लागतो. यामुळें एकाच बैठकीवर अनेक लोक बसले असतां त्यांस कळूं नये म्हणून गर्दीतच सांकेतिक शब्दांनीं सौदा करण्याची गरज नसते.

सांकेतिक भाषेत जे शब्द चालूं आहेत ते वरप्रमाणें आहेत. तथापि प्रचार जास्त करण्याकरतां खालीलप्रमाणें नवे शब्द तयार करतां येतील. जसें:—

५७४ ही संख्या दाखविण्याकरितां मूळ सो समार दाही एरण असा शब्दसमूह होईल. मूळसो म्हणजे ५००, समारदाही म्हणजे ७०, एरण म्हणजे ४ एकूण ५७४ झाले.

७२२ बद्दल सांकेतिक शब्दसमूह समार सो मेळी दाही मेळी. समारसो म्हणजे ७०० मेळी दाही म्हणजे २०, दुसरा मेळी दाही शब्द म्हणजे २ एकूण ७२२ संख्या झाली.

८३४ बद्दल सांकेतिक शब्दसमूह थाल सो एकवई दाही एरण. थालसो म्हणजे ८००, एकवई दाही म्हणजे ३०, एरण म्हणजे ४ एकूण ८३४.

आतां २१ ते २४ हे शब्द असेच धोरणानें तयार करावयाचे. तें धोरण असें:-२१ या आंकड्यांत २० + १ आहेत. पैकीं २० म्हणजे दोनदशक म्हणून दोनवाचक मेली शब्दापुढें दशक वाचक दाही हा शब्द जोडावा कीं मेलीदाही = २० झाले; व त्यानंतरचा आंकडा १ आहे. त्याकरतां त्यापुढें कणी शब्द लावून मेलीदाहीकणी असा शब्द करावा म्हणजे २१ ह्या संख्येचा वाचक मेली दाही कणी हा शब्द झाला. यापुढें याच पद्धतीनें

२२=मेलीदाही मेली.

२३=मेलीदाही एकवई.

२४=मेलीदाही एरण.

असे शब्द होतील ते बरोबर आहेत. यापुढील दरम्यानचे शब्दहि अशाच धोरणानें तयार करावयाचे. ५ शतकाकरितां सो शब्द आणि हजारकरितां मोठें घर हे शब्द वापरून वर दिल्याप्रमाणेंच संख्या तयार करतात.

आतां सर्वांचे स्पष्टीकरणाकरतां पुढील संख्यावाचक शब्द पहा:-
बेड म्हणजे ६, बेडदाही=६०, बेडसो=६००, बेड मोठी घरे=६०००.
यांत ६०० या संख्येकरतां बेडसो असा शब्द झाला आहे. घर हा शब्द १०० संख्यावाचक आहे म्हणून बेडघर म्हणजे शंभर होऊं शकतील; पण जवाहिराचे व्यापारांत असा घर शब्दाचा उपयोग करण्याचा प्रघात नाही असें पूर्वी करसंज्ञा प्रकरणांत लिहिलेंच आहे तें यांतहि लागू आहे. शंभर ही संख्या दाखविणारा सो शब्दच वापरण्याचा प्रचार आहे.

दुसरे उदाहरण-समार = ७, समारदाही = ७०, समारसो = ७००
समारमोठें घर = ७०००. आपणास सांकेतिक भाषा वापरण्याचा सराव झाला म्हणजे वरील दशक, शतक, सहस्रक वाचक शब्द गाळले तरी चालतात. एकापुढें एक शब्द लावले कीं एक ते दहा नंतर तेच शब्द पुन्हा आल्यास ते दशक या अर्थी; व तेच पुन्हा आल्यास ते शतक, या अर्थी आहेत असें सहज समजतें. सरावलेले व्यापारी व दलाल हे दशक वगैरे वाचक शब्द गाळून थोडक्यांत बोलतात.

प्रकरण ७ वें

जवाहिराची वजनं व तराजू

वजनं

रत्नांवरील जे प्राचीन ग्रंथ आहेत त्यांत रत्नें तोलावयाच्या वजनांचीं नांवें व त्याच्या परिमाणांचीं कोष्टकेंही दिलेलीं आहेत. पण तीं बहुतेक नांवें हल्लीं प्रचारांत नाहींत. जीं प्रचारांत आहेत त्यांचीं परिमाणें त्या नांवाच्या हल्लींच्या वजनाशीं जुळत नाहींत. कांहीं मूळच्या नांवाचे झालेले महाराष्ट्रभाषेतील शब्द प्रचारांत आहेत. त्यांचींही वजनं मूळच्या वजनाशीं जुळत नाहींत. रक्तिका म्हणजे रतनगुंज (काळतोंडी लाल गुंज) हिचा अपभ्रंश होऊन झालेला रती शब्द प्रचारांत आहे. पण हल्लींच्या वापरांतील रतनगुंजेचें वजन रतीच्या वजनापेक्षां पुष्कळच कमी आहे. शुक्रनीतींत हिच्याचें एक वजन रती सांगितलें असून तिचें परिमाण २० क्षुमा (आळशी) म्हणजे रती असें दिलें आहे. तींतच सोनें व पोवळें तोळ्याच्या वजनानें विकतात असें म्हटलें आहे, व चार टांक म्हणजे एक तोळा असें त्याचें परिमाण दिलें आहे. ह्या तोळ्याचें वजन तर अनेक ठिकाणीं अनेक प्रकारचें दिलेलें आढळतें.

अगस्त्यमतांत सितसिद्धार्थ (पांढरी मोहोरी), तंडुल (तांदूळ) हीं हिरे तोलावयाचीं वजनं सांगितलीं असून मोत्यांचीं वजनं मंजाली, माप (उडीद), माण, कलंज, इत्यादि दिलीं आहेत. मानसोल्लासांत मौक्तिकतोलनाचें स्वतंत्र प्रकरण दिलें आहे. त्यांत वजनांचीं नांवें मांजली (मंजाली ?), रूपक, कलंज हीं आलीं आहेत. युक्तिकल्पतरूंत गुंजा, माप (मापक), शाण (शाणक) इत्यादि नांवें असून त्याचीं परिमाणेंही दिलीं आहेत. कौटिलीय अर्थशास्त्रांत वजनामापांबद्दल ४० वा अध्याय आहे. त्यांत माप, गुंजा, कर्प, सितसिद्धार्थ, धरण तंडुल इत्यादि

जवाहिरांची वजनं असून त्यांचें कोष्टकही दिलें आहे. त्यांपैकीं माष व सुवर्ण, ह्यांच्या हल्लींच्या नव्या कायद्यांतील पद्धतीप्रमाणें, वजनांचे हिस्से व पटी दिल्या आहेत.

कित्येक पाश्चात्य विद्वानांनीं संस्कृत भाषेतील रत्नांवरील ग्रंथांचेंही परिशीलन केलें आहे व कित्येक ठिकाणीं त्या ग्रंथांतील वजनांचा पाश्चात्य वजनांशीं मेळ घालण्याचाही प्रयत्न केला आहे. इंडियन अँटिकेरीच्या तेराव्या पुस्तकांत मंजालीचें परिमाण पांच ग्रॅन असें दिलें असून Thos, Firth and sons Limited Northfolk Works Sheffield's Pocket Diary मध्ये ३१७ ग्रॅन म्हणजे १ कॅरट असेंही नमूद करून ठेविलें आहे.

वर निर्दिष्ट केलेल्या ग्रंथांचें विहंगमदृष्ट्या निरीक्षण केलें असतां असें दिसतें कीं निदान प्रारंभीं तरी ब्रियाण्यासारखे सुटसुटीत, सूक्ष्म व हलके पदार्थच वजनापेवजीं स्वीकारण्यांत आले आहेत. मौल्यवान् रत्नादि द्रव्ये तोलण्याकरितां प्रथम अत्यंत बारीक पांढरी मोहोरी, तांदुळ, जव किंवा यव यांची योजना केलेली असून जास्त वजनाकरितां गुंजा, उडीद इत्यादि घेतलीं आहेत. अगस्तिसतांत दिलेलें मंजाली हें नांव मंजाडी ह्याचेंच रूप आहे (डलयोरैक्यात्). त्यांतीलच कलंज हें कलंगु ह्याचें अपभ्रष्ट रूप आहे. मंजाडी व कलंगु ह्या ब्रिया दक्षिण हिंदुस्थानांत व सिलोनांत मिळतात. रति हें वजन रक्तिका म्हणजे गुंज ह्या शब्दावरून निघालेलें आहे. फार काय सांगावें, इंग्रजी क्यारट हें वजनहि फ्रान्स देशांतील क्यारट या नांवाच्या झाडाच्या ब्रियेवरून पडलें आहे. इंग्रजी ग्रॅन हा शब्द तर निवळ धान्यवाचक आहे. वाल हें सोन्याचें वजन फताड्या तांबड्या गुंजेवरून केलेलें दिसतें. लांबीसंदीचीं कांहीं मापें मनुष्याच्या अवयवांवरून ठरविलेलीं दिसतात. अशीं हीं धान्याचीं अगर मनुष्याच्या अवयवांचीं केलेलीं परिमाणें सारखीं असत नाहीत यांत आश्चर्य काय ? जमिनीच्या निरनिराळ्या मगदुराप्रमाणें जमिनींतून कसदार अगर निकस, लहान अगर मोठें, हलकें अगर जड असें धान्याचें बीज निघतें. मनुष्यप्राणीही ठेंगणा अगर उंच असतो, त्याच्या उंचीच्या मानानें त्याचे अवयवही लहान मोठें असतात. अशा परिस्थितींतून निवडलेलीं वजनं मापें सारखीं

भरलीं तरच आश्चर्य. या कारणानेंच निरनिराळ्या स्थळीं अशा वजनांचें परिमाण निरनिराळें भरतें व तें तें तें प्रचलित होतें. गुंजा, माष, कॅरट इत्यादि वजनांचें परिमाण भिन्न भिन्न ठिकाणीं भिन्न भिन्न आढळतें याचें हें कारण आहे. ह्या फरकामुळें व्यवहारांत एकवाक्यता करण्यास मोठा त्रास पडतो. आणि अतज्ज्ञांची चुकभूल होते. हा त्रास व ही चुकभूल नाहीशी करावी व सर्व ठिकाणचे व्यवहार एकसूत्री सरळ चालवे म्हणून आपल्या सरकारनें वजनामापांच्या एकीकरणाचा कायदा मुंबई अक्ट नंबर १५ (सन १९३२चा) पास केला आहे. यांत घातूंच्या निश्चित तुकड्यांनीं वजनांचें प्रमाण निश्चित करण्यांत आलें आहे.

या कायद्यामुळें सोन्यारुप्याच्या वजनांतून गुंजा, मासे यांचें उच्चा-टन झालें आहे व वाल आणि तोळा हीं वजनं कायदेशीर ठरवून त्यांचें परिमाण निश्चित करून दिलें आहे. मोत्यांचे वजनांतून तंडुल आणि टांक हीं नाहीशीं करून ग्रेन, रति आणि तोळा हीं वजनं निश्चित केलीं आहेत. मौक्तिकेतर जवाहिरांतही हींच कायम केलीं आहेत. इंग्रजी कॅरट हें हिंदी वजन नव्हे. पण पाश्चात्य ग्राहक बहुधा कॅरटच्या भावानें जवाहीर खरेदी करूं इच्छितात. त्या कॅरटचें ग्रेनशीं परिमाण इंटर नॅशनल इंस्टिट्यूट ऑफ वेट्स अँड मेझर्स, पारीस, ह्या संस्थेनें ठराव करून ३.१७० ग्रेन (२०० मिलिग्राम) म्हणजे एक कॅरट असें नक्की केलें आहे. यामुळें युरोपियनांचीही सोय झाली आहे. रतीचें कॅरटशीं प्रमाण १.०९३१ रति म्हणजे १ कॅरट असें आहे. यावरून रतीनें मोजलेला माल कॅरटच्या हिशोबानें द्यावयाचा असल्यास रुपयामागें एक आणा पांच पै जास्त घ्यावे असें हिशोबानें निघतें. पण हल्लीं व्यवहारांत ०१ ते ०१०३ पर्यंत जास्त धरतात.

मोत्यांच्या व्यवहारांत किंमती ठरविण्यांकरतां रतींच्या वजनावरून जे चव, दोकडे व बदाम केले जातात ते वजन या सदरांत येत नाहीत. मोत्यांचा दर्जा व दाण्यांचें वजन याचा किंमतीशीं मेळ घालण्याकरतां ती एक फार सूक्ष्म नजरेनें बसविलेली युक्ति आहे.

इतर प्रकारच्या व्यापारांतील वजनांचीं परिमाणें हीं निश्चित केलीं आहेत. पण त्याचा विचार या ग्रंथाच्या क्षेत्राच्या बाहेरचा असल्यानें

येथें केला नाही. सोने, चांदी या घातूंचा संबंध जवाहिराच्या आंगठ्या व इतर दागिने करण्याच्या कार्मीं येत असल्याने तितक्यापुरताच त्यांचा विचार केला आहे.

कलचर मोत्यांचा संबंध जपानी व्यापाऱ्यांशीं येतो. त्यांचें कोष्टक असें:—

१० फुन = १ कुन

१० कुन = १ मोम

३ मोम = १ तोळा.

मुंबईच्या नवीन म्हणजे सन १९३२ चा कायदा नंबर १५ वरून कायम झालेल्या वजनांची परिमाणें खालीं दिलीं आहेत:—

मोत्यांकरतां व इतर रत्नांकरतां रती हें वजन आहे. त्या ६२ रतींचा १ तोळा होतो. अर्थात् रती म्हणजे $\frac{1}{62}$ तोळा. रतीच्या पटी म्हणजे २, ३, ६, १२, २४, ४८, ७२, १२० व २४० अशीं वजनें आणि रतीचे हिस्से म्हणजे पोटभागरती $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{8}$, व $\frac{1}{10}$ असे हिस्से दाखविणारीं वजनें तयार केलीं आहेत. एका रतीचें वजन २.९ ग्रेन भरतें.

मोत्यांकरतां व इतर जवाहिराकरतां एकाच मोटें वजन तोळा आहे व लहान वजन ग्रेन हें आहे. १८० ग्रेन म्हणजे एक तोळा. ह्या तोळ्याच्या पटी तोळे २, ४, ८ यांचीं वजनें आणि तोळ्याचे हिस्से म्हणजे पोट वजनें तोळा $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ व $\frac{1}{5}$ अशीं यांची स्वतंत्र वजनें तयार केलीं आहेत. लहान वजन ग्रेन याचे पोटहिस्से ग्रेन $\frac{1}{20}$, $\frac{1}{30}$, $\frac{1}{40}$, $\frac{1}{50}$, $\frac{1}{60}$, $\frac{1}{80}$, हे आहेत आणि मोठीं वजनें ग्रेन २, ३, ४, ५, ६, ८, १०, १२, १६, २०, २४, ३०, ४८, ५०, ६०, ७२, १००, १२०, २००, २४०, ३००, ५००, १०००, २०००, ४००० अशीं आहेत.

निव्वळ सोन्याकरतां तोळा व वाल हीं वजनें आहेत. ४० वाल म्हणजे १ तोळा, गुालाचे हिस्से $\frac{1}{2}$ व $\frac{1}{3}$. एक वालाचें वजन ४ $\frac{1}{3}$ ग्रेन असतें.

बुलियन तोळा (चांदी सोन्याच्या व्यवहारांत वापरण्याचा तोळा), रती, ग्रेन हीं वजनं भरीव पितळ, तोफेचा धातु, ब्रांझ धातु किंवा जर्मन सिल्व्हर यांचींच केलेलीं असलीं पाहिजेत. वाल हें वजन, रती व तिच्या हिशशाचीं हलकीं वजनं, तसेंच बारा ग्रेनी आणि ग्रेनांचीं याहून हलकीं वजनं हीं भरीव पितळ, तोफेचा धातु, ब्रान्झ, अल्युमिनियम, अथवा प्लॅटिनम यांचीं असलीं तरी चालतील. तोळ्याचें वजन शंभर भारांचें अगर त्याचे आंतील असल्यास तें चपटें व वर्तुळाकार असलें पाहिजे. वाटल्यास त्यास उचलण्याकरतां गेंदासारखी गांठ केली तरी चालते. बुलियन तोळा वजनांवर 'बुलियन तोळा' अथवा त्याचा संक्षेप दाखविणारीं अक्षरें घातलींच पाहिजेत. वालांचीं वजनं नुसतीं चपटीं व वर्तुळाकार असलीं पाहिजेत.

एक रती व त्याच्या पटी यांचीं वजनं चपटीं आणि वर्तुळाकार असून त्यांस उचलण्याकरतां गेंदासारखी गांठ असलीच पाहिजे. एका रतीच्या खालचीं वजनं फक्त चपटीं आणि चौकोनी असलीं पाहिजेत.

एक औंस अगर त्याहून जास्त वजन भरेल इतक्या ग्रेनांचीं जीं वजनं करावयाचीं तीं लंबवर्तुळ (Cylindrical) असावीं व त्यांस उचलण्याकरतां गेंदासारख्या गांठी असाव्या. ग्रेनांचीं वजनं जीं एक औंसापेक्षां वजनानें कमी असतील तीं सर्व चपटीं असावीं. त्यांना उचलण्याकरतां गेंदासारखी गांठ असली तरी चालेल अगर नसली तरी चालेल. एका औंसापेक्षां कमी वजनाचीं ग्रेनांचीं वजनं तारेचीं केलीं तरी चालतात.

एक औंसाचीं वजनं व दोन तोळे अगर दोन तोळ्यांहून जास्त भारांचीं वजनं यांना फक्त एक एक छिद्र वजनाच्या कमीजास्तीचा मेळ घालण्याकरितां ठेवलेलें असावें. रतीच्या वजनास असा मेळ घालण्याकरतां छिद्रें नसावीं.

तराजूप्रमाणें कांहीं प्रमाणाच्या वरच्या वजनांवर तीं तयार करणारांचें नांवही असावें लागतें. मोत्यांचा व जवाहिराचा घंदा करणारांचीं

वजनं जर बुलियन तोळा, बाल अथवा रती यांखेरीज निराळीं असतील तर तीं छापूं नयेत असा नियम आहे.

ए क्लास बीम स्केल असल्यास फरकाची माफी (error) किती ध्यावी हें नियमांत जोडलेल्या सातव्या यादींत (Table) सांगितलें आहे; आणि बी क्लासचा तराजू वापरतां असल्यास फरकाची माफी (error) किती ध्यावी हें नियमांत जोडलेल्या आठव्या यादींत (Table) सांगितलें आहे.

हा कायदा लागू झाल्यापासून छापलेल्या वजनांशिवाय वजनं वापरतां येत नाहींत. आणि तंडुल, टांक, यांसारखीं वजनं अथवा दुसरी गारेचीं वाटोळीं वजनं हीं हल्लींच्या नियमांप्रमाणें धातूचीं व चपटीं चौकोनी वगैरे ठरविलेल्या आकाराची नाहींत म्हणून छापतां येत नाहींत. म्हणून तीं आतां सर्व निकामी झालीं आहेत. म्हणून नवीन कायद्यांत सांगितलेलीं व नियमाप्रमाणें आकार वगैरे असलेलींच वजनं वापरलीं पाहिजेत. किरकोळ अगर घाऊक माल विक्रीच्या दुकानदारांचीं हीं वजनं, मापें व तराजू प्रत्येक दोन वर्षांतून एकदां तरी तपासून व छापून घ्यावीं लागतात. एकदां छापलीं तरी अशाच मुदतींत पुन्हां तपासून घ्यावीं लागतात. कायद्याप्रमाणें व नियमाप्रमाणें तयार केलेलीं आणि छापलेलीं वजनं, मापें व तराजू विकत मिळतात. तीं ज्यांकडे मिळतात त्यांपैकीं कांहींचीं नांवें परिशिष्ट २ यांत दिलीं आहेत.

वजनं, मापें व तराजू कायद्याप्रमाणें तयार करून छापून न घेतां वापरणें हा गुन्हा होतो. त्याचप्रमाणें वजनामापांच्या सरकारी इन्स्पेक्टरांनीं तीं तपासण्यास मागितलीं असतां तीं देण्याचें नाकारलें किंवा हयगय केली तर तोही गुन्हा होतो. म्हणून आपण कायद्याचे कातरीत न सांपडण्याची प्रत्येक व्यापाऱ्यानें काळजी घ्यावी.^१

^१ मोती व इतर जवाहीर हल्लीं तंडुल, रति, टांक ह्या वजनांनीं आणि सूक्ष्म तराजूनें विकलीं जातात. वजनमापांचा कायदा चालू झाल-

तराजू

पूर्वीच्या काळच्या कांट्यांचीं वर्णनें क्वचित् आढळतात. अगस्ति-मतांत तुलेवर वजन करून हिऱ्याची किंमत करावी असें सांगितलें आहे. पुढें 'त्रासो नाम तुला ज्ञेया' असें लिहिलेलें असल्यानें तुलेला 'त्रास' असें दुसरें नांव असल्याचें दिसतें. हल्लींचा तराजू शब्द त्रास ह्या पूर्वीच्या शब्दाचा अपभ्रंश असावा. अगस्तिमताच्या मौक्तिक परीक्षेच्या पन्नासाव्या श्लोकात 'धर्मतुला' हा शब्दही आला आहे. यावरून त्यावेळीं धर्मकांटाही होता असें दिसतें.

पूर्वीच्या तराजूचें विस्तृत वर्णन मानसोल्लासाच्या 'तुलालक्षणम्' या प्रकरणांत दिलें आहे. तें असें:—

कांस्यपात्रद्वयं वृत्तं समान नामरूपतः ॥

चतुश्छिद्रसमायुक्तं प्रत्येकं रज्जुयंत्रितम् ॥ ४५८ ॥

दण्डः कांस्यमयः श्लक्ष्णो द्वादशांगुलसंमितः

पक्षद्वयसमानश्च प्रान्तयोर्मुद्रिकायुतः ॥ ४५९ ॥

मध्ये तस्य प्रकर्तव्यः कण्टकः कांस्यनिर्मितः ॥

पंचांगुलायतस्तस्य मूले छिद्रं प्रकल्पयेत् ॥ ४६० ॥

निवेश्य छिद्रदेशेऽस्य शलाकाङ्गुलमात्रिका ॥

शलाके प्रान्तयोस्तस्याः कीलयत् तोरणाकृतिः ॥ ४६१ ॥

आहे तरी हीच पूर्वीची वहिवाट अद्यापहि कायमच आहे. तपास करितां याचें कारण असें समजतें कीं कायदा चालू झाला असला तरी जवाहीर विक्रीचें कार्मीं हल्लीं चालू असलेली वजनं, मापें व तराजू तपासून त्यांवर शिके मारण्याची तयारी सरकारकडून अजून झाली नाहीं. म्हणून सरकारी इन्स्पेक्टर तीं तपासत नाहींत व छापीतही नाहींत. ती तयारी झाल्यावर नवीन नियमांचा अम्मल सुरू होईल. तोंपर्यंत पूर्वीचीच वहिवाट चालू राहील.

* असेंच वर्णन नारायणभटाच्या नवपरीक्षेत केलेलें आढळतें. तें मानसोल्लासांतून घेतलेलें दिसतें.

तोरणस्य शिरोर्मध्ये कर्तव्या लघुकुण्डली
 तत्र रज्जुं निबध्नीयात् तां धृत्वा तोलयेत् सुधीः ॥ ४६२ ॥
 कलंजमानकंद्रव्यमेकदेशे निवेशयेत्
 अन्यतो जलबिन्दुस्तु तोलनार्थं विनिक्षिपेत् ॥ ४६३ ॥
 कण्टके च समेजाते तोरणस्य च मध्यमे ॥
 तदा समं विजानीयात् तोलनं नाम कोविदः ॥ ४६४ ॥

अर्थः—वाटोळीं, आकारानें सारखीं व दिसण्यांत सारखीं अशीं दोन काशाचीं पात्रें घ्यावीं. प्रत्येकास चार भोकें पाडावीं आणि त्या प्रत्येक छिद्रांत दोरा घालून तीं सज्ज करावीं. (तराजूचा) दांडा कांशाचा असून तो गुळगुळीत केलेला व वारा अंगुळें लाव असऱावा. त्याच्या दोन्ही बाजवा सारख्या करून त्याच्या दोन्ही टोकांवर छाप मारावा. ह्या दांड्याच्या मध्यावर कांशाचा कांटा तयार करून तो बसवावा कांटा उंचीला पांच अंगुळें करून तो जेथें बसवावयाचा तेथें तळीं भोक असावें. कांट्याची सळई या भोकांतून अंगुलिमात्र शिरकवावी. ह्या कांट्याच्या सळईच्या प्रत्येक बाजूस एकएक अशा दोन सळया कमानदार अशा तयार करून खिळवून टाकाव्या. ह्या कमानदार सळयांच्या माथ्यावर लहान वाटोळी कडी लावावी. त्या कडींत दोरी बांधून ती दोरी धरून बुद्धिमान माणसानें वजन करावें. तोलण्याकरतां एका पारड्यांत कलंज हें वजन घालावें व दुसऱ्या पारड्यात मोती ठेवावें. तोरणाच्या दम्यांन कांटा सारखा राहिला म्हणजे बरोबर वजन झालें असें जाणत्या माणसानें समजावें.

हें पूर्वीच्या जवाहिराच्या तराजूचें वर्णन झालें. ह्या व्यापारासाठीं लागणारे तराजू दिह्री, अमदाबाद, मुंबई वगैरे ठिकाणीं मिळतात. आणि गारेचीं तयार केलेलीं वजनें मिळतात. पण आतां मुंबई सरकारनें सन १९३२ चा अॅक्ट नंबर १५ हा वजनामापांचा कायदा पास केला आहे. तो कायदा ता. १ आगष्ट १९३५ पासून प्रथम मुंबई शहरी आणि भडोच, सुरत, ठाणें, मुंबईचीं उपनगरे, पुणें, अहमदनगर, सातारा, बेळगाव, कराची आणि सकर यां जिल्ह्यांना व या जिल्ह्यांतील म्युनिसिपालिट्यांच्या

हद्दीना लागू केला. त्यानंतर तारीख १ मार्च सन १९३६ पासून मुंबई इलाख्यातील बाकीच्या जिल्ह्यांना म्हणजे अहमदनगर, खेडा, पश्चिम खानदेश, पूर्व खानदेश, नाशिक, सोलापूर, विजापूर, धारवाड, कानडा, कुलाबा, रत्नागिरी, दादू, लारखाना, नबाबशाहा, हैदराबाद, थर, पारकर आणि अपर सिंध फ्रॉटियर या जिल्ह्यांना लागू करण्यांत आला आहे. याप्रमाणे हा कायदा आतां सर्व मुंबई इलाखा व सिंध यांना लागू झाला असल्यामुळे तो कायदा व त्यावरून केलेले नियम हे सर्वास लागू झाले आहेत. व्यापाऱ्यांनीं ते अवश्य वाचले पाहिजेत.

या कायद्याच्या पहिल्या परिशिष्टांत सांगितलेलीं वजनें व या कायद्या अन्वये केलेल्या नियमाप्रमाणे तयार केलेले बीम स्केलचे 'ए' अगर 'बी' क्लासचेच तराजू सोन्या चांदीच्या व जवाहिराच्या व्यापाऱ्यांनीं वापरले पाहिजेत. ते तराजू कसे असावे याचें वर्णन खाली दिलें जात आहे:—

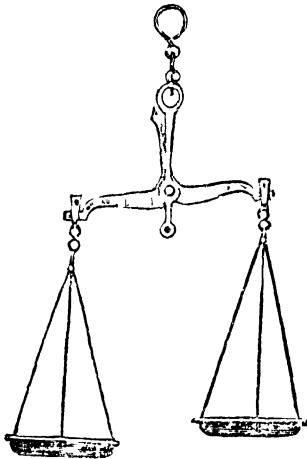
१ तराजूवर तो तयार करणाराचें नांव स्पष्ट व नाहींसे होणार नाही असें लिहिलेलें पाहिजे.

२ अशा बीमस्केल तराजूच्या दांडीचे उजवा व डावा असे दोन भाग सारखे असले पाहिजेत आणि त्याचीं पारडीं त्या त्या भागाखेर असलीं पाहिजेत (वर राहाणारीं असूं नयेत.)

३ अशा बीमस्केल तराजूची दांडी मृदु पोलाद (Mild steel) घडीव लोखंड (Wrought iron), पितळ, ब्रान्स, (कथील तांबें यांचा मिश्र धातु) यांची अगर डायरेक्टर ऑफ इंडस्ट्रीज पसंत करितील त्या दुसऱ्या द्रव्याची असली पाहिजे. याचीं पारडीं मृदु पोलाद, ओतीव लोखंड (Cast iron), पितळ, ब्रान्स, कठीण लांकूड (Hard wood) चामडें याचीं अगर डायरेक्टर ऑफ इंडस्ट्रीज हे ऑफिसर पसंत करितील त्या दुसऱ्या द्रव्याचीं असलीं पाहिजेत. हीं पारडीं धातूची साखळी, धातूचें स्टिरप, (ताडी आणि दुवा यांचें एकमेकांत बसविलेलें अडकण) यांनीं अथवा डायरेक्टर ऑफ इंडस्ट्रीज यांनीं पसंत केलेल्या दुसऱ्या एकाद्या द्रव्याच्या धाग्यानें टांगलेलीं असलीं पाहिजेत. यापैकीं हल्लींच्या चालू व्यवहारांत मृदु पोलादाचीं, पितळेचीं, अगर ब्रान्स धातूचीं पारडीं

असलेले व त्याची पारडी धातूची साखळी अगर रेशमी जाड दोरा यानीं टांगलेलीं असलेले असे तराजूच जास्त आढळांत येतात. रेशमी जाड दोरा डायरेक्टर ऑफ इंडस्ट्रीज यानीं पसंत केलेला आहे.

४ अशा बीमस्केल तराजूचे मध्यावर एक तीक्ष्ण तारेचा त्रिपार्श्व (a knife-edge), एक संधारक भाग (bearing), आणि एक समतोलदर्शक (Indicator) असले पाहिजेत आणि दांडीच्या दोन्ही बाजूच्या प्रत्येक टोंकास एकेक तीक्ष्ण धारेचा त्रिपार्श्व असला पाहिजे. क्लास ' ए ' आणि ' बी ' या प्रकारच्या तराजूचे संधारक भाग म्हणजे ज्यांना पारडीं टांगलेलीं असतात ते भाग दांडीच्या दोन्ही बाजूंच्या टोंकांस ठेवलेल्या त्रिपार्श्वच्या तीक्ष्ण धारेवर ठेविलेले म्हणजे आधारलेले असले पाहिजेत आणि हे संधारक भाग त्रिपार्श्वच्या तीक्ष्ण धारेवर त्याच्या सर्व लांबीभर पसरलेले असले पाहिजेत (त्रिपार्श्वच्या धारेच्या लांबीहून आखूड असे नसावे).



बीम स्केल क्लास ' बी 'चा तराजू.

ए आणिबी ह्या दोन प्रकारच्या तराजूंपैकी ए क्लासचा तराजू अत्यंत सूक्ष्मतम असाही फरक दाखवून देतो. पण त्यामुळे तो तयार करण्यास खर्च फार येतो म्हणून त्याची किंमत फार जबर असते. तो ह्याबोरेटरी-सारख्या ठिकाणी जेथे अत्यंत सूक्ष्मपणा लागतो तेथे वापरतात. मोती व रत्ने तोलण्याकरतां बी क्लासचा तराजू चालतो व तोच ह्या दुकानांतून व चांदी-सोन्याच्या दुकानांतून वापरतात. त्याचा एक नमुना खाली दिला आहे.

प्रकरण ८ वें

चलच्चित्रपटांत जगत्प्रसिद्ध रत्नांचा अवतार !

चलच्चित्रपट आणि त्याचीच पुढली पायरी बोलपट यांची हल्ली मोठी चलती आहे. यांच्या योगानें प्रख्यात नाटक कंपन्याहि नामशेष झाल्या आहेत. दोहोंचें कार्य मुख्यत्वेकरून एकच म्हणजे मनोरंजन हें होय. दोघांनाहि कथानक व सीनसीनरी लागत असते.

गेल्या सुमारे वीस एकवीस वर्षांत या कथानकांत व सीनसीनरींत अनेकदां जगत्प्रसिद्ध रत्नें, ऐतिहासिक रत्नें, राजेमहाराजांच्या आंगावर अथवा मुकुटांत वापरांत असणारीं रत्नें, देवतांच्या नेत्रकमळीं बसलेलीं पण तेथून चोरून नेलेलीं रत्नें यांचे देखावे त्या त्या प्रसंगास अनुसरून दाखवावें लागले आहेत. त्यावेळीं त्या त्या प्रसंगांत आलेलें खरें रत्न चित्रपटांत दाखविलें जात नव्हतें; कारण हीं रत्नें चित्रपट तयार करण्याकरतां मिळणें दुरापास्त असतें. म्हणून बाजारांत जें रत्न मिळेल तें चित्रपट तयार करतांना वापरण्यांत येत असे; पण त्यामुळें प्रेक्षकांपैकीं ज्यांनीं तीं अस्सल रत्नें पाहिलेलीं असत ते अर्थातच टीका व कुचेष्टा करूं लागले. त्यांचें म्हणणें कीं, अस्सल रत्न हवे तेव्हां चित्रपटाकरतां मिळालें नाहीं तरी फिल्म तयार करतांना अस्सलची नकल तरी वापरण्यांत यावयास पाहिजे. नाहीं तर त्या त्या प्रसंगास वास्तवता येत नाहीं, हें त्यांचें म्हणणें खरें होतें.

ही गरज भासूं लागली त्याच सुमारास ती गरज भरून काढणारी व्यक्ति सुदैवानें पुढें आली. ह्या व्यक्तीचें नांव विली पीटरसन फ्यागरस्टम असें आहे. डेन्मार्क देशाच्या राजधानींत पिढ्यानुपिढ्या ज्यांनीं वास्तव्य करून जवाहिराचा धंदा केला होता अशा पुरुषांच्या वंशांत याचा जन्म झाला होता. ह्याला रत्नांचाच मोठा नाद असे. जगांतील सर्व देशांच्या मुख्य शहरीं राहावें, तेथील प्रख्यात रत्नें निरीक्षार्थी व त्यांच्या नमुन्यांचा अभ्यास करावा हाच उद्योग त्यानें आरंभिला होता. असें करून त्यानें सर्व जगत्प्रसिद्ध

रत्नांची माहिती तर मिळविलीच पण आणखी कोणत्या कालखंडांत कोणत्या रत्नांचा प्रामुख्याने प्रघात होता हे संकेतही त्याने बसवून टाकिले आहेत.

असे ज्ञान संपादन करून तो आतां विविध कृत्रिम रत्ने तयार करू लागला आहे. शुभ्र, बिनरंगी व रंगीत कांचेनें सर्व रत्नांच्या नकला तो तयार करतो व तांबें, जस्त, जर्मन सिल्व्हर आणि पितळ यांपासून प्लाटिनम, सोने आणि चांदी यांची कृत्रिम कोदणें तयार करतो. वितळलेल्या कांचेच्या रसाचीं फुंकून अत्यंत पातळ अशीं मोतीं तो तयार करवितो. नंतर कृत्रिम कांचेला उत्तम खऱ्या मोत्यांचें स्वरूप देण्याकरतां एकप्रकारच्या माशाच्या खवल्यांचें जें मिश्रण त्यावर किंवा त्याच्या आंतून पुटें देण्याकरितां वापरतात तें तो वापरतो. सीलोनी अगर इतर सागरांत सांपडणाऱ्या मोत्यांच्या रंगाप्रमाणें तऱ्हेतऱ्हेचे रंग तयार करून ते या मिश्रणांत मिसळून नंतर त्याचीं पुटें कांचेच्या मोत्यांस देतो व अशा रीतीनें सर्व रंगाचीं व सर्व प्रकारचीं कृत्रिम मोतीं तो बनवितो. फावल्या वेळीं पदार्थसंग्रहालयांत ठेवलेल्या नमुन्याचे व प्रतिकृतीचे (नकली जवाहिराचे) सूक्ष्म दृष्टीनें तो परिशीलन करीत असतो. म्हणून कोणत्याही रत्नाची अगदीं बरोबर नकल त्यास करतां येऊं लागली आहे.

जगांतील प्रख्यात रत्नांच्या नकल करण्याकरतां तो फक्त कांचेचाच उपयोग करतो. पेस्ट अथवा दुसऱ्या कोणत्याही रांध्याचा तो उपयोग करीत नाही. उत्तम ओतीव कांच झेकोस्लोव्हाकियांत विशेषतः प्रेग येथे तयार होते. तिचा रंग सारखा व मनपसंत असून तिच्यांत प्रकाशाचें परावर्तन फार मोठ्या प्रमाणांत करण्याची शक्ति असल्यानें तिचें तेज झकाकत असतें. तो ह्या कांचेचा उपयोग हिरे, माणकें, नील, पन्ना, पुखराज, याकूत, राजावर्त, वज्रभासीय (Zircon), अलेक्झांड्राइट इत्यादि सर्व रत्नें तयार करण्याकडे करतो. ज्या रत्नांची नकल करणें असेल त्याचीं अगदीं बिनचुक मापें घेऊन आणि रंगीत फोटोग्राफीच्या सहाय्यानें योग्य ते हुबेहुब रंग करून तो अस्सलची ओतीव नकल, आकार, आकृति, रंग या सर्व बाबतींत अगदीं अस्सल बरहुकुम करतो. ती इतकी कीं मूळच्या रत्नास कांहीं ऐव असेल तर तोही तो ह्या नकलेतही दाखवितो ह्याप्रमाणें नकल तयार केल्यावर तो त्यास जिल्हई देतो. ती

यंत्रानें न देतां हातानें देतो. जशी आमस्टरडाम येथील कारागीर प्रत्येक रत्नावर मेहनत करतात तशीच हाही प्रत्येक रत्नावर मेहनत करून नकल तयार करतो. ह्याप्रमाणें सर्व जगप्रसिद्ध रत्नांच्या नकला त्यानें केलेल्या आहेत. तो मौक्तिकेतर रत्नाकरतां झेकोस्लोव्हाकियांतील कांचकारखानदारांची मदत घेतो. कारण ते कृत्रिम मोतीं बनविण्याच्या कामांत फार तरबेज आहेत. आकार आणि आकृति या बाबतींत तेथील कारागीरांना मदत करून त्यांजकडून तो जगद्विख्यात प्रत्येक मोत्याच्या आकार व आकृतिच्या बाबतींत अगदीं हुबे-हुब नकला करून घेत असतो. अशा नकला तयार होऊन आल्यावर माशाच्या खवल्याच्या मिश्रणांत त्या त्या मोत्याला अगदीं मिळता असा रंग मिसळून त्या व्हारनिशाचे कित्येक थर त्या मोत्यांना देऊन तेज, रंग, आकार, आकृति ह्या सर्व बाबतींत अगदीं साम्य असलेल्या नकला तयार करतो. त्याच्या वजनांत सारखेपणा नसतो एवढी गोष्ट वर्ज्य करून अस्सल व नकल एकाजवळ एक ठेविली तर नकल व अस्सल कोणती हें ओळखूं येणें फारच कठीण असतें. शास्त्रीय रत्ने व कलचर मोती यांचा नकला म्हणून उपयोग त्यानें करून पाहिला. पण एकतर त्यांचे फोटो अस्सल बरहुकूम निघत नाहीत. शिवाय त्यांस किंमत जास्त पडते. शिवाय तीं एकदां फुटलीं तर तशींच तांबडतोब मिळणें सोपें नसतें. अस्सलशीं अगदीं मिळता आकार, आकृति आणि रंग असलेलीं शास्त्रीय रत्नें अगर कलचर मोतीं मिळत नाहीत. काहीं तरी फारक निघतोच. या कारणानेंहि त्याला तो नाद सोडून द्यावा लागला.

त्याच्याजवळच आतां (अर्थातच नकली) जगद्विख्यात असलेलीं रत्नें व मोतीं हजारों आहेत. त्यांत आपला हिंदी कोहिनूर आहे. म्हैसूर संस्थानांतील श्रीरंगपट्टणच्या देवालयांत ठेविलेल्या बुद्धाच्या मूर्तीच्या डोळ्यांऐवजीं वापरलेला व तेथून तो फ्रेंच पाहारेकन्यानें चोरून नेलेला आरलाफ् हिरा आहे. हिंदुस्थानच्या विलायतेंतील बादशाहिणीचा हिऱ्यांचा संच आहे. ग्रेट मोंगल, निजाम ऑफ् हैदराबाद, रीजंट, नासक, निळा होप हिरा इत्यादि अनेक हिऱ्यांच्या नकला, मोऱ्यांच्या व हिऱ्यांच्या हारांच्या नकला त्यानें हजारों हजार तयार करून ठेविल्या आहेत. त्यांचा उपयोग त्या त्या प्रसंगाच्या सीनसीनरीच्या प्रसाधनांत उत्तम होत असल्यानें चलच्चित्रांच्या मनोरंजक कार्नांत उत्कृष्ट भर पडली आहे.

प्रकरण ९ वें

मनोरंजक व उपयुक्त माहिती

रत्नप्रदीप खंड २ प्रकरण १९ वें यांत या स्वरूपाची जी माहिती दिली आहे तिचे पुनर्लेखन करित नाही. ज्यांस शक्य असेल त्यांनी ती त्यांत वाचावी. त्या पुस्तकांत न आलेली माहिती येथे देण्यांत येत आहे. ही संकीर्ण (Miscellany) स्वरूपाची आहे. हिला कालानुक्रमही फारसा असणार नाही.

१ ज्योतिःशास्त्रांतील नक्षत्रप्रहरत्नेः—रत्ने आमच्या प्राचीन काळच्या सर्व विद्यांतून चमकत होती. ज्योतिःशास्त्रांत तारकांच्या व ग्रहांच्या रंगातेजाचे वर्णन करितांना आर्दी नक्षत्रास प्रवाळसदृश, चित्रास मौक्तिकसदृश, स्वातीस विद्रुमतुल्य, बुधाला पाचसदृश, कवीला (शुक्राला) मौक्तिकतुल्य, प्रजापतीला (हर्शलला) प्रवाळमणितुल्य असें म्हटले आहे.

२ वेदांतील रत्नेः—

| | |
|----------------------|-----------------------|
| काचभूमौ जलत्वं वा | जलभूमौच काचता । |
| तद्वदात्मनि देहत्वं | पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ |
| यद्वदम्रौ मणित्वं हि | मणौ वा बन्हिता पुमान् |
| तद्वदात्मनि देहत्वं | पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ |

काच = स्फटिकरत्न. मणि = रत्न. बाकी अर्थ सुलभ आहे.

संत्यज्य हृद्गुहेशानं देवमन्यंप्रयांतिये ।

ते रत्नमभिवाच्छन्ति त्यक्तहस्तस्थकौस्तुभाः ॥

अर्थः—आपल्या हृदयामध्ये राहणाऱ्या देवाला सोडून जे इतर देवांकडे धांव घेतात (त्यांना उपमा अशी की) ते आपल्या हातांतील कौस्तुभमणि फेंकून देऊन अन्य रत्नाची इच्छा करितात.

रत्नाचीं कुंडलें मोतियाचा तुरा । शिरपेंच बरा कलगीवरी ॥१॥
 पाचरत्न मोतीं माणिक हीरक । अर्पिले सुरेख हार यांचे ॥२॥
 कंठी, भुजबंद, पोंची, कमरबंद । मुद्रिका स्वच्छंद नानापरी ॥३॥
 तुका म्हणे माझ्या इच्छेच्या कारणें । ऐशीं हीं भूषणें ल्याला देव ॥४॥

तुकाराम महाराजांच्या मानसपूजेतील वेंचा.

योगत्रासिष्टांत ब्रह्म व जगत् यांचा संबंध रत्न व त्याची प्रभा यांच्या संबंधाप्रमाणें आहे असें रूपक केलें आहे. ह्यास चिद्विलास वाद म्हणतात. रत्न व त्याची प्रभा यांत कार्यकारणसंबंध नसून स्वभावाविष्कार आहे. जगत् हें चैतन्याचा विलास-आविष्कार-प्रभा आहे.

३ रामायणकालीन रत्नेः—इंद्रनील, वैडूर्य, मासर, स्फटिक, मुक्ता, वज्र, विद्रुम, माणिक्य हीं रत्नें रामायणकालीं वापरांत होतीं. स्फटिक अथवा काचमणि रत्न याचा उपयोग राजवाड्यासारख्या इमारती करण्यांत व शृंगारण्यांत होत असे. मोतीशिंप, शंख आणि पोवळीं पाणबुडये पाण्यांतून काढीत असत.

४ रत्नांच्या मूर्तिः—अनेक रत्नांच्या मूर्तींचें वर्णन रत्नप्रदीपांत आलेलें आहे. त्याची पुनरुक्ति न करितां नवीन माहिती तेवढीच येथें संकलित केली आहे.

(अ) इंद्रनीलाचा शनिः—हा पुणें येथील देवरूखकर या जवा-
 हिऱ्याचे घराण्यात आहे. या मूर्तींचें वजन ७४ रति आहे. मूर्ति सुवक्र आहे. निळाचा रंग जरा फिकट आहे. मूर्ति पोंचीवर बांधण्या-
 साठीं तिला दोन्ही बाजूला बेताचीं भोकें पाडलीं आहेत. मूर्ति उभी असून प्रेक्षणीय आहे. दोन्ही हातांत कमळें दिसत असून एक हात कमरेवर व दुसरा पालथा म्हणजे वरद आहे. ही शनीची मूर्ति आहे अशी देवरूखकराचे घरांत आख्या चालत आली आहे. पण कोणी कोणी ही मूर्ति बालाजीची आहे असें म्हणतात. ही मूर्ति प्रो. द. वा. पोतदार, पुणें ह्यांनीं पाहिली आहे. त्यांचें म्हणणें असें आहे कीं, मूर्तींचे उन्नत स्तन आणि दोन कमळें पाहून मूर्ति लक्ष्मीची असावी

अशी शंका येते. आख्यायिका अशी आहे की, ही मूर्ति विजयानगरच्या राजांच्या भांडागारांत होती. ती पुढे गोंवळकोंड्याचे बादशहाकडे गेली. तेथून मोगलाकडे आली. ती मोगलाचे वजीर सय्यदबंधुनीं बाळाजी विश्वनाथ पेशवे यांस दिली. या पेशव्यांच्या बरोबर सहाय्यकारी म्हणून देवरूखकरांचे घराण्यापैकीं पूर्वज बाळशेट देवरूखकर हे दिल्लीस गेले असतां तेथें त्यांनीं शौर्य गाजवून मदत केली. त्यामुळे पेशव्यांनीं हें रत्न त्यांस दिलें.

(आ) शिवाचे पिंडीतील पाचेचा बाणः—श्रीमत् स्वामी शिवानंदतीर्थ—आश्रम वरुड (अमरावती) याजपार्शीं वडिलाजित चालत आलेली ही पूज्य वस्तु आहे. यांतील साळुंकेवरील बाण पाच या रत्नाचा आहे. ह्या रत्नाचा रंग फिकट हिरवा आहे. हे रत्न बिनऐब म्हणजे निर्दोष असून त्याची प्रभा व तुळतुळीतपणा ही वाखाणण्यासारखी आहेत. ह्याचा आकार अंडाकृति आहे. उंची सुमारे एक इंच आहे. एका जव्हेरीनें याची किंमत एक लक्ष रुपये केली असें सागतात.

(इ) दक्षिणावर्ती स्त्रीजातीचा शंखः—उपरिनिर्दिष्ट स्वामीजी-पार्शींच असा एक शंख आहे. दक्षिणावर्ती म्हणजे उजव्या पिळाचा—ज्याची सर्पिल रचना उजव्या बाजूस असते असा, असे शंख फार दुर्मिळ असतात. स्त्रीजातीच्या शंखाची डावी बाजू जरा रोड असल्यामुळे तिला थोडी वक्रता आलेली असते. ही स्त्रीजातीची खूण आहे. पुरुषजातीच्या शंखाची डावी बाजू रोड नसते.

५ ब्रिटनचा जवाहिरखानाः—इंग्लंडच्या राजांच्या रत्नांची किंमत तीन कोटी डॉलर्स म्हणजे सुमारे दहा अकरा कोटी रुपये असल्याचें लिटररी डायजेस्ट ह्या प्रख्यात मासिकांत लिहून आलें आहे. इंग्लंडच्या राजाला आपल्या राजवटींत राज्यारोहणप्रसंगीं एकदांच सर्व रत्नें वापरण्याचा प्रसंग येतो. नानाप्रकारचीं रत्नें—माणकें, हिरे, वैड्यूर्य, पाच, मोती व इतर उत्कृष्टपणें जडविलेले अमूल्य रत्नसंभार या प्रसंगीं वापरण्यांत येतात. नेहमीं लंडनच्या किल्यांतील जवाहिरखान्यांत हे सर्व रत्नजडित दागिने पाहण्यासाठीं मांडून ठेविलेले असतात. हा जामदारखाना हें

लंडननगरीचें मोठें भूषण आहे. हा जवाहिरखाना पाहण्यासाठीं मुंग्यां-सारखी रीघ नेहमीं लागलेली असते. भरभक्कम लोखंडी गजांच्या आंत राजदण्ड, अग्नीप्रमाणें देदीप्यमान रत्नखचित खड्गें आणि बहुमूल्य रत्न-जडित अलंकार यांनीं हा जामदारखाना इतका खचून भरला आहे कीं 'अलीबाबा व चाळीस चोर' या नवलकथेनें आश्चर्यचकित झालेला वाचकही याच्या दर्शनानें दिङ्मूढ होऊन जाईल.

राज्यारोहणप्रसंगीं जे अलंकार वापरण्यांत येतात त्यांत इंग्लंडचा राजमुकुट हा मुख्य आहे. हा सर्व भरीव सोन्याचा असून सर्व रत्नजडित आहे. हा इतका जड आहे कीं तो राजाच्या डोक्यावर घालतांच लगेच काढून टेवावा लागतो. नंतर त्या जागीं दुसरा जरा हलका मुकुट घालण्यांत येतो. जगांत या राजमुकुटाइतका मौल्यवान राजमुकुट दुसरा नाही. यावर हजारों रत्नें लखलखत असतात. या मुकुटाच्या भालावर अंड्या-इतका मोठा ब्रह्मी हिरा बसविण्यांत आला आहे. त्या खालीं ३०९^३/_४ क्यारट वजनाचें 'अफ्रिकेचा तारा'^१ ह्या नांवाचें रत्न जडविलें आहे. या रत्नाशिवाय राजमुकुटास २८१८ हिरे, २९७ मोती व सुमारे पांच लक्ष डॉलर किंमतीचे एक माणिक हीं जडविलीं असून शिवाय दुसरीं अनेक दुर्मिळ व सुंदर रत्नें बसविलीं आहेत.

राजाचा आणखी तिसरा मुकुट आहे त्याला हिंदुस्थानच्या सम्राटाचा मुकुट म्हणतात. यावर नानाप्रकारचीं सुमारे सहा हजार हिरे माणकें व इतर रत्नें जडविलीं आहेत. जवाहिरखान्यांत राणीचेही तीन मुकुट टेविलेले आहेत. पैकीं एकावर कोहिनूर चमकत असतो.

^१ कलियन नांवाचा ३२५^३/_४ क्यारट वजनाचा सर्व जगांतील प्रचंड हिरा दक्षिण अफ्रिकेच्या हिऱ्याचे खार्णांत सांपडला होता. त्यांत असलेला ऐत्र काढण्याकरितां त्याचे तुकडे करण्यांत आले. त्यापैकीं ५१६^३/_४ क्यारट वजनाचा बिलियन तऱ्हेनें तयार केलिला लोकासारखा तुकडा राजदंडांत बसविण्यांत आला व बिलियन कट चौकोनी आकाराचा दुसरा तुकडा राजमुकुटांत बसविण्यांत आला. ह्याचें नांव स्टार ऑफ साऊथ आफ्रिका (आफ्रिकेचा तारा) असें ठेवण्यांत आलें आहे.

६ पेशवाईतील जवाहीर:-राघोबादादाजवळ सोने, मोती जडविलेला दक्षिणावर्ती (उजव्या पिळाचा) शंख होता. शिवाय त्यांच्या देवघरांत पोवळ्यांचा गणपति होता. एक सोन्याचा मोर होता त्याचा पिसारा पाचेचा होता. ती पाच तीन तीन बोटें लांबीरुंदीची होती. श्रीमंत मातुश्री आनंदीबाईंनीं ब्राह्मणांस देण्याकरितां नवरत्नांचीं लिंगे केलीं होती. पहिल्या माधवरावाची स्मरणी मोत्यांची होती. तिची किंमत ४८००॥ रुपये होती. यांजपार्शी एक हिऱ्यांची माळ होती. यांच्या देवघरांत एक नील रत्नाची केलेली देवाची मूर्ति होती. श्रीमंत रमावाईसाहेबांनीं एक हिऱ्याची आंगठी आंत गणपतीची मूर्ति असलेली श्रीमंत वामनराव पटवर्धन यांस दिली. त्यांनीं सती जातांना धर्मादाय केला त्यांत बाळकृष्णशास्त्री यांचे पत्नीस हिऱ्याच्या कंगण्या दिल्या, त्यांना ४५ हिरे व ९४ हिरकण्या होत्या. सवाई माधवरावांपार्शी हिऱ्याचे चौकीवर बसविलेली पंचमुखी महादेवाची मूर्ति होती. त्यांचे सर्व देव व त्यांजवरील जवाहीर दोन लक्षांचे होतें. बंडाचे वेळीं नानासाहेबांनीं हें सर्व भार्गारथीला अर्पण केलें. दुसऱ्या बाजीरावांपार्शी सवा लाख रुपये किंमतीची हिऱ्यांची पोहोची होती. शिवाय एक नथ पांच हजार रुपये किंमतीची असून ऐशी हजार रुपये किंमतीचा मोत्यांचा सातपदरी कंठा होता.

शेवटल्या बाजीरावाचे दत्तकपुत्र नानासाहेब यांजपार्शी नवलाखा नांवाचा एक नामांकित कंठा होता. त्यांत पाचू, हिरे, माणिक, मोती वगैरे रत्ने सुंदर रीतीनें गुंफलेलीं होती. नेपाळांतील संकटकाळीं तो त्यांनीं जंगबहादुरास विकला. तो परंपरेनें हातपालट करित आतां दरभंगाच्या महाराजांजवळ आला आहे. याच नानासाहेबांपार्शी एक पाच रत्न सुमारे तीन इंच लांबीचें व रंगानें हिरवेंगार असलेलें असें होतें. तें नेपाळी प्रधाणांच्या दरबारी मुकुटांत जाऊन बसलें आहे. द्राक्षांच्या घोंसाप्रमाणें शोभणारा एक पाचूचा घोंसहि नानासाहेबांपार्शी होता. तो नेपाळच्या मुख्य मंत्र्याच्या शिरोभूषणांत आहे. ४८ मोती व २४ पाचू मिळून गुंफलेला दुसरा कंठा, तसेंच दोन मौल्यवान हिऱ्याचे मणिबंध व दुसरे अनेक दागिने त्यांजपार्शी होते. त्या सर्वांचा नेपाळांत निकाल लागला.

७ विजयनगरची रत्नसंपत्ति:—विजयनगरच्या राज्याच्या सीमेंत पुष्कळ रत्ने निष्पन्न होत असत. हिरे वज्रकुरुरच्या हिऱ्यांच्या खाणींतून विजयानगरांत येत असत. विजयानगरच्या राज्यांत पुष्कळ हिरे सांपडणाऱ्या हिऱ्यांच्या २।३ खाणी होत्या. कालिकतजवळ माणकें सांपडत असत. होर्मझमधून येथें मोती येत असत. पोर्तुगीज व्यापारी ह्या राज्यांत प्रवाळ आणीत असत. येथील रत्ने—माणकें, पाच, हिरे आणि मोती यांचा व्यापार तामिलनाडमधील उच्च दर्जाचे चेट्टी चालवीत असत. ह्या राज्यांतील बंदरांमार्फत हिरे, माणकें, मोती व इतर रत्ने यांचा व्यापार चालत असे.

ह्या राज्यांतील सुप्रसिद्ध राजा कृष्णदेवराय यानें तुलापुरुषप्रदानाचा विधि अनेकवेळां केला होता. ह्या प्रत्येक वेळीं तो आपल्या भारंभार सोने व मोती दान करी. कलिंग देशाशी झालेल्या युद्धसमाप्तीनंतर यानें आपला प्रधान आपाजी यास गालीच्यावर बसवून त्याच्या मस्तकावर सोने व रत्ने यांचा अभिषेक केला होता. कृष्णदेवराय आपल्या गळ्यांत नेहमीं हिऱ्यांचा कंटा वापरीत असे. त्यानें कालहत्तीश्वर ह्या देवाला एक रत्नहार, पूजेचीं उपकरणी व सोन्याची रत्नजडीत प्रभावळ दिली होती. याच्या सैनिकांच्या हत्तीघोड्यांवर दागिने चढवीत असत. रत्नजडित चांदीसोन्याचे पत्रे हत्ती घोड्यांच्या मस्तकांना लावीत असत. कृष्णदेवराय यानें आपल्या दरबारांतील नाट्याचार्य बंद लक्ष्मीनारायण यास दोन शुभ्र मोत्यांच्या छऱ्या दिल्या होत्या.

विजयानगरच्या अखेरच्या तालिकोटच्या लढाईत मुसलमानांच्या जोराच्या हल्ल्यामुळे जेव्हां हिंदु लोकांची दाणादाण होऊं लागली तेव्हां रामराजानें रत्नजडित सिंहासनावर बसून आपल्यापुढें सुवर्णाच्या नाण्यांचा व रत्नखचित हत्यारांचा व रत्नखचित दागिन्यांचा ढीग रचला आणि शौर्य गाजविणारांस मोठमोठी बक्षिसे देण्याचें जाहीर केलें. त्याचा परिणाम होऊन त्याच्या सैनिकांनीं मुसलमानी सैन्याच्या डाव्या बाजूचा धुव्वा उडविला. पण नंतर रामराजावर दोहोकडून हल्ला आला. त्यांत अखेर मुसलमानांस विजय मिळाला. त्या रणांगणावर सोने, रुपें, रत्ने अगणित पडलीं होती. त्यांची लूट झाली. रामरायाच्या घोड्यांच्या मस्तकावर

मौल्यवान हिऱ्यामोत्यांचा तुरा होता. त्यांत कोंबडीच्या अंझ्याएवढा एक हिऱा बसविलेला होता. तो लुटीच्या वांटणींत विजापूरच्या बादशहास मिळाला.

८ गाईकवाड सरकारचीं रत्नें:—बडोदें येथें नजरबाग राज-वाड्यांत जवाहिरखान्याचीं दोन टेबलें ठेविलीं आहेत. त्यांतील एका रत्नहाराची किंमत ३७ लक्ष रुपये आहे. त्यांत लहान मोठे ५,२५ हिरे, ४ माणकें व २ पाचूचे खडे आहेत. बोर्राएवढ्या टपोरे आणि पाणिदार मोत्यांची पांच पदरी माळ आहे. तिची किंमत १ कोटी ७ लक्ष रुपये आहे. किंमतीची माहिती त्या त्या दागिन्याखालींच लिहून ठेविली आहे. याशिवाय दुसऱ्या सातपदरी मोत्यांचा कंठा महाराजांपाशीं आहे. त्याची किंमत ५० लाखांवर आहे. मोठाल्या मोत्यांच्या नथा, कुडीं, हिरे-माणकांचीं कुडीं व इतरहि असेच मौल्यवान दागिने आहेत. स्टार ऑफ धि साऊथ नावाचा मोठा हिऱाहि येथें आहे. हत्तीखान्यांत तेरा मण सोन्याची महाराजांची अंबारी, हत्तीच्या पायांतील मणगटाएवढाले जाड सोन्याचे तोडे, भरजरी मखमालीच्या झुली व गजशृंगाराचे इतर सोन्या-मोत्यांचे दागदागिने आहेत.

९ दिल्लीच्या बादशहांचें मयूरासन:—फ्रेंच प्रवासी ट्याव्हर्निअर हा जवाहिराचा व्यापारी होता. त्याने दिल्लीस औरंगजेब बादशहाची भेट घेऊन हें सिंहासन बारकाईने पाहून त्याची नोंद करून ठेविली आहे. तीवरून समजेंत कीं हें सिंहासन लष्करी पालखीच्या आकाराचें होतें. याची लांबी ६ फूट आणि रुंदी ४ फूट होती. त्याला सोन्याचे बारा खांब असून त्यावर चतुष्कोणाकृति मेघडंबरी होती; व तिच्यावर रत्नखचित मोर बसविला होता. ह्या मोराचा पिसारा इंद्रनील, पाच, माणिक व दुसरीं मौल्यवान रत्नें लावून तो स्वाभाविक मोराच्या पिसान्याच्या रंगाचा केला होता. या मोरामुळेंच त्यास मयूरासन म्हणत. यास उर्दु नांव तख्त ताऊस (ताऊस म्हणजे मोर) असें होतें. हिरे, माणकें, मोतीं, पाचू यांच्या जडावामुळें हें सिंहासन फारच सुंदर दिसत असे. ह्याला १०८ मोठीं माणकें व ११६ पाचूचे खडे बसविले होते. बादशहाच्या जामदार.

खान्यावरील अधिकाऱ्याच्या सांगण्याप्रमाणे ह्या मयूरासनाची किंमत १०,७०,००,००,००० रुपये होती. इराणचा बादशहा नादीरशाहा ह्याने सन १७३९ मध्ये दिल्लीवर स्वारी केली त्यावेळीं त्याने दिल्लीची अपार संपत्ति लुटून नेली. तीबरोबर हें सिंहासनही नेलें. पुढें त्या सिंहासनाचें काय झालें हें समजत नाही.

१० रत्नवृत्तसारः—केंब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिया या ग्रंथाचा कर्ता हिंदुस्थानांतील खनिजासंबंधानें (खनिजांत रत्ने येतात) लिहितांना असें म्हणतोः—हिंदुस्थान ही रत्नभूमि व सुवर्णभूमि आहे. ग्रीनीनें हिंदुस्थानांत उत्पन्न होणाऱ्या रत्नांची यादी दिली आहे. तींतील कांहीं रत्नांबद्दल संशय असला तरी हिरे, ओपल व गार्नेट ह्या रत्नांबद्दल संशय नाही. हा ग्रंथकार पुढें लिहितो कीं, मेगॅस्थेनीस यानें खडीसाखर पैलूदार व चकचकीत असल्यानें तिची गणना खनिजांत केली व तो (मेगॅस्थेनीस) म्हणतो कीं, खडीसाखर या खनिजाचा असा चमत्कार आहे कीं तें खनिज दांतांनीं फोडून चुरडलें तर त्याची रुचि अंजीर अथवा मध यांहुनही गोड असते. त्यावरून असें दिसतें कीं त्या काळपर्यंत त्यास खडीसाखर माहीतच झालेली नव्हती.

प्राचीन काळीं चिलखतांवर वैडूर्य रत्नांच्या गोळ्या व इतर रत्ने शोभेकरितां लावीत असत. तरवारी, कट्यारी वगैरे हत्यारांच्या मुठी अनेक प्रकारचीं रत्ने लावून शोभिवंत करीत असत.

इसवी सनापूर्वी ५४३ सालीं राजपुत्र विजय हिंदुस्थानांतून सीलोनला गेला. तेथून त्यानें आपल्या सासऱ्यास दोन लक्ष रुपये किंमतीचीं मोती व शंख पाठविले.

अबूच्या पहाडावरील जैन मंदिरांत शेंकडों मूर्ति असून त्यांच्या डोळ्यांच्या जागीं रत्ने बसविली आहेत.

फत्तेपूर शिक्री येथें सलीम चिस्ती या धर्मगुरूची प्रेक्षणीय कबर आहे. तिचे आंत मोत्याच्या शिंपल्याचें उत्कृष्ट नक्षीकाम केलेली छत्री आहे ती फार शोभिवंत आहे.

विजापूरच्या बादशहाच्या सैन्यांत नवरत्नांनीं भूषित अशा घोड्यांची च पदातींची एक फौज होती.

शंकराचार्यांच्या शृंगेरी मठांतील शारदांबेची मूर्ति रत्नजडित आहे.

मेवाड संस्थानांतील प्रख्यात चितोडगड किल्ल्यांत रत्नेश्वराचें मंदिर आहे.

प्रतापगडचे श्रीअंबाबाई देवीस अक्कलकोट संस्थानचे मूळ पुरुष फत्तेसिंग महाराज यांनीं एक रत्नजडित किरीट दिला होता त्याची किंमत ५५००० रुपये होती.

सर्वांत मोठें ओपल रत्न—सन १९१७ सालीं अमेरिकेमध्ये एक मोठें ओपल रत्न सांपडलें. त्याची लांबी जवळजवळ ४ इंच, रुंदी ३ इंच व एक सूत, आणि उंची २ इंच १ सूत आहे. जणुं काय ही लहानशी वीटच दिसते. ह्याचें वजन १८॥ औंस आहे. या जातीचें इतकें मोठें रत्न कोठें सांपडलें नव्हतें. ह्याचा रंग मोराच्या कंठाप्रमाणें असून त्यांत निळ्या व हिरव्या रंगाच्या नयनमनोहर झ्यांकी मारतात.

एक जंगी पीळू रत्न—अमेरिकेंत न्यूयार्क शहरांतील पदार्थ संग्रहालयांत एक पीळू म्हणजे जेड रत्न आहे तें त्या जातीचें सर्वांत मोठें रत्न आहे. त्याची लांबी ७ फूट असून वजन ८१ मण आहे. हा रत्नप्रस्तर न्यूझीलंडमध्ये सांपडला. ह्या रत्नावर युद्धनृत्यांत गुंग होऊन गेलेल्या मावरी योद्ध्याची मूर्ति उभारली आहे. ही मूर्ति जीभ बाहेर काढून शत्रूची हेटाळणी करित त्याला युद्धाला आव्हान करित आहे असें मूर्तिकारानें दाखविलें आहे.

कोरलेलीं रत्नें—औंधचे उद्यमशील श्रीमंत राजेसाहेब बाळासाहेब पंत-प्रतिनिधी यांच्या पदरीं माधवराव पांडुरंग कोळेकर नांवाचे कारागीर आहेत. त्यांनीं सुमारे ५ इंच उंच, ६ इंच लांब व ४।५ इंच रुंद एवढी मोठी शंकर पार्वतीचे मांडीवर गणपति असलेली स्फटिकाची मूर्ति कोरून तयार केली आहे. शिवाय लहानशा आंब्याएवढा गणपति त्यांनीं माणकांतून कोरून काढिला आहे. अत्यंत कठीण अशा नील रत्नाची कालियामर्दन करणारी श्रीकृष्णमूर्ति कोरली आहे. देवी श्रीअंबाबाईची मूर्ति ओपल या रत्नाची

कोरून केली आहे. याशिवाय पाच, गोमेद, प्रवाळ इत्यादि रत्नांच्याहि कोरिव मूर्ति केल्या आहेत. स्वतः राजेसाहेब हे अत्यंत कुशल चित्रकार असल्यामुळे ते मूर्तिकलेला उत्तेजन देत असतात. त्यांनीच दुसऱ्या संस्थानांतून शिक्षक आणून त्याजकडून आपल्या पदरचे पाथरवट श्रीयुत माधवराव कोळेकर यांस या कलेत तरबेज केले हे त्यांस अत्यंत भूषणावह आहे.

रत्नयुक्त छत्रः—अमृतसरच्या शिखांच्या सुवर्णमंदिरांत (गुरुद्वारांत) तीन फूट व्यासाची जाड सोन्याची छत्री आहे. त्यामुळे अर्थातच ती मिटतां येत नाही. या छत्रीला पांच हिरे आणि माणकें जडलेली आहेत आणि तिला कांठापासून एक फूट रुंदीची मोत्याची झालर लाविलेली आहे.

निलगिरी पर्वतांतील वायनद या भागांत सुवर्णरजमिश्रित स्फटिक सांपडतात.

अगदीं अलीकडे उपलब्ध झालेली हिऱ्यासंबंधाची माहितीः— युद्धांतील शस्त्रास्त्रें तयार करितांना जेथें तंतोतंतपणा पाहिजे असेल तेथें हिऱ्यांचा चांगला उपयोग होतो. म्हणून एरोप्रेन पिस्टन फिरविण्याचे कामासाठी हिऱ्यांचा उपयोग करण्यांत येऊं लागला आहे.

हिऱ्यांना पैलू पाडून पालिश देण्यांत कारागिरानें दाखविलेले कौशल्य यावर हिऱ्याची किंमत अवलंबून असते. हिऱ्यांना घांसून आकार व चकाकी देण्याचें काम आमस्टरडाम, अँटवर्प येथें चालतें पण सांप्रतच्या महायुद्धांत हे प्रदेश जर्मनीच्या हातीं गेल्यावर तेथील कारागिरांना आपल्या देशीं आणून इंग्लंडनें आपल्या देशांत नसलेला हा घंदा नवीन सुरू केला आहे. इंग्लंडचे हातीं दक्षिण आफ्रिकेंतील हिऱ्यांच्या खाणी आहेत. तेथून त्यांस हिऱ्यांचा मुबलक पुरवठा होतो. या कारणानें आतां हिऱ्याचें सर्व बाळंतपण करण्याचें सर्व जगाचें पुढारीपण इंग्लंडकडे येण्याचा रंग दिसत आहे. इंग्रजांचा व्यापारी संधीसाधुपणा कसा आहे याचें हे एक उत्कृष्ट उदाहरण आहे.

११ रत्नप्रचुर वाङ्मयाचा मासला:-

मौज-पतिपत्नीचा प्रेमसंवाद मिठाई:-

पति-लाडके, तू किती सुंदर आहेस ! तुझे दांत म्हणजे मोत्याचा सर आहे; तुझे ओंठ लाल माणिक आहेत; तुझे डोळे म्हणजे दोन हिरे आहेत; आणि-

पत्नी-पुरेपुरे !! माझा चेहरा म्हणजे सराफाच्या दुकानांतलं कपाट समजतां की काय !!!

ताईचे तेज-रे . टिळकांनी आपल्या ' ताई ' या कवितेंत तिला फूल, नक्षत्र, रत्न आणि पांखरूं अशा उपमा दिल्या आहेत; पण पुढें त्या उपमा पुऱ्या पडत नाहीत, त्यांचीं कारणें त्यांनीं दिलीं आहेत. त्यांपैकीं रत्नाचे उपमेसंबंधानें ते म्हणतात:-

रत्नें चमचमचम करिती परि तीं काटिण किती असती !

सांठविलेलें तेज कितीतें वाढत नाही जें

वाढतें तेज गडे तूजें !!

कैलास व सौगंधिक वन:-हें महादेवाचें आवडतें स्थान-देव, गंधर्व नी अप्सरा यांनीं नित्य गजब्रजलेलें असे. त्या पर्वताचीं शिखरें पिवडी, खडू इत्यादि धातूंचीं व रत्नांचीं बनलेलीं होती. तेथें पोंवळ्यांनीं बांधलेल्या विहिरी असून त्यांत उतरण्याकरितां वैदूर्य रत्नांच्या पायऱ्या बांधल्या होत्या.

केळकरांचें वाङ्मय जवाहीर:-श्री. न. चिं. केळकर यांच्या प्रस्तावना पाचापासून पन्नास पृष्ठांपर्यंत आणि ललित वाङ्मयापासून गंभीर निबंधापर्यंत सर्व प्रकारच्या असून प्रत्येकीचें तेज विशिष्ट गुणांनीं युक्त असेंच आहे. त्यांचा प्रस्तावनाखंड एकत्र केला तर हिरे, हिरकण्या व माणिकमोती यांची गर्दी उसळणाऱ्या जवाहिर्याच्या दुकानाचें वैभव तेंथें समवायानें दृग्गोचर होईल.

१२ रत्नांचे अनेक गुण:-हा रत्नांचा गुणसमुदाय अभिनव निघण्टुकारानें संकलित केला आहे:-

रत्नानि भक्षितानिस्युमर्धुराणि सराणि च
चुक्षुष्याणि च शीतानि ग्रहदोषहराणि च.

याचें त्यांनींच दिलेलें हिंदी भाषांतर-संपूर्ण रत्नोंकी भस्म खाने मे
मधुर, दस्तावर, नेत्रोकू हितकारी, शीतल, रत्नघारन करनेसे विषनाशक
और मंगल करनेवाले, मन प्रसन्न कर्ता, और ग्रहोंके दोषोंको हरण करते
हैं. (सराणि याचा अर्थ दस्तावर म्हणजे रेचक असा आहे.)

१३ रत्नांची परीक्षा:-

शास्त्रचक्षुर्विना रत्नं नान्यो वेत्ति कदाचन
न हि शास्त्रं विना चक्षुः रत्नबाणरथस्य तु^१
म्हणूनच

रत्नशास्त्रे सदाभ्यासः यः करोति नरोत्तमः
स श्रियं लभते कीर्तिं रत्नवृद्धिः सदाभवेत्^२

असा सिद्धांत केला गेला आहे. पण हा अभ्यास शास्त्र, संप्रदाय आणि
स्वानुभव या त्रयीच्या साधनानें केला तरच रत्नांची परीक्षा साध्य होते.
असें म्हटलें आहे कीं:-

अभ्यासात्प्राप्यते सिद्धिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।

रत्नादि सदसत्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥^१

हें अगदीं खरें आहे. या सर्वांचा निष्कर्ष असा आहे कीं अनुभवजन्य

^१ ज्याला शास्त्ररूपी नेत्र नाही असा कोणीही रत्नाची पारख करूं
शकणार नाही. रत्न, बाण आणि रथ यांच्या कामीं शास्त्राशिवाय चक्षु नाही.

^२ जो मनुष्यश्रेष्ठ रत्नशास्त्राचा सदोदित अभ्यास करितो, त्याला
लक्ष्मी आणि कीर्ति हीं प्राप्त होतात. (त्याच्या गृहीं) नेहमीं रत्नाची भरती
होत राहिल.

^३ अभ्यासाच्या साधनानें कार्य यशस्वी कसें करावें यावर प्रकाश
पाडणारी सिद्धि प्राप्त होते. रत्न खरें कीं खोटें याचें ज्ञान नुसत्या शास्त्रानें
(शास्त्रांतील शब्दार्थ समजल्यानें) होत नाही. (त्याला अनुभव घेऊन
पाहण्याच्या अभ्यासाची जोड लागते).

ज्ञानाला शास्त्रीय ज्ञानाच्या निकषावर घासून केलेली हीच खरी परीक्षा होय, अशी केलेली परीक्षाच कार्य सिद्ध करीत असते.

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्

मूढैः पाषाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

अर्थ-जल, अन्न आणि सुभाषित हीं तीन (च) रत्नें पृथ्वीवर आहेत. (कांहीं) दगडांच्या तुकड्यांना रत्न म्हणण्यांत येतें पण तसें म्हणणारे मूर्ख आहेत.

अपेक्षंते नचस्नेहं न पात्रं न दशान्तरम्

सदा लोकहिते युक्ता रत्नदीपाइवोत्तमाः ॥

अर्थ-उत्तम लोक नेहमीं रत्नदीपाप्रमाणें लोकहित करण्यांत (च) चूर असतात. ह्या कार्मीं ते स्नेह, पात्र, आणि दशांतर यांची अपेक्षा करीत नाहीत. हा श्लोक द्वयीं आहे म्हणजे यांतील स्नेह, पात्र, आणि दशांतर हे शब्द द्वयीं आहेत. तेल, दीपपात्र आणि वात या अर्थीं ते रत्नदीपाला लागतात. आणि उत्तम पुरुषाकडे मैत्री, मैत्र्याघान व स्थिति-विशेष या अर्थीं लागतात.।)

(आमच्या रत्नप्रदीप खंड २ रा पृष्ठ ६०० वरील “ हरिभक्त-मंदिरी त्या केवळ मणिदीपमात्र अस्तेह ” याच्याशीं याची तुलना करावी.)

लघुरत्नपरीक्षा

शास्त्रीय विभाग

शास्त्रचक्षुर्विनारत्नं नान्यो वेत्ति कदाचन
असाध्या त्रिदशैरेव परीक्षा शास्त्रवर्जिता ।

प्रकरण १० वें

विशिष्ट गुरुत्व पाहण्याचीं यांत्रिक व इतर साधनें

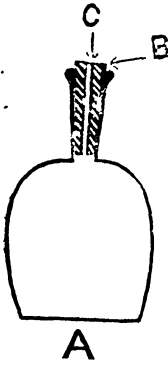
गुरुत्व म्हणजे वजन. कोणत्याहि पदार्थाचें विशिष्ट गुरुत्व म्हणजे शुद्ध पाण्याच्या सापेक्ष म्हणजे त्याचें पाण्याशीं तुलना करून काढलेलें तुलनात्मक वजन. शास्त्रीय (Synthetic) रत्नें खेरीज करून रंगानें आणि रूपानें एकसारखीं दिसणारीं रत्नें एकमेकांपासून ओळखण्यास त्यांचें विशिष्ट गुरुत्व हें एक महत्वाचें साधन आहे. प्रत्येक जातीच्या रत्नाचें विशिष्ट गुरुत्व निरनिराळें असतें. म्हणून ज्या रत्नांचें विशिष्ट गुरुत्व सारखें असल्याचें आढळून येईल, तीं रत्नें एका जातीचीं मानण्यास साधारणपणें हरकत नाहीं. प्रमुख अशा वीस रत्नांचीं विशिष्ट गुरुत्वे ह्या पुस्तकाच्या पांचव्या प्रकरणांत दिली आहेत. तसेंच कोणत्याहि पदार्थाचें विशिष्ट गुरुत्व ताजव्यानें काढण्याची एक रीतही तेंथे दिली आहे.

वरील प्रकारानें मोठ्या अगर मध्यम आकाराच्या रत्नाचें विशिष्ट गुरुत्व काढतां येईल. पण अगदींच बारीक रत्न असेल अथवा रत्नांचे बारीक तुकडे असतील तर त्याचें इतकें सूक्ष्म वजन बरोबर येणें कठीण होईल. अशा वेळीं पिकनामीटर नांवाच्या बाटलीच्या यंत्राचा उपयोग करणें जास्त सोईचें होईल.

पिकनामीटर (Pycnometer):-ही एक निरुद तोंडाची खाली दिलेल्या आकाराची बाटली असते.

A ह्या बाटलींत B हें घोटीव कांचेचें बूच घातलेलें असतें. C हें बुचांत केलेलें आरपार भोंक असतें. ह्या बाटलीचें नांव पिकनामीटर अथवा स्पेसिफिक ग्रॅव्हिटी बॉटल असें आहे. ह्या बाटलींत पाणी घातलें आणि बूच घट्ट बसविलें म्हणजे फक्त बुचांतील भोंकांतून पाणी बाहेर येण्याला वाट असते. ह्याप्रमाणें पाणी पूर्ण भरून काढून बूच बसविल्यावर

ती बाटली व बूच हीं साफ पुसून कोरडीं करावीं म्हणजे बहिर्भागास पाणी बिलकूल नसलेली पण अंतर्भागी पुरी पाण्यानें भरलेली अशी बाटलीची



स्थिति झाली. मग बूच काढावें आणि बाटलीच्या तोंडांतून तपासावयाचें रत्न बाटलींत टाकावें. रत्न आंत जाईल इतक्या रुंद तोंडाची बाटली पाहिजे हें सांगणें नकोच. रत्न आंत टाकल्यावर बूच लावावें. म्हणजे बाटलींत जेवढ्या आकाराचें रत्न टाकिलें असेल तेवढ्याच आकाराचें पाणी बुचांतील भोंकांतून बाहेर येतें. आपण तपासण्याच्या रत्नाचें वजन अगोदरच काढून ठेवावें. तसेंच पूर्ण पाण्यानें भरलेली बाटली तराजूच्या म्हणजे कांठ्याच्या एका पारड्यांत ठेवून व तिच्याजवळच तपासावयाचें

रत्न ठेवून त्या रत्नासह बाटलीचें वजनही अगोदर काढून ठेविलें असवें. नंतर पाण्यानें भरलेल्या बाटलींत रत्न घालून जें पाणी बाहेर निघून जाईल तें पुसून बाटली कोरडी करून रत्न बाटलींत असतांच तिचें वजन करावें. हें वजन पारड्यांतच रत्न बाजूस ठेवून पूर्वी काढलेल्या वजनापेक्षां कमी भरेल. जितकें कमी भरेल तितक्या वजनाचें पाणी बाटलींत घातलेल्या रत्नाच्या आकारामुळें कमी झालें हें उघड आहे. ह्या कमी झालेल्या वजनाच्या आंकड्यानें रत्नाच्या वजनाच्या आंकड्यास भागावें; जो भागाकार येईल तें त्या रत्नाचें विशिष्ट गुरुत्व होय. नंतर रत्नाच्या विशिष्ट गुरुत्वाच्या कोष्टकांत पाहून ज्या रत्नाच्या विशिष्ट गुरुत्वाशीं तो आंकडा जुळेल त्या जातीचें तें रत्न समजावें. हें उदाहरणानें स्पष्ट समजेल. एक पांढरें रत्न घेऊन तें भरलेल्या बाटलीसह

| | |
|---|--------------|
| वजन केलें असतां आलेलें वजन | = ५३.५१ रति. |
| तें रत्न बाटलींत घालून बाटलीचें केलेलें वजन | = ५२.५१ रति. |

| | |
|---|--------|
| पाणी बाटलीबाहेर निघून गेलें त्याचें हें वजन झालें | १ रति. |
|---|--------|

| | |
|-------------------|-----------|
| त्या रत्नाचें वजन | ३.५१ रति. |
|-------------------|-----------|

$$\begin{aligned} \text{विशिष्ट गुरुत्व} &= \frac{\text{रत्नाचें वजन}}{\text{बाहेर पडलेल्या पाण्याचें वजन}} \\ &= \frac{३.५१}{१} = ३.५१ \text{ हें विशिष्ट गुरुत्व.} \end{aligned}$$

कांचमण्याचें विशिष्ट गुरुत्व २.६६ असल्यामुळें हें रत्न कांचमणि नव्हे हें उघड झालें. इतकें विशिष्ट गुरुत्व हिऱ्याचें असतें. म्हणून हें रत्न हिऱा असावा असें होईल. असें होईल म्हणण्याचें कारण पुष्परागाचें विशिष्ट गुरुत्व ३.५१ असल्यानें हिऱ्याच्या विशिष्ट गुरुत्वाजवळजवळ तेंही रत्न आहे. म्हणून वजन करण्यांत अगर बाटली कोरडी करण्यांत कमीजास्तपणा झाला तर ०.२ इतका फरक पडणें शक्य आहे. म्हणून त्यास आणखी दुसऱ्या प्रकारानें पारखलें पाहिजे व नंतर अखेरचा निर्णय दिला पाहिजे.

वजन करण्याचा कांटा ०.१ रतीचा फरकही दाखवूं शकेल इतका उत्तम असला पाहिजे. म्हणून हल्लींच्या कायद्याप्रमाणें तयार केलेला ए क्लासचा तराजू वापरावा. असा कांटा असला म्हणजे ह्या बाटलीच्या साधनानें काढलेलें विशिष्ट गुरुत्व व्यवहारांत उपयोगी पडण्याइतकें बरोबर निघतें. मात्र बाटलीच्या अंतर्भागीं बुडबुडे असतां उपयोगी नाहीं व बाटली ही वजन करण्याच्या अगोदर बाहेरून चांगली कोरडी केली पाहिजे. शिवाय बाटली नुसत्या हातांनीं धरली तरी हाताच्या उष्णतेनें पाण्याचें प्रसरण होऊन जास्त पाणी बाहेर जाण्याचा संभव असतो. तसें न व्हावें म्हणून हातांत सुती कापड घेऊन बाटली धरावी. नुसत्या हातांनीं घरूं नये. इतक्या काळजीपूर्वक काम केलें म्हणजे चूक होण्याचा संभव नसतो. स्पेसिफिक ग्रॅव्हिटी बाटलीची किंमत एक डालरहूनही कमी असते, म्हणून हिचा उपयोग सर्वांना करितां येण्यासारखा आहे.

अभ्यासूनें प्रथम आपणांस ज्यांचें विशिष्ट गुरुत्व माहित आहे अशीं रत्नें घेऊन त्यांचें विशिष्ट गुरुत्व काढण्याची संवय करावी. आणि नंतर माहित नसलेल्या रत्नाचें विशिष्ट गुरुत्व काढण्याचा प्रयत्न करावा. रत्नांचा व्यापार करणाऱ्यापार्शीं जे कांटे असतात ते इतके सूक्ष्म नसतात;

म्हणून रत्नांची पारख करण्यासाठी वापरण्याचे कांटे अगदी सूक्ष्म फरकही दाखविणारे घ्यावे लागतात.

ज्या ठिकाणी पुष्कळ रत्नांची तपासणी करावयाची असते त्या ठिकाणी ज्या द्रवांचें विशिष्ट गुरुत्व माहित आहे असे द्रव घेतात आणि त्यांच्या साधनानें रत्नांचें विशिष्ट गुरुत्व काढितात. द्रवाच्या इतक्याच विशिष्ट गुरुत्वाचें रत्न त्या द्रवावर ठेविलें तर तें त्या द्रवांत ठेवावें तेथेंच राहतें. द्रवाहून जास्त विशिष्ट गुरुत्वाचें म्हणजे जास्त जड रत्न असेल तर तें त्या द्रवांत बुडून तळाशी जातें. जर द्रवाहून कमी विशिष्ट गुरुत्वाचे रत्न असेल तर तें द्रवावर तरंगत राहिल. ज्या खनिजाच्या समान विशिष्ट गुरुत्वाचा द्रव ज्या बाटलीत असेल तिला त्या खनिजाच्या निदर्शक अक्षरांचा कागद लावून ठेविला म्हणजे ओळखण्याचें काम सुलभ होतें.

रत्नें द्रवांतून बाहेर काढण्याकरितां कांचेचा चमचा वापरावा हें उत्तम. ओपल आणि पेरोज हीं रत्नें सच्छिद्र असल्यामुळें द्रवांत घालूं नयेत. घातल्यास बिघडतील.



प्रकरण ११ वें

उष्णतेचे व विद्युल्लतेचे रत्नांवरील परिणाम आणि रत्नांचा सुवास

उष्णतेचे परिणामः—रत्नांची परीक्षा करण्याचे कार्मी उष्णतेचा फारसा उपयोग होत नाही. तथापि थोडाफार उपयोग होतो तो असा की, खरी रत्ने हीं चांगलीं उष्णतावाहक असल्यामुळे त्यांवर तोंडांतील वाफारा टाकिला तर तो त्याच्या पृष्ठावर तांबडतोव दाटतो व तांबडतोव त्याची वाफ होऊन नाहीसा होतो. पण असाच वाफारा कांचेच्या खोऱ्या रत्नावर टाकिला तर ह्या दोन्ही क्रिया इतक्या झटपट न होतां सावकाशपणें घडतात. ह्या फरकामुळे खऱ्याखोऱ्या रत्नांची निवड करतां येते.

उष्णतेचा परिणाम मात्र रत्नावर विलक्षण होतो तो असा की, उष्णता देऊन कांहीं रत्नांचा रंग बदलतां येतो. रत्नें भाजण्याची क्रिया प्राचीन इजिप्तचे लोकहि करीत असत. तीच बहुतेक क्रिया हल्लींही तशीच प्रचारांत आहे. ती अशीः—रत्न कपासारख्या पेटवणांत ठेवून पेटवणास आग लावावयाची अथवा चुनखडीचें फार बारीक चूर्ण करून त्यांत अथवा मृत्तिकेंत रत्न ठेवून तें मातीच्या मुशींत भाजावयाचें. मात्र काळजी इतकी बाळगावयाची की, उष्णता फार होऊं नये. नाहीतर रत्न पिचून जाण्याचा संभव असतो. इतकी सावधगिरी बाळगली तर पुष्पराग आणि शिरकान अशा कांहीं रत्नांचा रंग उष्णतेनें सुधारतां येतो. तसेंच तोरमलीचा रंग घालवून ती शुभ्र करतां येते. तथापि फार उष्णता दिली गेल्यास बहुतेक रत्नें अगदीं बिघडून जातात. ओपलला चिरा पडून त्याचें सौंदर्य नाहीसें होतें. पेरोजाचा रंग फिकका होतो. याकूत संऱ्याच्या रंगाचें महाळुंगी होतें. धूम्र स्फटिकाचा रंग उदी अथवा पिवळा होतो. कांहीं सार्ड (तांबड्या रंगाचीं सार्ड रत्नें) रत्नांचें रुधिराक्ष ह्या रत्नांत रूपांतर होतें. कांहीं वज्रभासीयांचें तेज वाढून तें वज्राशीं स्पर्धा करूं लागतें. फार फार उष्णता

चाढविली तर प्रखर तेजाचा हिरा काळा कोळसा होतो. शेरीच्या मनोहर रंगाचे पुष्पराग आपला रंग घालवून बसतात. तत्रापि निवाल्यावर ते गुलाबी रंग धारण करितात. माणकें व दुसरीही कांहीं रत्ने आपला रंग बदलतात, पण निवाल्यावर पुनः पूर्वीच्या रंगाचीं होतात. मोतीं तपकिरी रंगाचीं होऊन पिचतात. अंबरांतून काळा धूर निघूं लागून त्याचा कापरासारखा सुगंध सुटतो. असें म्हणतात कीं रत्नाचा रंग जर सेंद्रिय पदार्थापासून असला तर तो अजिबात नष्ट होतो. पण निरिंद्रिय द्रव्यानें रंग आला असल्यास रत्न निवाल्यावर त्याचा रंग पूर्वीप्रमाणें होतो अगर अगदीं भिन्नही होतो.

विजेचे परिणामः—उष्णतेनें अथवा घर्षणानें कांहीं रत्नांत वीज उत्पन्न होते. तोरमली, कांचमणि, पुष्पराग आणि हिरा ह्या रत्नांस गरम केल्यानें त्यांत वीज उत्पन्न होते. त्यांस उष्णतेनें विद्युज्जागृत होणारीं रत्नें म्हणतात. ह्यांपैकीं तोरमलीला जर फारेन—हाइटच्या मापाप्रमाणें ५०० अंशांच्या वर आणि ३००० अंशांच्या आंत उष्णता दिली तर तिच्या एका टोंकाला धनविद्युत् आणि दुसऱ्या टोंकाला ऋणविद्युत् उत्पन्न होते. असा प्रकार पुष्पराग रत्नांतहि होतो; पण तो तोरमलीपेक्षां कमी प्रमाणांत असतो. कांचमण्यांतहि असा प्रकार घडतो; पण कांचमणि जुळे असून त्यांचे विरुद्धभाग एकमेकांवर गेले असले तर ती अदृश्य असते. रत्नांच्या ह्या खुणामुळे त्यांच्यासारख्या रंगाच्या दुसऱ्या रत्नांपासून तींओळखितां येतात.

विजेनें जागृत होण्याचा कांहीं रत्नांचा धर्म त्यांस कृत्रिम रत्नापासून ओळखण्यास उपयोगीं पडतो. रत्नांत वीज जागृत झाली किंवा नाही हे पाहण्याचें साधन असें आहे, कीं वीज ज्या रत्नांत उत्पन्न झाली आहे त्या रत्नाजवळ हलका पदार्थ जसें रेशीम, लोकर, पिसें, कागदाचे कपटे, धान्याचीं हलकीं टरफले, सोनेरी वर्ख हे पदार्थ नेले असतां ते रत्नांकडून आकर्षिलें जातात. तसेंच विद्युज्जागृत झालेलीं रत्नें अंधेरांत प्रकाशमान दिसतात.

रत्नांचा सुवासः—रत्नांना सुवास येतो असें ऐकल्याबरोबर आश्चर्य चाटतें व तें बरोबरही आहे. कारण कोणतेंही रत्न हुंगलें तर त्यास वास येत नाही. तथापि कांचमणि हें रत्न असें आहे कीं त्यास घासल्यानें मधुर सुवास येतो. अम्बर अथवा तृणमणि हें रत्न जाळल्यास सुगंध सुटतो व चोळल्यासही थोडा वास येतो.

प्रकरण १२ वें

रत्नांचे स्वभावसिद्ध स्फाटिक आकार

कामं चारुतराः सन्नि जातीनां प्रतिरूपकाः ।

जातिवंत रत्नांपेक्षां कृत्रिम रत्नेच जास्त सुंदर असतात असें एका ग्रंथकाराने वरील श्लोकार्घात म्हटलें आहे तें खरेच असल्याचें व्यवहारांत अनेक वेळां दिसून येतें. जर्मन शास्त्रीय रत्नें आणि जपानी कलचर मोतीं यांनीं ही गोष्ट अगदीं तंतोतंत किंवा कांकणभर जास्तच सिद्ध केली आहे. म्हणून जर नैसर्गिक रत्नेच घेणें असतील तर तीं कृत्रिमापासून ओळखतां येण्याचीं सर्व साधनें अवगत असलीं पाहिजेत हें लक्ष्यांत आणून खनिज रत्नांसंबंधाचें तें ज्ञान संपादन करण्याचें एक साधन त्या रत्नांचे नैसर्गिक आकार हें असल्यामुळें त्याचें विवरण ह्या भागांत करण्यांत येत आहे.

खनिज नैसर्गिक रत्नांचा स्फाटिक आकार.

उष्णतेनें द्रवीभूत झालेल्या खनिजांस थंड होण्यास पुष्कळ वेळ मिळाला म्हणजे त्यांचे अणु अव्यवस्थितरीतीनें एकत्र न होतां सुव्यवस्थित रीतीनें कांहीं नियमित आकाराचे होतात. ह्यामुळें त्यांस हमचौक, मनो-न्याचा, शंकूचा, त्रिकोणाचा, चौकोनाचा, षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, वगैरे भूमितीचे आकार प्राप्त होतात. अशा आकारयुक्त खड्यांस स्फटिक अशी शास्त्रीय संज्ञा आहे. जर द्रवयुक्त खनिजांस सावकाश थंड होण्यास वेळ मिळाला नाहीं तर त्यांचे भूमितीचे आकार न होतां कांचसदृश आकार होतात. सिलिका ह्या एकाच द्रव्याचीं अशीं निरनिराळीं रूपे आपल्या दृष्टीसमोर अनेकदां येतात. सिलिकेचे स्फटिकरूप कांचमणि म्हणजे रॉकक्रिस्टल (स्फटिकरत्न) हें होय. ह्याचेंच तावदानाची कांच हें कांचसदृश रूप होय.

रत्नांपैकीं ओपल म्हणजे शिवघातु अथवा दुधिया पत्थर ह्यांसारख्या रत्नांखेरीज बाकीचीं सर्व रत्नें स्फटिकरूप असतात. ह्या प्रत्येक रत्नाचे

घटक अणु रत्नाच्या अक्षाभोवतीं अगदीं व्यवस्थित रीतीनें आपली रचना करून निरनिराळ्या प्रकारचे अनेक स्फटिकाकार घेतात. प्रत्येक स्फटिकांत कांहीं सपाट भाग असतात. त्यांच्या बाजू म्हणजे हे सपाट भाग उजळा दिल्याप्रमाणें सफाईदार असून दुसऱ्या बाजूशीं त्यांचा सरळ रेषेंत संगम होतो. स्फटिकाचे दोन सपाट भाग, सहा कांठ व चार कोन इतके तर असतातच. बहुतेक सर्व स्फटिकांस हे सपाट भाग, कांठ व कोन ह्यांपेक्षां जास्तच असतात. कारण स्फटिकांचे आकार अनेकविध आहेत. एका कोनापासून समोरच्या कोनापर्यंत कल्पिलेल्या रेषेस आंस म्हणतात.

निरनिराळ्या रत्नांचे अणु निरनिराळा स्फटिकाकार धारण करितात. ह्यामुळे होणाऱ्या निरनिराळ्या रत्नांचे स्वाभाविक विशिष्ट आकार ठरलेले आहेत. एका रत्नाचें पृथक्करण करून अणु निरनिराळे केले व त्यांस पुनः स्फटिकरूप धारण करण्यासारखी परिस्थिति आणून दिली तर त्या अणूंचे स्फटिकाकार पुनः पूर्वीच्याच रत्नाचे होतात; निराळ्या प्रकारचे होत नाहीत. शिवाय हे अणु रसायन रीत्या जुळून एकेक स्फटिकाचा अत्यंत सूक्ष्म कण तयार करितात व हे सूक्ष्म कण एकत्र जुळत जुळत रत्नाच्या स्फटिकाच्या आकाराची वाढ होते. म्हणूनच रत्नाचे फोडून तुकडे केले तरी ते त्या रत्नाच्या तऱ्हेचे स्फटिकाकार असेच त्याचे तुकडे पडतात. रत्नाचें चूर्ण केलें तरी त्याचे सूक्ष्म कण अशाच स्फटिकाच्या आकाराचे असतात. त्या चूर्णास घोटून घोटून त्याची धूळ केली तरी असे सूक्ष्म कणही पूर्ववत् स्फटिकाकारच. एवढेंच नव्हे तर सूक्ष्मदर्शक यंत्राखेरीज दिसणार नाहीत, इतके बारीक कण केले तरी ते अशाच प्रकारचे स्फटिकाकारच रहात असल्याचें आढळून आलें आहे. यावरून उघड होतें, कीं रत्नाचा बाह्याकार म्हणजे अंतर्गत लघ्वाकार स्फटिकाचें अनेक पर्तीनीं वाढलेलें स्वरूपच होय.

असें दिसतें कीं, उष्णतेमुळे मोकळे झालेले परमाणु इतस्ततः वावरत असतां रासायनिक प्रेमानें, एकत्र होऊन निरनिराळ्या तऱ्हेच्या सूक्ष्म स्फटिकांची बांधणी करितात. त्यांपैकीं सजातीय स्फटिकांस उष्णता अथवा विद्युत् या शक्तीनें गति मिळून द्रवाच्या साधनांनें ते पुढें ढकललें जातात आणि आपल्या वैयक्तिक तऱ्हेच्या स्फाटिक रचनेचीच आवृत्ति कल्पित आंसाभोवतीं करून बसती करितात. तेथें त्यांस खोहाकर्षणांनें

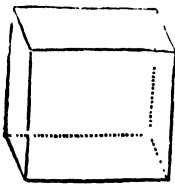
स्थैर्य येते, व पुरेशी उष्णता कायम असेपर्यंत त्यांची वाढ आंसाभोवतीं होत असते. या प्रकारानें निरनिराळ्या जातीचे स्फटिक तयार होत असावे.

थंडी ही अकार्यकारी आहे; म्हणून थंड झालेल्या द्रवांतील स्फटिक चलन पावून न शकल्यानें ते तेथल्या तेथेच स्थिरावतात. आपल्या नजरेत भरेल असा स्फटिकावर स्फटिक बसवून वाढलेला मोठा स्फटिक तेथे तयार होत नाही. या कारणानें सूक्ष्म स्फटिक आंत असलेल्या, पण लवकर थंड झालेल्या खडकांस स्फटिकाकार दिसत नाही. अशाच प्रकारचीं रुधिराक्ष, संगयशव, सुलेमानीपत्थर वगैरे कांहीं रत्ने आहेत. त्यांस अदृश्य अथवा अस्फुट स्फटिकी रत्ने (Crypto crystalline) असें म्हणतात.

स्फटिकीभवनानें होणाऱ्या प्रत्येक जातीच्या रत्नाचा नियमित आकार एकच जातीच्या एकाद्या ठिकाणच्या रत्नाशी जुळत नाही असें बाह्यतः दिसले तर त्याच्या निरनिराळ्या पैलूंच्या दरम्यानचे कोन मोजावे; ते जुळले म्हणजे बाह्य आकार परिस्थितीमुळे विघडला असला तरी तीं रत्ने एकाच जातीचीं आहेत असें समजावे. ह्याहून बारीक भेद रत्नप्रदीप खं. २ पृ. २८३, २८४ वाचल्यानें अधिक स्पष्ट होईल.

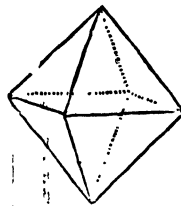
सर्वे सेंद्रिय व निरिंद्रिय स्फटिकांच्या आकाराचे प्रकार कोणत्या तरी पद्धतीत येतील असे सहा ठरविले आहेत. व त्या पद्धतीस इंग्रजीत सिस्टिम असें नांव दिले आहे. त्या पद्धतीचीं नावे व तीं येणारीं रत्ने यांचा उल्लेख करून त्या त्या पद्धतीतील रत्नांचीं चित्रे पुढे दिली आहेत.

१ घनाकार पद्धति (Cubic). हिचे तीन मुख्य प्रकार आहेत. ते—



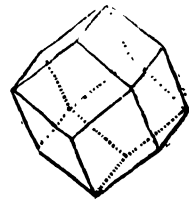
चित्र नं. १ घन
हा आकार

चित्रखनिजांचा असतो.



चित्र नं. २ अष्टपैलू
हा आकार हिरा व लाल

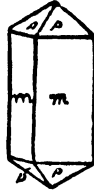
यांचा असतो.



चित्र नं. ३ द्वादश पैलू
हा आकार चुनडी

हा रत्नाचा असतो.

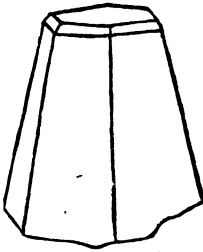
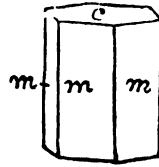
२ चतुष्कोणपद्धति (Tetragonal).



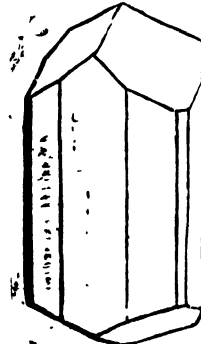
चित्र नं. ४-चतुष्कोण पैलू

हा आकार वज्रमासीय आणि आयडोक्नेज यांचा असतो.

३ षट्कोणपद्धति (Hexagonal). हिचे चार मुख्य प्रकार आहेत. ते—

चित्र नं. ५-कुंठदोडूव
(माणिक व इंद्रनील)चित्र नं. ६-वैदूर्यस्फटिक
(पाच व सागरराग)

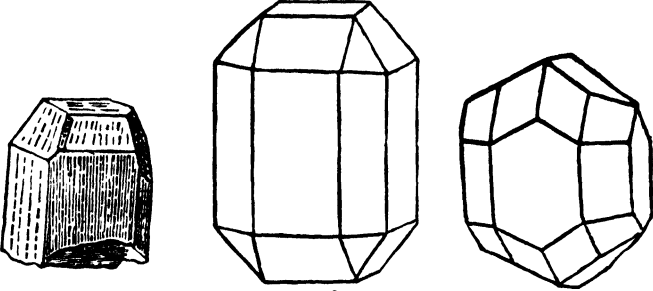
चित्र नं. ७-कांचमणि



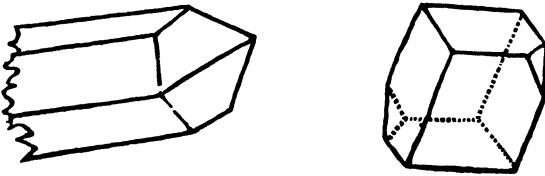
चित्र नं. ८-तोरमली

केव्हां केव्हां आकारांत इतका रेखिवपणा नसला तरी बरील सर्क रलें षट्कोणपद्धतीपैकींच आहेत.

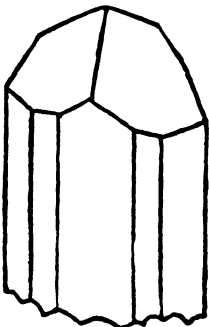
४ तुल्यचतुर्भुजपद्धति (Orthorhombic). हिचे मुख्य प्रकार-



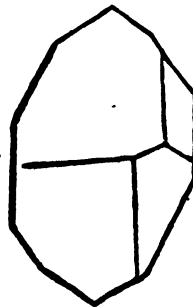
चित्र नं. ९-पुष्पराग चित्र नं. १०-पेरिडाट चित्र नं. ११-स्वर्णवैदूर्य
५ प्रवर्तपद्धति (Monoclinic system). हिचे प्रकार—



चित्र नं. १२-चंद्रकांतमणि चित्र नं. १३-स्फोड्यूमीन-कुंझाइट
६ त्रिप्रवर्तपद्धति (Triclinic system) हिचे प्रकार:-



चित्र नं. १४
अम्याझो-
नाइट



चित्र नं. १५
सूर्यकांतमणि

येथे हें ध्यानांत ठेवणें अवश्य आहे कीं अमुक रत्नाचा अमुक प्रकारचा आकार असतो असें जें लिहिलें आहे तें सार्वत्रिक सत्य आहे. कोणत्याहि देशांत तें रत्न सांपडलें तरी त्याच्या आकाराचा प्रकार नेहमीं तोच असतो. तथापि कित्येक वेळीं रत्न फुटल्यामुळें आकार बिघडलेल्या स्थितींत रत्नें सांपडतात. अथवा रत्नांची वाढही कित्येक वेळीं अनियमित झाल्यानें त्यांचा आकार बिघडला आहे अशा स्थितींतही तीं सांपडतात. परंतु असा कांहीं प्रकार झाला नसल्यास एकाच जातीच्या रत्नांचे स्फटिक हे आकाराच्या सर्व गुणांनीं एकच असतात.

स्फटिकांचा स्वाभाविक बाह्य आकार फार महत्त्वाचा आहे. त्यांचें महत्त्व असें आहे कीं त्या योगानें स्फटिकांची अंतर्रचना कळून त्यावरून नैसर्गिक रत्न कोणतें आणि कृत्रिम कोणतें हें समजण्याला साधन होतें. नैसर्गिक रत्न जसें सूक्ष्म स्फटिकांच्या रचनेनें वाढलेलें असतें तसें कृत्रिम रत्न नसतें. कृत्रिमरत्नाची रचना अंतर्भागीं नियमित नसते. रत्नांना आकार देणाऱ्या मणिकारांना तर त्यांच्या स्फटिकाकाराची माहिती असणें अत्यंत अवश्य आहे. ह्याच्या ज्ञानानें रत्नांस जास्तीत जास्त तेज आणण्याकरितां पैलू कसे पाडावे हें ठरवितां येतें. शिवाय ह्या बाह्याकारांशीं रत्नाच्या अनेक गुणधर्मांचा संबंध येतो. काठिन्य, भिदुरता, प्रकाशाचे परिणाम, उष्णतेचे आणि विजेचे परिणाम ह्या स्फटिकाकारावर अवलंबून असतात.

प्रकरण १३ वें

रत्नांचे कृत्रिम आकार

प्रथमतःच खार्णीतून काढलेलीं रत्नें साफसूफ करून त्यांचे स्वभाव-तःच असलेले पैलू उजळ करावे लागतात. त्यांचे कोनेकोपरे जाडेभरडे अगर वाढलेले असले तर ते नीटनेटके करून व कापून त्यांचा आकार सुधारावा लागतो. खार्णीतून काढल्या जाणाऱ्या रत्नांस असा संस्कार न करितांच वापरण्यालायक अशीं रत्नें क्वचित्च सांपडतात. शिवाय तीं नदीच्या पात्रांतून वहावत आलेलीं असल्यास घर्षणानें झिजलेलीं अगर गोलाकार झालेलीं असतात. शिवाय कित्येक रत्नें वापरण्यायोग्य अशा प्रमाणापेक्षां मोठीं असतात, म्हणून त्यांस कांतून अगर त्यांचे तुकडे करून त्यांस कोणता तरी आकार द्यावा लागतो. रत्नांच्या हिंदी कृत्रिम आकारांची त्रोटक माहिती त्या त्या रत्नांच्या वर्णनांत देण्यांत आली आहे. रत्नांना देण्यांत येणाऱ्या पाश्चात्य पद्धतीचे मुख्य आकार आहेत ते—

१ ब्रिलियन (Brilliant).

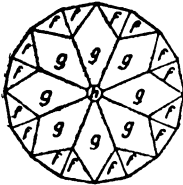
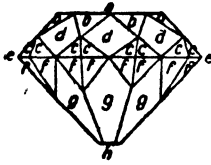
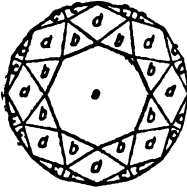
२ गुलाबघाटी (Rose-cut). ह्याचें इकडील कमलघाटीशीं साम्य दिसतें.

३ टेबलघाटी (Table-cut).

४ पायऱ्यांचें टेबलघाटी (Step-cut).

५ मदारघाटी (Cabuchon). अर्धगोल, दीर्घ-अर्धगोल, कंकणाकृति ह्या त्याच्या पोटजाती होतील.

रत्नांच्या सर्व कृत्रिम आकारांत ब्रिलियन हा आकार प्रमुख आहे. ह्याचे दोन भाग असतात. वरच्या भागाला माथा (Crown) आणि



खालच्या भागाला पेंदी (Culasse) म्हणतात. ह्या दोहोंमध्ये कटिभागाचा कंगोरा (Girdle) असतो. अगदी माथ्यावरील पैलूला टेबल (Table) हें नांव असून पेंदीच्या तळच्या पैलूला क्यूलेट किंवा कॉलेट (Collet) म्हणजे कोंदण असे म्हणतात. पूर्ण बिलियन आकाराला ५८ पैलू असतात. पैकीं माथ्याचे भागांत ३३ असून पेंदीच्या भागांत २५ असतात. कटिभाग शक्य तितका पातळ असून बहुधा वर्तुळाकार असतो.

ह्यांत टेबल (a) ह्यास पैलूच्या कांठाला लागून असलेले असे ८ त्रिकोणी पैलू असतात. त्यांस नक्षत्रपैलू (Star facets) म्हणतात. आकृतीत हे (b) ह्या अक्षरानें दाखविले आहेत. कटिभागाला लागून असलेले १६ वरचे स्किल पैलू ह्या नांवाचे (c) ह्या अक्षरानें निर्दिष्ट केले आहेत. ह्या दोहोंच्यामध्ये बेक्षिल ह्या

नांवाचें समांतर समभुज चौकोनाच्या आकाराचे ८ पैलू आहेत ते (d) ह्या अक्षरानें सूचित केले आहेत. असे टेबलसुद्धा वरचे ३३ पैलू झाले. कटिभागाच्याखाली कटिभागाला लागून १६ त्रिकोणी आकाराचे पैलू आहेत त्यास खालचे स्किल पैलू म्हणतात. त्यास (e) हें अक्षर योजिलें आहे. ह्यांना लागून असलेले व कोंदणापर्यंत पसरलेले आठ पॅन्व्हिलियन नांवाचे पैलू आहेत. ह्यांस प्रत्येकीं पांच बाजू असतात. ते (f) ह्या अक्षरानें दाखविले आहेत. शेवटचा पैलू कोंदणाचा मिळून हे २५ पैलू आहेत. एकूण वरचे व खालचे मिळून अष्टावन पैलू झाले. हिरा मोठा असल्यास क्यूलेटच्या म्हणजे कोंदणाच्या सभोवतीं आणखी आठ पैलू घालितात. असें केलें म्हणजे एकूण पैलू ६६ होतात. कलियन हिऱ्याच्या मोठ्या तुकड्याचा जो बिलियन आकार केला आहे त्याला तर ७४ पैलू आहेत. अशा आकारास डबल बिलियंट म्हणतात. ह्याचा हाफ बिलियंट, सिंगल

अथवा जुना हाफ कट म्हणून प्रकार आहे तो लहान रत्नांचे कामी उपयोगांत आणतात. आणखी टूप अथवा स्ट्रिट त्रिलियंट म्हणून प्रकार आहे त्यांत ४२ पैलू असतात. हाफ त्रिलियंट आकार म्हणजे त्रिलियंटप्रमाणे फक्त क्राऊन म्हणजे माथा असलेला आणि खालचा भाग गुलाबकट (Rose) प्रमाणे सपाट पातळी असलेला असा असतो.

ह्या त्रिलियन आकाराच्या निरनिराळ्या भागांचें एक प्रमाण ठरलेलें आहे हें प्रमाण ठेविलें म्हणजे जास्तीत जास्त तेजस्विता येते. जसें—कोंदणाच्या व्यासाचें प्रमाण एक मानिलें तर कटिभागाचा व्यास नऊ पाहिजे आणि टेबलाचा पांच पाहिजे. तसेंच कोंदणापासून कटिभागापर्यंत जें उभें अंतर त्याच्या निमें उभें अंतर कटिभागापासून टेबलापर्यंत पाहिजे. भोंवऱ्यासारखा जो वरील आकृतीपैकी आकार आहे तो ह्या प्रमाणांनीं असा तयार होतो आणि ह्यांनीं जे कोन तयार होतात त्यांमुळेंच रत्नांत शिरलेल्या प्रकाशकिरणांचें वारंवार परावर्तन होतें.

तयार करण्याच्या रत्नाचा आकार अमुकच होईल हें नक्की सांगतां येत नाहीं; कारण रत्नाचा असंस्कृत तुकडा कसा आहे हें पाहून त्याचा शक्य तितका जास्त भाग कायम रहावा पण शक्य तितकी तेजस्विताही आणितां यावी असा विचार करून आकार ठरत असतो. ह्यामुळें तो कधीं वर्तुळ तर कधीं दीर्घवर्तुळ, कधीं चौकोनी तर कधीं तिकोनी असा होतो. पण बिनरंगी म्हणजे शुभ्र खड्याचें रत्न तयार करितांना वर दिलेली प्रमाणबद्धता मात्र शक्य तितकी कायमच ठेविली जाते. रंगीत रत्नाला त्रिलियन आकार देणें असल्यास त्याचा आकार कमी जाड ठेवावा लागतो. जितका रत्नाला रंग जास्त तितकी त्याची जाडी कमी करावी लागते. कारण बिनरंगी रत्नाच्या आकाराइतकी जर रंगयुक्त रत्नाची जाडी ठेविली तर रंग इतका गहिरा दिसेल कीं त्यामुळें त्या रत्नाचें पुष्कळसें सौंदर्यच नष्ट होईल.

एका सहृदय तज्ञ लेखकानें हिऱ्याच्या आकर्षक सौंदर्याचें वर्णन खालीं दिल्याप्रमाणें केलें आहे:—

“It is the ever-changing nuance that chiefly attracts the eye; now a brilliant flash of purest white, anon a gleam

of cerulian blue, waxing to richest orange and dying in a crimson glow, all intermingled with the manifold glitter from the surface of the stone. ”

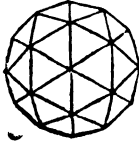
हिऱ्याची प्रभा क्षणोक्षणीं अनेकविध दिसते; ती एकदां अत्यंत शुभ्र वर्णाच्या झगझगीत ज्योतीप्रमाणें तर लगेच आकाशवर्णी नील रंगा-प्रमाणें भासमान होते; लगेच तिचें गहिऱ्या नारिंगीत रूपांतर होऊन अखेर ती किरमिजी उजळ्यांत अंतर्धान पावतांना दिसते. असें होतांना हिऱ्याच्या दर्शनी पातळीवर लकाकणाऱ्या अनेक रंगांच्या वर्णच्छटांशीं त्याचा मिलाफ होऊन त्या सर्व लकेरी पहाणाऱ्याच्या नेत्रांचें आकर्षण करून दिपवून टाकतात.

अशा प्रकारचें वर्णन करण्यासारखी मनाची भावना होण्यास हिऱ्यांतील सूर्यसन्निभ तेज व सुंदर रंगाच्या लकेरी कारणीभूत होतात. हिऱ्यांतून हें तेज व ह्या लकेरी बाहेर काढण्यास त्याचा त्रिलियन आकारच पूर्ण समर्थ आहे. हिऱ्याच्या पृष्ठभागावर पडणारा प्रकाश अंतर्भागांतून पुनः पुनः परावर्तित करून तो हिऱ्याच्या माध्यावरील टेबल ह्या भागातून बाहेर काढून त्याची सूर्यासारखी दिपविणारी प्रभा पहाणाऱ्याच्या नेत्रापर्यंत आणून भिडविणें आणि हिऱ्यामध्ये असलेल्या उच्च वक्रीभवनाच्या योगानें चमकणाऱ्या रंगाच्या लकेरी हिऱ्याच्या पैलूंंतून स्पष्टपणें बाहेर काढून दाखविणें हेच दोन प्रधान हेतू त्रिलियन आकार शोधून काढण्यात होते व ते साध्य झाले आहेत. हे दोन्ही हेतू ह्या आकाराच्या विशिष्ट रचनेनें साध्य होतात.

त्रिलियन आकाराच्या शोधाच्या लगतपूर्वीं हिरे गुलाबघाटी (rose cut) आकाराचे करित असत. हिंदुस्थानांतील ग्रेट मोगल हा हिरा चारगिस ह्या व्हेनिसच्या जोहरीनें कांतून त्यास गुलाबघाटी आकार दिला होता. अर्धवर्तुळाकृति क्याबूचान (cabuchon) आकारावर पैलू पाडून हा तयार करितां येतो. गुलाबघाटी आकाराला वरच्या भागीं चौवीस त्रिकोणाकृति पाकळ्या. असतात हा आकार बहुतेक अर्धगोलाकृति होतो. हल्लीं फार लहान हिऱ्यांस मात्र हा आकार देण्यांत येतो. मोठ्या स्फटिका-

भोवती लहान स्फटिक लावणें असलें तर ह्या लहानांस गुलाबघाटी आकार देऊन त्यांचा उपयोग करण्यांत येतो.

गुलाबघाटीचा नमुना खाली दिला आहे:—

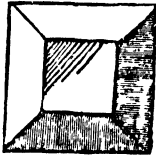


माथ्याचा देखावा

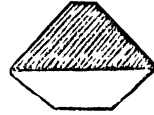


बाजूचा देखावा

ह्याच्या अगोदरचा हिऱ्याचा आकार टेबलघाटी असे. ह्याच्या आकृती खाली दिल्या आहेत:—



माथ्याचा देखावा



बाजूचा देखावा

पैलू असणारी आणि रंगीत रत्ने करण्याकडे जास्त उपयोगांत आणण्यांत येणारी आकृति स्टेप अथवा टॅपकट म्हणजे पायऱ्यांची टेबलघाटी ही होय. हिच्या माथ्यावर टेबल असून कटिभागाच्या वर आणि खाली आडवे समांतर पैलू पाडलेले असतात; पण त्यांत विशेष प्रमाणबद्धता अशी नसते. पाच आणि पुष्कराग ही रत्ने ह्या आकाराचीं अनेक आढळतात. अलीकडे ह्या आकृतीचा शिरोभाग त्रिलियन आकाराचा करण्यांत येऊं लागला आहे. टेबलघाटाची परिघाकृति, दीर्घचतुरस्र (लांबोडी), चौरस, समांतर समभुज चौकोनाकृति अथवा हृदयाच्या आकाराची अथवा कमी प्रमाणबद्ध अशी असते. टेबल कधीं कधीं थोडें गोल केलेलें आढळतें. ह्यांत प्रकाशाचें पूर्ण परावर्तन करण्याचा प्रयत्न मुख्य नसून रत्नाचा रंग कसा खुलेल हा प्रयत्न जास्त असतो. म्हणून रत्नाच्या रंगाच्या कमीजास्त

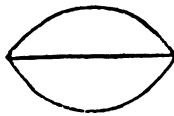
प्रमाणावरून रत्नाची जाडी कमीजास्त करण्यांत येत असते. जर रंग काळा असेल तर रत्नाची जाडी फार कमी करतात. तसें न केलें तर सर्व प्रकाश रत्नांतच गडप होऊन रत्न बहुतेक अपारदर्शक होऊं पाहेंत. रत्नाचा रंग फिक्या असल्यास रत्नाची जाडी वाढवितात म्हणजे रंग भर-गच्च दिसू लागतो. येथे आकाराच्या कांटेकोरपणाची अथवा पैलूच्या यथा-स्थानाचीही विशेष गरज नसून रंग भरदार ठेवून वजन शक्य तितकें जास्त राखण्याची खटपट असते. कारण वजनावर रत्नाची किंमत वाढत असते. वरचा भाग ब्रिलियनघाटी आणि खालचा भाग पायऱ्यांचा टेबलघाटी असला म्हणजे त्यास मिश्रघाटी म्हणतात. याकूत हे ह्या आकाराचे करितात.

आतां राहिलेले आकार मदारघाटी (Cabuchon) हे होत. ह्याचे तीन प्रकार आहेत. एक साधा. ह्या घाटाचा माथा कमानीप्रमाणें बांकदार असतो. दुसरा दुहेरी ह्यांत खालचा व वरचा दोन्ही भाग बांकदार असतात. तिसरा प्रकार पोकळ मदारघाटी हा होय. मदारघाटीला पैलू असत नाहीत. ओपल, चंद्रकांतमणि, मार्जारनेत्री हे खडे अनेक वेळां मदारघाटी असतात. पोकळ मदारघाटी आकार चुनडीपैकीं लाल ह्या रत्नास देतात. ह्या रत्नाचा गहिरा रक्तवर्ण ह्या आकारामुळे जरा कमी प्रमाणांत भासू लागतो. कारण ह्या आकारांत वक्रभागाचे पोटांतील द्रव्य खरडून काढून तो पातळ करण्यांत येतो. अत्यंत गहिरा रंग फारसा आवडत नाही. ह्या आकारामुळे तो कमी होऊन मनपसंत होतो. परोजाचा आकारही कित्येक वेळां मदारघाटी आढळतो.

मदारघाटी आकार



साधा मदारघाटी



दुहेरी मदारघाटी



पोकळ मदारघाटी

पाश्चात्यांच्या आकाराशीं समान अशीं रत्नांच्या आकाराचीं नांवे इकडे नाहीत. ब्रिलियंट आकाराला ब्रिलियन म्हणतात तें तरी तेजस्वी

म्हणजे चमकणारा ह्या अर्थानें म्हणतात. विशेषें करून बिलियन आकाराच्या लहान नगास हा शब्द लावितात. त्यांस तारे असेंही म्हणतात. मोठे बिलियंट हिरे थोडेच दृष्टीस पडतात. वापरांत बहुतेक तारे म्हणजे छोटे बिलियनच जास्त. मोठ्या बिलियंटची किंमत १००० ते १५०० रुपये रतीपर्यंत असते. म्हणून त्यांचा व्यवहार अगदींच मर्यादित असल्याने नांवाने बोलण्याचा प्रसंग फारच क्वचित्. त्यामुळे त्यांच्या नांवाचा प्रचार नाही.

रोजकट म्हणजे कांहीं खरा कमलघाटी नव्हे. कारण कमलाला गुलाबाइतक्या पाकळ्या असत नाहीत. पण पाकळ्यायुक्त ह्या समानार्थी रोजकटला कमलघाटी हें नांव पडून गेलें. टेबलकट आकाराला जर चार कोन असले तर त्यास चौकोनी आणि आठ कोन असले तर त्याला अष्टकोणी हिरा म्हणतात. पायऱ्याच्या टेबलघाटीची तऱ्हाही अशीच आहे. मदारघाटी शब्द वापरांत आहे. पण त्याचाही प्रचार फार थोडा आहे.

हिऱ्याचा एक पानघाट म्हणून आकार प्रचारांत आहे. तो पानाच्या आकाराचा असतो. असा हिरा नर्थांत टीकेस वापरतात. युरोपीयन लोक पानघाटी हिरा लोलकासारखा कर्णभूषणांत वापरतात. पोलकी असाही एक शब्द प्रचारांत आहे. तो बिलंदी हिऱ्याला लावितात.

प्रकरण १४ वें

रत्नावरील प्रकाशाचे परिणाम

प्रकाश हा पंचमहाभूतांपैकी तेजाचा एक भाग आहे. रत्नावर प्रकाश पडला म्हणजे अनेक चमत्कार दिसतात. प्रकाशामुळे रत्नास रंग येतो. रत्नाचा तजेलाही प्रकाशाचाच गुण आहे. रत्नांतील वर्णछटा, इन्द्रधनुष्याचा भास वगैरे प्रकार हे प्रकाशाचे वक्रीभवन, परावर्तन आणि निग्रहण (interference) ह्यांचे परिणाम आहेत. वर्णपट (Spectrum of colours), वर्णभंग (dispersion) हेही त्यांचेमुळेच उत्पन्न होतात आणि रत्नादिकांच्या सौंदर्यात भर टाकतात.

प्रकाशाचे वक्रीभवन व परावर्तन हे दोन मुख्य गुण आहेत. जेव्हां प्रकाशाचे किरण एका पारदर्शक पदार्थातून दुसऱ्या पारदर्शक पदार्थात कोन करून जातात तेव्हां ते आपला सरळ मार्ग सोडून थोडेसे वक्र होतात. हवेतून जाणारा प्रकाशकिरण पाण्याच्या पृष्ठभागावर लंबरूप पडला तर तो पाण्यात शिरल्यावरसुद्धां मूळ मार्गापेक्षा सरळ जातो, पण तो त्या पृष्ठभागावर तिकिस पडल्यास पाण्यात शिरतांना वक्र होऊन पतनबिंदूच्या जागी पाण्याच्या पृष्ठभागाला लंब असलेल्या रेषेकडे वळतो व बाहेर पडतो. किरणाच्या दिशेत हा जो फेरफार होतो त्यास वक्रीभवन म्हणतात. किरण जर एकाद्या चकचकीत व गुळगुळीत अपारदर्शक पदार्थाच्या पृष्ठभागावर पडला तर कांहीं नियमांस अनुसरून तो त्या पृष्ठभागापासून दुसऱ्या दिशेने बाहेर पडतो; त्यास प्रकाशाचे परावर्तन म्हणतात.

पदार्थाच्या (उदाहरणार्थ पाण्याच्या) पृष्ठभागावर पडलेल्या किरणास (Incidental Ray) म्हणतात. हा किरण पाण्यात शिरतांना वक्र होऊन पुढे निघाला म्हणजे त्यालाच वक्रीभूत किरण (Refracted Ray) म्हणतात व जो परावृत्त होऊन पुढे जातो त्यास परावृत्त किरण

(Reflected Ray) म्हणतात. तो किरण पृष्ठभागावर ज्या बिंदूत पडतो त्यास पतनबिंदू (Point of incidence) म्हणतात. ज्या पृष्ठभागावर पतनबिंदूच्या ठिकाणी तो वक्रीभूत अथवा परावृत्त होतो त्या पृष्ठभागाशी काटकोन करणाऱ्या रेषेला लंबरेषा (Normal) म्हणतात. पतनबिंदूपासून पाण्याच्या पृष्ठभागाला काढलेल्या लंबरेषेशी वक्रीभूत किरणाने केलेल्या कोनाला वक्रीभवनकोन व परावृत्त किरणाने केलेल्या कोनाला परावर्तनकोन म्हणतात. किरणांच्या स्पष्टीकरणाचे हेच नियम अर्थातच रत्नांसहि लागू आहेत. म्हणून त्यांच्या आकृति पुढे काढून दाखविल्या आहेत.

सूर्याच्या शुभ्र प्रकाशाची किरणशलाका त्रिपार्श्व लोलकांत गेल्यावर वक्रीभूत तर होतेच, पण नंतर तिचे पृथक्करण होऊन तीतून लाल इत्यादि सात रंग बाहेर पडतात व ते जमिनीवर स्पष्ट दिसतात ह्या प्रकाशाच्या पट्टीला वर्णपट म्हणतात. हे रंग जी जागा व्यापतात. तिचे ३६० भाग केले तर त्यांत प्रत्येक रंगाचे किती भाग असतात हे खाली दाखविले आहे:—

| रंगाचे नांव | भाग |
|----------------------|-----|
| १ लाल | ४५ |
| २ नारिंगी | ३७ |
| ३ पिवळा | ४८ |
| ४ हिरवा | ५० |
| ५ पारवा अथवा अस्मानी | ४० |
| ६ निळा | ६० |
| ७ जांभळा | ८० |

३६०

निरनिराळ्या रंगांच्या प्रकाशकिरणांची वक्रीभवनता निरनिराळी असल्यामुळे वर्णपटांत ते मार्गे पुढे पडतात. ह्यामुळेच शुभ्र किरणाचे विकीरण (Dispersion) होणे शक्य होते. लाल प्रकाशाचे वक्रीभवन सर्वांत कमी होते, म्हणून त्याची पट्टी शुभ्र प्रकाशाच्या मूळ मार्गापासून सर्वापेक्षा

कमी अंतरावर असते. जांभळ्या प्रकाशाचे वक्रीभवन सर्वांत जास्त होते. शुभ्र किरणांतील निरनिराळ्या रंगांच्या किरणांची वक्रीभवनता निरनिराळी नसती तर त्रिपार्श्वीवर पडलेला शुभ्र किरण त्यामधून जशाच्या तसाच म्हणजे शुभ्रच बाहेर पडला असता.

सूर्याच्या किंवा दिव्याच्या प्रकाशांतील निरनिराळ्या रंगांच्या प्रकाशापैकी जो प्रकाश पारदर्शक पदार्थातून पार जातो त्या प्रकाशाच्या रंगावरून आपण त्या पारदर्शक पदार्थाचा रंग ठरवितो. ज्या पदार्थातून फक्त हिरवा प्रकाश पलीकडे जातो तो पदार्थ हिरवा. ज्या पदार्थातून पिवळा प्रकाश पार जातो तो पदार्थ पिवळा. ज्या पदार्थातून शुभ्र प्रकाशांतील सर्व रंगांचा प्रकाश पलीकडे जातो तो रंगहीन अथवा पांढरा. सारांश पदार्थाचे रंग हे त्यांतून बाहेर जाणाऱ्या किंवा त्यावरून परावृत्त होणाऱ्या प्रकाशाच्या रंगावरून आपण ठरवितो. पदार्थ पारदर्शक असो अथवा अपारदर्शक असो शुभ्र प्रकाश त्याच्या पृष्ठभागावर पडला की त्याचा कांहीं भाग पदार्थ शोषण करतो. बाकीचा भाग त्यांतून पलीकडे जातो अथवा त्याच्या पृष्ठभागावरून परावृत्त होतो. कोणत्याही बाबतीत शुभ्र प्रकाशांत असलेल्या सात रंगांच्या प्रकाशापैकी जो प्रकाश पदार्थातून बाहेर पडून किंवा त्यावरून परावृत्त होऊन आपल्या डोळ्यांकडे येतो त्या प्रकाशाच्या रंगावरून पदार्थाचा रंग ठरविला जातो. अशोषित प्रकाश ज्या पदार्थातून बाहेर पडतो त्याला आपण बाहेर पडलेल्या प्रकाशाच्या रंगाचा पारदर्शक पदार्थ म्हणतो. ज्या पदार्थातून अशोषित प्रकाश बाहेर न पडतां त्याच्या पृष्ठभागावरून परावृत्त होतो त्याला आपण त्या परावृत्त प्रकाशाच्या रंगाचा अपारदर्शक पदार्थ म्हणतो.

वर्णपटांत ज्या प्रमाणांत सर्व रंगांचे प्रकाश असतात त्याच प्रमाणांत ते सर्व प्रकाश ज्या पदार्थावरून परावृत्त होतात किंवा ज्यांतून बाहेर पडतात त्यांना आपण पांढरे पदार्थ म्हणतो. ज्या पदार्थावरून कोणताही प्रकाश परावृत्त होत नाही किंवा ज्यांतून कोणताही प्रकाश पलीकडे जात नाही त्यांस आपण काळे पदार्थ म्हणतो.

कित्येक रंगीत पदार्थांच्या रंगांत निरनिराळ्या मिश्र छटा दृष्टीस पडतात ह्याचें कारण कांहीं रंग निरनिराळ्या प्रमाणांत त्यांतून पलीकडे जातात किंवा त्यावरून परावृत्त होतात.

रत्नांच्या गुणधर्मासंबंधी विचार करतां त्यांचे अत्यंत महत्त्वाचे गुणधर्म प्रकाशावर अवलंबून आहेत. प्रकाश कांतलेल्या व पालिश केलेल्या रत्नावर पडला असतां त्यांचें

(अ)—परावर्तन होतें.

(आ)— तो रत्नांतून पार निघतो.

(इ)— त्यापासून उजेड पडतो.

(अ):—ह्यांपैकी परावर्तनाचे योगानें परावृत्त किरणांचा रंग रत्नाला येतो हें आपण वर पाहिलेंच आहे. परावर्तनाचा दुसरा परिणाम रत्नाला तेज येणें हा होय. या तेजाचे वर्णन रत्नाची परीक्षा करण्याची साधनें या प्रकरणांत दिलें आहे.

(आ) ज्या रत्नांतून प्रकाश पार जाऊं शकतो त्याच्या तीन अवस्था असतात.

(क) तें रत्न पारदर्शक असतें.

(ख) त्या रत्नांतून प्रकाशाचें वक्रीभवन होतें.

(ग) त्या रत्नांतील प्रकाशाचें ध्रुवीभवन (Polarization) होतें.

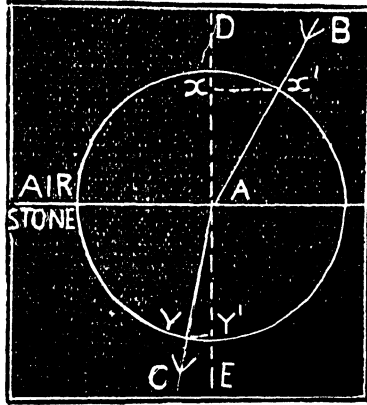
(क)—ज्या रत्नांतून प्रकाशकिरण पार जातात त्यांपैकी कोणासच पूर्ण पारदर्शक म्हणतां येत नाहीं. कारण प्रकाशाचे जे किरण त्यावर पडतात त्यांपैकी कांहीं किरण तीं रत्न खालून टाकतात. म्हणून जीं पारदर्शक असतात तींही कमीजास्त प्रमाणांत पारदर्शक असतात. ज्या रत्नांतून प्रकाश बिलकूल बाहेर जात नाहीं त्यांस अपारदर्शक म्हणतात. पिरोजा, संगयश्चव हीं त्यांचीं उदाहरणें आहेत. तथापि तींही अगदीं निखालस अपारदर्शक असतात असेंही म्हणतां येत नाहीं. कारण जेव्हां त्यांची जाडी फारच थोडी असते त्या वेळीं तींही पारदर्शक होतात. सोनें हा अत्यंत दाढ्यांचा धातु आहे. पण त्याच्या पातळ वखांतून प्रकाशाचें बरेच

किरण पार जातात. ज्या रत्नांतून पलीकडचा पदार्थ स्पष्ट दिसतो त्या रत्नांस व्यावहारिक भाषेत पारदर्शक म्हणतात. पलिकडचा पदार्थ ज्या रत्नांतून अस्पष्ट दिसतो त्या पदार्थांला मंदपारदर्शक (Sub-transparent) म्हणतात. जेव्हां रत्नांतून प्रकाश पार जातो, पण पलिकडचा पदार्थ त्यांतून दिसत नाही तेव्हां त्या रत्नांस प्रकाशभेद्य अथवा अर्धवट पारदर्शक म्हणतात; परंतु जर प्रकाश थोड्याच प्रमाणांत पार जात असला तर त्यास मंदप्रकाशभेद्य म्हणतात. चकचकीत कांच ही पारदर्शक असते पण घांशीव कांच (Ground glass), तेलांत भिजविलेला कागद किंवा ओला कपडा हीं प्रकाशभेद्य होत. कारण त्यांतून प्रकाशकिरण पार जातात; परंतु त्यांमधून पलीकडचे पदार्थ दिसत नाहीत. १

स्वः—प्रकाशाचें वक्रीभवन होणें हा रत्नांचा मोठा महत्त्वाचा धर्म आहे. रत्नांस अनेक असामान्य गुणधर्म ह्यामुळे येतात. हवेसारख्या एकजातीय (Homogeneous) पदार्थांमधून जातांना प्रकाशकिरण सरळ मार्गांनै जातात. ते जर एकाद्या अपारदर्शक गुळगुळीत पदार्थावर पडले तर कांहीं नियमांस अनुसरून परावर्तन पावतात, व आपला मार्ग बदलतात. हवेंतून येणारे प्रकाशकिरण जर पाण्यासारख्या पारदर्शक पदार्थावर लंबरूप पडले तर त्यांतून जातांना ते मूळमार्गांनैच सरळ जातात. पण ते त्याच्या पृष्ठभागावर तिर्कस पडले तर पाण्यांत शिरतांना वक्र होऊन पतनबिंदूच्या जागी पाण्याच्या पृष्ठभागां लंब असलेल्या रेषेकडे वळतात. किरण पाण्याच्या पृष्ठभागावर जसजसा तिर्कस पडतो तसतशी त्याची मूळ दिशा व पाण्यांत शिरल्यानंतरची दिशा यांजमधील कोन वाढत जातो; म्हणजे त्याचें वक्रीभवन वाढत जातें. हाच नियम रत्नालाही लागू आहे. एकाद्या

१ प्रकाश पार जाणें ह्या धर्माचा विचार करितांना पारदर्शक, मंदपारदर्शक, प्रकाशभेद्य, मंदप्रकाशभेद्य हे चारी शब्द पारदर्शक ह्या सदरांत घालावयाचे आहेत. कारण सर्वांतून पलीकडचे पदार्थ दिसत नसले तरी प्रकाश कमीजास्त प्रमाणांत त्यांतून पार जात असतो, ज्यांतून प्रकाश मुळींच पार जात नाही तेच अपारदर्शक मानावयाचे.

वक्रीभूत होऊन लंबरेषेशी (Normal शी) कोन करून पुढें सरळ जातो. रानावर हवेंतून तिकिस किरण पडला म्हणजे तो तसाच सरळ न जातां



एकेरी वक्रीभवनाच्या स्पष्टीकरणाचें चित्र.

B A हा पतनकिरण (Incident ray) आहे. A C हा वक्रीभूत-किरण (Refracted Ray) आहे. D A E ही लंबरेषा (Normal) आहे.

$$\text{पतनकोन} - \frac{x-x'}{y-y'} = \text{वक्रीभवनदर्शक}$$

$$\text{वक्रीभवन कोन} - \frac{x-x'}{y-y'} = (\text{Refractive Index})$$

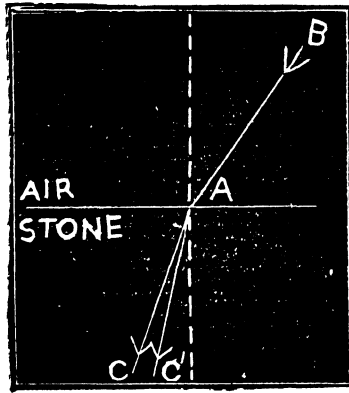
पतनकोन व त्याचा पुढें झालेला वक्रीभवन कोन यांच्या गुणोत्तराला^१ वक्रीभवनदर्शक (refractive index) म्हणतात. पतनकोन बदलला म्हणजे कमी किंवा जास्त झाला तर त्या मानानेंच वक्री-भवनकोनही कमी किंवा जास्त होत असल्यानें त्याचें गुणोत्तर कायम राहतें. हें प्रमाण

^१ एका संख्येला दुसऱ्या संख्येनें भागिलें म्हणजे गुणोत्तर निघतें. पृष्ठावरील आकृती पहा.

$$\frac{\text{एक्स} - \text{एक्स}'}{\text{वाय} - \text{वाय}'} = \frac{x - x'}{y - y'}$$

गुणोत्तर अथवा वक्रीभवनदर्शक अंक.

एकाच जातीच्या रत्नासंबंधी नेहमी कायम राहातें. कधीच बदलत नाही. दुसऱ्या जातीच्या रत्नाचेंही अशाच रीतीनें गुणोत्तर काढून त्याचाही वक्रीभवनदर्शक काढतां येतो. असें सर्व रत्नांच्या वक्रीभवनदर्शकांचें कोष्टक तयार केलेलें आहे. ह्यामुळे तो दर्शक पाहून रत्ने ओळखितां येतात. ह्याकरितां वक्रीभवन-मापक (Refractometer) या नांवाचें यंत्र मिळतें. प्रत्येक रत्नाचा वक्रीभवनदर्शक अंक पाहून वक्रीभवन-मापकाच्या साह्यानें रत्ने ओळखावीं.



दुहेरी वक्रीभवनाच्या स्पष्टीकरणाचें चित्र.

B A हा पतनकिरण (Incident Ray)

AC' } हे वक्रीभूत किरण.

AC } (Refracted Rays.)

कित्येक रत्नांना एकाहून अधिक वक्रीभूत किरण असतात असें आढळून येतें. घनाकार (Cubic system) पद्धतीनें स्फटिकीभूत होणारीं हिरा, चुनडी इत्यादि रत्ने आणि ज्यांना स्फटिकाकार नसतो अशीं ओपल वगैरे आणि रांध्याची केलेली कृत्रिम वगैरे रत्ने ह्यांतून किरणाचें एकेरी वक्रीभवन होतें म्हणजे त्यांतून एकच वक्रीभूत किरण बाहेर पडतो. ह्या

रत्नांस एकेरी वक्रीभवन करणारी रत्ने म्हणतात. पण बाकीच्या पांच पद्धतीं (System) प्रमाणें स्फटिकरूप झालेल्या रत्नांवर पडलेला प्रकाश-किरण भंग पावून त्याचे एकाच्या ऐवजीं निदान दोन तरी वक्रीभूत-किरण बाहेर पडतात; व निरनिराळ्या रस्त्यानें जातात. म्हणून त्यांचे वक्रीभवनदर्शकही एकाहून जास्त होतात. ह्याप्रमाणें स्फटिकीभवनाच्या प्रकारावर हा प्रकाशाचा धर्म अवलंबून आहे हें स्पष्ट होतें. एकाहून जास्त किरण ज्या रत्नांतून बाहेर पडतात त्यास दुहेरी वक्रीभवन करणारी रत्ने म्हणतात. अशा रत्नांतून एकादा पदार्थ पाहिला तर एकाऐवजीं दोन दिसतात. शुद्ध आइसलंड स्पार मधून असे स्पष्ट दोन आकार दिसतात.

दुहेरी वक्रीभवन दाखविणारी आकृतिही वर दिली आहे.

लटिकेचा (Calcite चा) आइसलंड स्पार म्हणून एक स्वच्छ पारदर्शक पदार्थ असतो. त्याला फोडावा आणि त्याच्या तुकड्यांतून कागदावर काढून ठेवलेली एक फुली पहावी तर एका फुलीच्या ऐवजीं पहिल्या फुलीच्या जागेजवळच दोन ठिकाणीं दोन फुल्या दिसूं लागतात. हा आइसलंड स्पार स्वतःच्या आंसाभोवतीं फिरवूं लागलें आणि त्यांतून त्या फुल्या पहात राहिलें तर एक फुली दुसऱ्या फुलीभोवतीं फिरूं लागते असें दिसतें. आइसलंड स्पार फिरवीत असतां व त्यांतून फुल्या पहात असतां असें आढळून येतें कीं, कित्येक परिवलनाचे (Rotationचे) वेळीं त्या फुल्या पहिल्यापेक्षां दूर गेलेल्या आहेत. हाच आइसलंड स्पार जर एका विशिष्ट दिशेनें तोडून त्याचा पृष्ठभाग गुळगुळीत केला आणि त्याच्यांतून कागदावर काढून ठेविलेल्या फुलीकडे पाहिलें तर आपणास फक्त एकच फुली दिसते. दोन झालेल्या दिसत नाहींत. ह्याचा अर्थ असा कीं ह्या विशिष्ट दिशेनें हा स्पार एकेरी वक्रीभवन करणारा असतो. पाहण्याच्या दिशेला प्रकाश-अक्ष (Optical axis) म्हणतात. चतुष्कोन (Tetragonal) आणि षट्कोन (Hexagonal) पद्धतीनें स्फटिकीभूत होणाऱ्या रत्नांना असा प्रकाश-अक्ष एक असतो आणि तो अशा रत्नांच्या मुख्याक्षाशीं समांतर असतो. ह्या रत्नांस युनि-अॅक्सिअल (Uni-axial) म्हणतात. बाकीच्या तीन पद्धतीनीं म्हणजे

आर्थो-ह्यांभिक, मोनोक्लिनिक व ट्रायक्लिनिक ह्या पद्धतीनीं स्फटिकीभूत होणाऱ्या रत्नांस दोन प्रकाश-अक्ष असतात. ह्या रत्नांस बाय-ऑक्सिएल (Bi-axial) म्हणतात.

इमिटेशन रत्नें आणि घन पद्धतीनें स्फटिकीभूत होणारीं रत्नें हीं ताणाच्या (स्ट्रेन strain च्या) स्थितीत असतां कित्येक वेळां दुहेरी वक्रीभवन दाखवितात. हा अपवाद आहे. दुहेरी वक्रीभवन दाखविणाऱ्या रत्नाचें दुहेरी वक्रीभवन कित्येक वेळां नुसत्या डोळ्यांनीं स्पष्ट दिसत नाहीं. वज्र-भासीयाचें दुहेरी वक्रीभवन फार जोराचें असतें. ह्यामुळें तें दुर्बिणीच्या बाह्यगोल कांचेनें दिसतें. पण सर्वांचे रंग इतके स्पष्ट नसतात. अशा वेळीं रिफ्रॅक्टोमीटर यंत्राचा उपयोग करावा लागतो. त्यानें दुहेरी वक्रीभवन समजतें आणि रत्नाची ओळख पटते. पण या यंत्राची किंमत बरीच असल्यानें गरीब व्यापाऱ्यास बाळगतां येणें कठीण पडेल, म्हणून निदान मोठ्या व्यापाऱ्यांनीं तरी तें अवश्य जवळ बाळगावें.

पैलू पाडलेल्या रत्नाची परीक्षा करण्याची एक साधी व सोपी रीत :—पैलू पाडलेलें एक रत्न उन्हांत ठेवा आणि त्यापासून थोड्याच इंचावर एक अपारदर्शक पांढरें कार्ड सूर्याच्या बाजूला असें घरा कीं त्यावर त्या रत्नाचा कवडसा पडावा. जर हें रत्न एकेरी वक्रीभवन करणारें म्हणजे हिरा, चुनडी, ग्लास ह्या जातीचें असेल तर त्या कार्डावर पडणाऱ्या कवडशांत रत्नाच्या प्रत्येक पैलूची एकेकच प्रतिमा दिसेल. जर हें रत्न दुहेरी वक्रीभवन करणारें म्हणजे कांचमणि, पुष्पराग, तोरमल्ली, वगैरे जातीचें असेल तर प्रत्येक पैलूच्या दोन दोन प्रतिमा दिसतील. जर रत्नाला तेथून हालवून जरा दूर ठेविलें तर ह्या दोन्ही प्रतिमाही एकदमच हाटून दूर जातील. विलग होणार नाहींत. हा अगदीं सोपा प्रयोग आहे. जर एकाद्यानें हिरवा खडा खरी पाच म्हणून आणून दाखविला तर ती खरी कीं खोटी हें पाहण्याकरतां ती उन्हांत ठेवावी व त्याची प्रतिमा पांढऱ्या कार्डावर पाडवावी. जर त्यावर दोन प्रतिमा पडल्या तर तो खडा खऱ्या पुाचेचा आहे असें समजावें. जर तो खडा हिरव्या कांचेचा असला तर त्याची एकच प्रतिमा पडेल; कारण कांच

दुहेरी वक्रीभवन करणारी नाही. ह्याच प्रयोगानें खरें माणिक, तांबड्या चुनडीपासून, बनावट माणकापासून अगर लालड्यापासून ओळखतां येतें. कारण दुहेरी माणिक आणि बनावट माणिक, चुनडी व लाल एकेरी वक्रीभवन दाखविणारीं रत्ने आहेत. हा प्रयोग आंगठीत बसविलेल्या रत्नांचाही करतां येतो. पण रत्नांचा रंग फार गहिरा असला तर त्याचा कवडसा पुरता झगझगीत पडत नसल्यानें ह्या तऱ्हेनें पारख करतां येत नाहीं. अशा वेळीं पांढरें कार्ड रत्नाच्या पलिकडे घरावें आणि सूर्य प्रकाशाला रत्नांतून कार्डावर येऊं द्यावें व मग हे प्रकाशाचे ठिपके एकेरी आहेत कीं दुहेरी आहेत हें पाहून पारख करावी.

द्विवर्णत्व, त्रिवर्णत्व

दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांपैकीं कांहीं रत्नांचा आणखी एक धर्म द्विवर्णत्व दाखविणें हा आहे. ह्या रत्नांत वक्रीभवन होऊन एका शुभ्र किरणाचे दोन भाग झाल्यानंतर ते रत्नांच्या निरनिराळ्या भागांतून जाते वेळीं हे निरनिराळे भाग पृथक्भूत सप्तरंगांपैकीं एकाच प्रकारचे रंग शोषित नसून निरनिराळे रंग शोषण करून घेतात. ह्यामुळे त्या पृथक्भूत किरणाचे रंग बाहेर टाकलेल्या रंगानुरूप निरनिराळे होतात. ह्या धर्मास द्विवर्णत्व (Dichroism) असें म्हणतात. हा धर्म दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या शुभ्र वर्णांच्या रत्नांत नसतो. दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रंगीत रत्नांत मात्र असतो. हा धर्म ज्या रत्नांत मोठ्या प्रमाणांत असतो त्या रत्नांचें द्विवर्णत्व नुसत्या डोळ्यांनींही दिसतें. पण हा धर्म सूक्ष्म प्रमाणांत असल्यास तो पाहाण्यास यंत्राचें सहाय्य घ्यावें लागतें. ह्या यंत्रास डायक्रोस्कोप म्हणतात. ह्या यंत्रांत एकेरी वक्रीभवन करणारे रत्न ठेविलें तर त्याच्या दोन प्रतिमा दिसतात; पण त्या निरनिराळ्या रंगाच्या नसतात. पण दुहेरी वक्रीभवन करणारे रंगीत रत्न ठेविलें तर त्याच्या दोन प्रतिमा अगदीं स्पष्ट निरनिराळ्या रंगाच्या दिसतात. मात्र प्रकाश-अक्षाच्या दिशेनें न पाहतां तो टाळून दुसऱ्या दिशेनें पाहिले पाहिजे. पाहातांना आपणास असे निरनिराळे दोन रंग दिसत नसले तर आपण प्रकाश-अक्षाच्या दिशेनें पाहात आहों

असें समजावें आणि रत्न फिरवून फिरवून त्याकडे पाहावें म्हणजे दोन निरनिराळे रंग स्पष्ट दिसतात.

एकेरी वक्रीभवन करणारीं रत्नें म्हणजे घन-पद्धतीनें स्फटिकीभूत होणारीं रत्नें (हिरा हा एकेरी वक्रीभवन करणारांत येतो) आणि इमिटेशन रत्नें हीं द्विवर्णत्व दाखवीत नाहीत, ह्यामुळे हीं रत्नें डायक्रोस्कोपच्या सहाय्यानें तांबडतोत्र निवडून काढतां येतात. म्हणून तांबडी तोरमल्ली आणि तांबडी चुनडी ही परीक्षकरतां आली असतां त्यांची परीक्षा ह्या यंत्रानें तांबडतोत्र बिनचूक होते. कारण तोरमल्ली स्पष्ट द्विवर्णत्व दाखविणारी असल्यानें ह्या यंत्रानें तिच्या दोन निरनिराळ्या रंगाच्या प्रतिमा स्पष्ट दिसतात. पण चुनडी एकेरी वक्रीभवन करणारी असल्यानें तिच्या प्रतिमा निरनिराळ्या रंगाच्या नसतात. त्या एकाच रंगाच्या दिसतात. द्विवर्णत्व दाखविणाऱ्या रत्नांचे दोन रंग कोणकोणते असतात ह्याचें कोष्टक वोडिक्स साहेबांनीं आपल्या रत्नांवरील पुस्तकांत दिलें आहे. त्यावरून पाहिलें असतां एकाच रंगाचीं रत्नें ओळखून काढण्यास मदत होते. उदाहरणार्थ तांबड्या माणिकाचे द्विवर्णांचे दोन रंग जांभळट व किरमिजी असे असतात; पण तांबड्या रंगाच्या तोरमल्लीचे रंग संत्र्यासारखा लाल व गुलाबाच्या फुलासारखा लाल असे असतात. त्यावरून लाल माणिक व लाल तोरमल्ली हीं एकमेकांपासून निराळीं करतां येतात. द्विवर्णत्व दाखविणारीं रत्नें फार नाहीत. त्यांचा तक्ता परिशिष्टांत दिला आहे.

दोन अक्ष असणाऱ्या रत्नांत तीन मुख्य रंग असल्यामुळे त्यांना त्रिवर्ण व कधीं कधीं बहुवर्ण रत्नेंहि म्हणतात. हे त्रिवर्णत्वहि डायक्रोस्कोपमध्ये दिसतें. अशा दोन अक्ष असणाऱ्या (Bi-axial) रत्नांत मुख्य प्रकाशाच्या तीन दिशा असतात. त्या तिन्ही दिशांस निरनिराळ्या दोन प्रतिमाच दिसत असल्यामुळे हेही द्विवर्णत्वच मानण्यास काहीं हरकत नाही.

हे डायक्रोस्कोप यंत्र अगदीं साधें आहे. जॉन मास्टिनसाहेब त्याचें खालीं लिहिल्याप्रमाणें वर्णन करतात:-एक आइसलंड स्पारचा त्रिपार्श्व अगदीं रंगरहित करतात. असा केला म्हणजे त्यांतून पार निघणारा प्रकाश-

किरण अगदी रंगरहित राहातो. हा त्रिपार्श्व एका लहान पितळी नळीत बसवितात. ह्या नळीच्या एका टोंकाला बाह्यगोल भिंग असतें व दुसऱ्या टोंकाला बारीकसें चौरस छिद्र ठेविलेले असतें. दुर्बिनीची बाह्यगोल कांच बसविण्याकरतां जितकी बारकाई करून कांच बसविण्याची जागा तयार करतात. तितकी बारकाई करून त्या चौरसाचे कोनसुद्धां सर्व अगदी पूर्णपणें टोंकदार केलेले असतात. ह्या चौकोनाकडे त्या पितळी नळीच्या भिंगांतून पाहिलें असतां ह्या एका चौरसाचे दोन चौरस दिसतात. ह्या यंत्रांत रत्न तपासण्याचें असलें म्हणजे त्या चौरसासमोर रत्न ठेविलें कीं त्या रत्नाच्या दोन स्पष्ट अशा रंगीत प्रतिमा दिसूं लागतात. ह्यामुळें रंग समजतो एवढेंच नव्हे तर त्यांवरून हें रत्न एकेरी वक्रीभवन करणाऱ्या वर्गातील आहे कीं दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांपैकी आहे हेंही कळतें. जर एकाच रंगाच्या दोन्ही प्रतिमा असल्या तर तें रत्न एकेरी वक्रीभवन करणाऱ्या घनाकार पद्धतीनें स्फटिकीभूत होणारें आहे असें ठरतें. कारण अशा रत्नांच्याच सारख्या रंगाच्या प्रतिमा दिसतात. जर प्रतिमा निरनिराळ्या रंगाच्या दिसल्या तर तें रत्न दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांपैकी आहे असें होतें. मग कोणते रंग दिसले हें पाहून हें रत्न अमूक आहे असें ठरवितां येतें. कारण अमुक रत्नाचे अमुक रंग दिसतात हें ठरलेले आहे.

डायक्रास्कोपची किंमत सात पासून दहा डॉलर पर्यंत असते. पाच, माणिक, इन्द्रनील, तोरमली, कुंझाइट, अलेक्झांड्राइट हीं रत्नें ओळखून काढण्यास ह्या यंत्राचा फार चांगला उपयोग होतो. कारण हीं रत्नें द्विवर्णत्व अगदीं स्पष्टपणें दाखवितात.

ध्रुवीभवन (Polarization)

ग—इंधकाच्या-(Ether) च्या लहरींमुळें अथवा कणांमुळें नेत्रेंद्रियांस प्रकाश प्रतीत होतो त्यांना कांहीं नियमित स्थितींत आणल्यानें दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांच्या प्रकाशाचेंच ध्रुवीभवन होतें. म्हणजे दोन ध्रुवां-सारखे त्याचे दोन भाग होतात. घनपद्धतीनें स्फटिकीभवन होणाऱ्या म्हणजे एकेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांच्या प्रकाशाचें आणि काचेच्या प्रकाशाचें ध्रुवीभवन होत नाही. दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांपैकीं कांहीं रत्नें

अशीं आहेत कीं तीं आपल्या रंगांत पालट करून त्यांस दोन ध्रुवां प्रमाणें बनवितात व त्यांस निरनिराळे धर्म व रंग देतात. ही क्रिया दाखविण्यास डायक्रोस्कोप या यंत्राची मदत होते. त्यांत दुहेरी वक्रीभवन करणारा आइस्लंड स्पार बसविलेला असतो; व त्याच्या योगानें त्यांतून जाणाऱ्या सर्व प्रकाशाचें ध्रुवीभवन होतें.

प्रकाशाचें ध्रुवीभवन झालें म्हणजे तोच प्रकाश पुनः त्याच रत्नांतून बाहेर दवडतां येत नाही. पॉलिश केलेल्या भागावर प्रकाश किरण कांहीं विविक्षित कोन करून पडला म्हणजे त्यास निराळेच गुणधर्म येतात. आणि अशा प्रकाशास ध्रुवीभूत प्रकाश म्हणतात.

दुहेरी वक्रीभवन होतांना पृष्ठभागावर पडलेल्या एका किरणाचे फुटून दोन किरण होतात त्यांपैकी एक किरण नेहमींच्या वक्रीभवनाप्रमाणें कोन करून निघालेला असतो. त्याचा वक्रीभवन कोन एकाच जातीच्या रत्नांत नेहमीं कायम प्रमाणांत असतो. ह्या किरणास नेहमींचा किरण म्हणूं. दुसऱ्या किरणाचें हें प्रमाण कायम नसतें त्यास विशेष किरण म्हणूं. ह्या दोन्ही प्रकारच्या किरणांचा प्रकाश ध्रुवीभूत होत असतो.

बहुवर्णत्व.

प्रकाशाचें ध्रुवीभवन झाल्यानें सर्व प्रकाश द्विधा अगर त्रिधा होऊन रत्नांतच राहातो आणि तो निरनिराळ्या अंगानें पाहिला असतां कांहीं नुसत्या दृष्टीनेंही दिसतो. पण वक्रीभवन कोन फार सूक्ष्म असल्यास निकालोच्या यंत्रानें अगर तोरमल्लीच्या रत्नांच्या अथवा अशाच दुसऱ्या विशेष प्रकारच्या पद्धतीनें तयार केलेल्या सूक्ष्मदर्शक यंत्राच्या साहाय्यानें स्पष्ट दिसतो.

निरनिराळ्या दिशांनीं येणारे प्रकाशकिरण पारदर्शक स्फटिकांकडून भिन्नभिन्न प्रमाणांत अपशोषिले जाऊन बाकीचे शिल्लक राहातात. आणि ते पाहणाऱ्या नेत्रांत शिरून बहुवर्णत्वाचा चमत्कार दाखवितात. हा धर्म त्यांत निग्रहणामुळे (Interference) येतो. हा धर्म असणारीं रत्नें तद्व्यतिरिक्त रत्नांपासून ह्या कारणानें ओळखलीं जातात. कारण कांहीं नियमित रत्नांतच हें प्रकाशाचें ध्रुवीकरण करण्याचें सामर्थ्य असतें. त्या

योगानें एकाच रत्नांत अनेक रंग दृष्टीस पडतात. ह्याच्या योगानें कित्येक रत्नांस अप्रतिम सौंदर्य व मोहकता येते. असें रत्न एका बाजूनें पाहिलें म्हणजे एका रंगाचें दिसतें तेंच दुसरे बाजूनें (निराळा कोन करून) पाहिलें तर अगदीं निराळ्याच रंगाचें दिसतें. रत्नाच्या प्रत्येक पैलू-वरून पहात गेलें असतां जसजसा पाहण्याचा कोन बदलत जातो तसतसे ह्या रत्नाचे पालटत जात असलेले तेजःपुंज आणि गहिरे रंग दृष्टिसमोरून झळकत जात असतां आपण क्यालिडोस्कोपच (चित्रविचित्र रंग आणि आकार दाखविणारें चार क्रीडनक म्हणजे खेळणें) फिरवून पाहात आहों काय असा भास होतो. साध्या प्रकाशांत रत्न अगदीं स्वच्छ म्हणजे रंगहित असलें तरी ध्रुवीभूत प्रकाशाच्या साहाय्यानें पाहिलें असतां अशा मनोहर निरनिराळ्या रंगाचें दिसतें.

ह्या प्रकाराला प्लिओक्रोइझम (pleochroism) म्हणजे बहुवर्णत्व म्हणतात. आणि निरनिराळ्या बाजूनीं निरनिराळ्या कोनांतून अगर पैलूंंतून साध्या प्रकाशांत अथवा ध्रुवीभूत प्रकाशांत जीं रत्नें असा चमत्कार दाखवितात त्यांस बहुवर्णत्व दाखविणारीं रत्नें म्हणतात.

ज्या रत्नांचा द्विवर्णत्व दाखविण्याचा धर्म दांडगा असतो अशीं रत्नें यंत्राच्या साहाय्यावांचून आपला धर्म उघड स्पष्ट दाखवितात. उदाहरणार्थः—पिवळा लसण्या एका बाजूला उदी रंगाचा दिसतो तर दुसऱ्या बाजूला हिरवट पिंगट दिसतो. शेंदरी पुखराज एका दिशेनें गुलाबी दिसतो आणि दुसऱ्या दिशेनें पिवळा दिसतो. ज्याचे अनेक वर्ण नुसत्या डोळ्यांनीं दिसत नाहीत अथवा हे फरक फार नाजूक असतात त्यावेळीं यंत्राचा चांगला उपयोग होतो.

त्रिपार्श्वानें शुभ्र किरणांचें पृथक्करण होतें त्याचप्रमाणें ओपल म्हणजे शिवघातुसारखीं कांहीं रत्नेंही त्याचें पृथक्करण करतात ह्यामुळे त्रिपार्श्व-प्रमाणें त्यांत अनेक रंग चमकतात. ओपलाच्या अनेक जाती आहेत. त्यापैकी प्रेशस ओपल अथवा नोबल ओपलचें तेज विशेष असतें. ह्यांत तेजस्वी आणि क्षणांत बदलणाऱ्या निळ्या, हिरव्या, पिवळ्या आणि लाल रंगाच्या लकेरी मारतात. ह्याच प्रकाराला रंगाची लीला (Play of

colours) असें म्हणतात. आणि ओपलच्या ह्या असाधारण घर्मास ओपलेसन्स हें विशेष नांव देण्यांत आलें आहे. चंद्रकांतासारख्या स्वच्छ पांढऱ्या कित्येक रत्नांतही रंगाच्या चमका मारतात. परंतु ह्या ओपल-मध्ये जो अग्नीसारख्या तेजाचा भास होतो तो दुसऱ्यांत नसतो. ओपलची अग्निपुलक (fire opel) म्हणून दुसरी जात आहे तीत रंगाच्या लीला नसतात. पण ह्याचा रंग तांबूस अगर संत्र्याच्या रंगाप्रमाणें असल्यामुळे आगीसारखी रंगाची चमक त्यांत खुलून दिसते. ओपल ह्या रत्नांत अशा चमत्कारिक चमका मारत असल्यामुळे अशा उत्कृष्ट रत्नाला फार किंमत येते. प्राचीन इतिहासप्रसिद्ध अर्शा कांहीं ओपल रत्ने आहेत. त्यापैकी एक नोनीयसपार्शी होतें. तें त्याजपार्शी मार्क अँटिनीनें मागितलें, परंतु त्यानें तें न देतां वनवास पत्करला. त्याची आजची किंमत एक लक्ष पौंडाहूनहि अधिक होती असें म्हणतात. कमीजास्त प्रमाणांत रंगाच्या लीला-ओपलेसन्स असणारीं दुसरींही कांहीं रत्ने आहेत. आणखी कांहीं रत्ने रंगाचा बदल करणारी आहेत. परंतु रंगाची लीला-ओपलेसन्स आणि रंगाचा बदल याचा घोटाळा करतां कामा नये. कारण हीं दोन्ही जरी निराळीं नसलीं तरी त्यांत फरक आहे. रंगाची लीला-ओपलेसन्स ही स्थान बद्ध असते आणि तेथेंच त्याचे तेजस्वी बिंदु अथवा रंगीत प्रकाशाच्या आगीसारख्या लकेरी दिसतात व त्या एकसारख्या धगधगत असतात. रंगाचा बदल अथवा फेरपालट हा रत्न फिरविल्यावर होतो. लाब्रेडोराइट हें रत्न असें आहे. हें फिरविलें असतां त्याचे रंग पालटतात. स्वर्णवैदूर्याची एक जात अलेक्झँड्राइट म्हणून आहे. ह्या जातीचे रत्न दिवसाच्या प्रकाशांत हिरवें दिसतें, तेंच कृत्रिम प्रकाशांत त्यांतही विशेषतः ग्यासच्या प्रकाशांत रास्पबेरीप्रमाणें लाल दिसतें. कांहीं रत्ने हालविलीं असतां त्याचे रंग पालटतात. हे रंग पालटून त्यांचे ऐवजीं त्यांचे पूरक रंग येतात. हिरवा रंग असल्यास त्याचे जागीं त्याचा पूरक रंग तांबडा, पिवळा असल्यास त्याचे जागीं जांभळा, निळ्याच्या जागीं नारिंगी इत्यादि. पाहाण्याची दिशा बदलली किंवा रत्न फिरवूं लागलें म्हणजे हे रंग रत्नाच्या पृष्ठभागावर एकामागून एक नाचूं लागतात. पण रंगाची लीला दिसण्याकरितां असें कांहीं करावें लागत नाहीं. रत्न निश्चल परंतु नुसत्या निश्चल दृष्टीनें

पाहाण्यांतही नेत्रांतील रुधिराभिसणाचें जें चलनवलन होतें व पापण्या आणि बबुळ यांच्या ज्या स्वाभाविक हालचाली होतात तेवढ्या निमिषो-न्मेषानेंच अशा रत्नांत रंगांचें नृत्य व चमक आणि अग्नीप्रमाणें स्फुल्लिंग दिसू लागतात.

हें रंग रत्नांच्या अंतर्भागांत दिसतात. पण इन्द्रधनुष्याप्रमाणें दिसणारे रंग (Iridescence) रत्नांच्या बहिर्भागावर दिसतात. ह्या रंगांचें कारण रत्नांतच स्वाभाविकपणें अथवा तें रत्न आपटल्यामुळें अत्यंत सूक्ष्म अशा कोळ्याच्या जाळ्याप्रमाणें चिरा पडतात हें होय. ह्या भेगा इतक्या सूक्ष्म असतात की त्या बऱ्याच जास्त शक्तीच्या सूक्ष्मदर्शक यंत्रांनै पाहिल्या. शिवाय दिसत नाहींत. अशा भेगांमुळें प्रकाशाचें निग्रहण व वक्रीभवन होऊन त्रिपार्श्वाप्रमाणें परिणाम होतो आणि त्यामुळें हे इन्द्रधनुष्यासारखे रंग दिसतात. कित्येक कांचमण्याला असे रंग दिसतात ते त्यांस स्वाभाविक भेगा असल्यामुळें दिसतात; पण कित्येक वेळां असा परिणाम घडवून आणणेकरतां कित्येक हलक्या रत्नांना गरम करून अथवा रासायनिक द्रव्यांत बुडवून किंवा विजेचा प्रयोग करून त्यांत अशा असंख्य सूक्ष्म भेगा उत्पन्न करतात आणि ह्या रत्नांस हा इन्द्रधनुष्यासारखा रंग आणतात. कारण असे रंग दिसल्यानें त्याची किंमत वाढते. कधीं कधीं असा रंग अभ्रकावर दृष्टीस पडतो तो अशाच भेगांचा परिणाम असतो. चंद्रकांत मण्यांत मृदु फिकट अस्मानी रंग खेळतांना दिसतो तो विशेष प्रकारच्या अंतर्गत स्फाटिक रचनेमुळें दिसतो. लसण्यामध्ये फिरता दोरा दिसतो तोहि विशेष रचनेचा परिणाम आहे. कांहीं रत्नांत नक्षत्रासारखी चमक दिसते. हा परिणामहि अंतर्गत रचनेचा आहे. अशा ह्या रचनां-मुळें प्रकाशाचें निग्रहण होतें आणि त्यामुळें हे चमत्कार दिसतात. मोत्यां-वरील मोहक व मृदु तेज हें मोत्यांच्या विशिष्ट रचनेमुळेंच त्यांजवर पडलेल्या प्रकाशाच्या वक्रीभवना, परावर्तना व निग्रहणा यांनीं आलेलें असतें.

कित्येक रत्नांत फायर (अग्नि) म्हणून ज्या रंगाच्या तेजाच्या लकेरी मारतात त्या शुभ्र किरणांच्या वर्णभंगाचा परिणाम आहे. हिऱ्यांत हा फार असतो. ह्याचें कारण त्याजवर पडलेल्या पांढऱ्या प्रकाश

किरणांचें पृथक्करण प्रथमतः त्यांच्या अंतर्भागीं फार विस्तृत भागावर होतें. व तसेंच बाहेर पडल्यावरही विस्तृत भागावर राहातें. ह्यामुळे प्रत्येक जातीच्या रंगाच्या पट्ट्या विस्तृत पडून झळकतात म्हणून त्यांतून तांबड्या, पिवळ्या, हिरव्या वगैरे रंगाच्या तेजस्वी लकेरी मारतात. ह्या रत्नाच्या ह्या गुणामुळे तो पांढऱ्या रंगाच्या अनेक रत्नांतून ओळखून काढतां येतो. असा विस्तृत वर्णभंग स्फीन रत्नाचा (हें रत्न नेहमीं पिवळसर पण कधीं कधीं हिरवट अगर तपकिरी रंगाचें असतें) आणि डेमन्टॉइड अथवा अन्डाडाइट ह्या चुनडीचाही असतो. म्हणून हा असून जर त्यांचे बाकीचे गुणधर्म न जुळतील तर तें रत्न कांचेचें असल्याचा फार संभव उत्पन्न होतो.

इ-कित्येक पदार्थांच्या अंगीं विशेष स्थितींत प्रकाश पाडण्याचा धर्म असतो. हा धर्म कांहीं नवस्पति व कांहीं प्राणी ह्यांमध्ये असल्याचें आपण पाहातो. खद्योत अथवा काजवा ह्याचा प्रकाश आपल्या परिचयाचा आहे. अरण्याशीं सहवास असलेल्या लोकांस रात्रीं कांहीं वनस्पति प्रकाशतात हें माहीत असतें. कांहीं जातीचे मासे कुजत असतां प्रकाशमान होतात. समुद्रकांठीं कोळी लोक मासळी मारून त्यांच्या माळा सुकत ठेवितात त्या रात्रीं प्रकाशतात. स्ट्रॉन्शियमचा सल्फाइड यांसारखे कित्येक पदार्थ पूर्वीं उन्हांत तापवून नंतर त्यांस अंधारांत नेलें म्हणजे प्रकाशमान दिसतात.

कित्येक रत्नांचेंही असेंच आहे. हिरा सूर्यप्रकाशांत तापवून नंतर अंधारांत नेला तर कांहीं सेकंद सौम्य प्रकाश देतो. हिरा जितका जास्त स्वच्छ तितका त्याचा प्रकाश जास्त दिसतो व जास्त वेळ टिकतो. कुरु-विंदाचीं रत्नें सूर्यकिरणांत ठेविल्यास त्यांचा तेजस्वी उजेड पडतो. रेवा-मधील याकूतही असेच चकाकतात. हिरा, काचमणि, सुलेमानी पत्थर ह्यांस चोळलें किंवा घांसलें म्हणजेही तीं अंधेरांत लखलखतात. पुष्कराग व दुसरीं कांहीं रत्नें तापविलीं असतां अशींच प्रकाशतात. अरेगोनाइट आणि कुंझाइट रत्न हींसुद्धां पुष्कळ प्रकाशतात.

रान्टजेन प्रकाशकिरणः-ह्या विद्युज्जन्य प्रकाशकिरणांचा शोध प्रो. सी. डब्ल्यू. रान्टजेनसाहेबांनीं सन १८९५ सालीं लाविला. ह्या

किरणांचा रत्नांवर काय परिणाम होतो तो पाहाण्याचे व्यवस्थेरीर प्रयोग जर्मन शास्त्रज्ञ डाल्टर ह्यानीं केलें. कांहीं रत्नें आपल्या अंगांतून ह्या किरणांस जाऊं देतात व कांहीं ह्या प्रकाशाच्यापैकीं कांहीं भाग खाऊन टाकतात.

हिरा, अंबर आणि जेड ह्यांवर हा प्रकाश पडला असतां हीं रत्नें पूर्णपणें पारदर्शक होतात. ह्यामुळें काचेच्या, रांध्याच्या व इतर शुभ्रवर्णीं रत्नांपासून हिरा ओळखतां येतो. प्रकाशानें कुचंदाचीं रत्नें, माणिक व इन्द्रनील हीं जवळ जवळ पारदर्शक होत असल्यामुळें हीं सुद्धां ह्याच्या रंगासारख्या रंगाच्या इतर रत्नांतून ओळखतां येतात. ओपल आणि लसण्या हीं ह्या प्रकाशानें कमी पारदर्शक होतात. कांचमण्याच्या सर्व जातींचीं रत्नें, चंद्रकांताचीं रत्नें, पुष्कराग आणि स्पोड्रमीन हीं रत्नें ह्या प्रकाशानें अर्धपारदर्शक होतात. पेरोज, तोरमल्ली, पेरिडॉट आणि आपेटाइट हीं ह्या प्रकाशांत बहुतेक अपारदर्शक राहातात. लाल पुलकमणि, वैडूर्य, शिकान, ग्लासाचीं अथवा रांध्याचीं केलेलीं सर्व इमिटेशन रत्नें अगदीं अपारदर्शक राहातात.

कुंझाइट हें रत्न स्पोड्रमीनचा पोटभेद आहे. थोडे मिलिग्राम रोडियम ब्रोमाइडच्या सान्निध्यांत ह्या रत्नावर रांटेजन किरणांचा मारा केला असतां ह्या रत्नाला सुरेख पिवळा रंग चढतो व रोडियम दूर केला तरी कांहीं सेकंद तो कायम राहातो. रोडियममधील किरणांच्या योगानें हिऱ्याचेहि रंग बदलतात. सर बुइल्यम क्रूक्स ह्यांनीं पिवळ्या रंगाचा हिरा ह्या किरणांमध्ये ठेविला होता. ७१८ दिवसांनीं तो हिरा निळसर रंगाचा झाला. प्रोफेसर वारेड्स ह्यांच्या प्रयोगांत रंगहीन माणिक कांहीं आठवड्यांनीं पिंगट रंगाचें व नंतर कांहीं दिवसांनीं गुलाबी रंगाचें झालें. इन्द्रनील मण्याचा रंगही असाच बदलला. अशा कृत्रिम रीतीनें रंगविलेले हिरे २०० ते ३०० सेंटीग्रेड उष्णतेपर्यंत तापविले असताहि त्यांचे रंग नाहीसे होत नाहीत. परंतु पुष्कळ वेळां इतक्या उष्णतेनें हिऱ्याचे नैसर्गिक रंग नाहीसे होतात.

रोडियमचें रत्नांवरील परिणामासंबंधीं कांहीं माहिती रत्नप्रदीप खंड १, पृष्ठे १६८ व १६९ येथें दिलेली आहे तीहि ह्याबरोबर वाचणें सोईचें होईल.

प्रकरण १५ वें

मोती सुधारण्यासंबंधी

“न जरां यांति रत्नानि, विद्रुमं मौक्तिकं विना” म्हणजे पोंवळीं व मोतीं या रत्नांखेरीज बाकीच्या कोणत्याहि जातीच्या रत्नास जुनेपणा येत नाही. तीं नेहमीं नवींच राहतात. असें असल्यामुळे पोंवळीं व मोतीं याखेरीजच्या रत्नांस सुधारण्याचा प्रश्नच उत्पन्न होत नाही. मात्र तीं पच्चीच्या कोंदणाच्या आंगठीसारख्या ठिकाणीं असल्यास त्यांच्या खालच्या छिद्रांतून माती वगैरे सांठते तेवढी काढून टाकिली म्हणजे झालें. विशेषतः ही गोष्ट उजव्या हातांत ज्या आंगठ्या असतात त्यांच्यासंबंधानें घडते. जेवतांना व काम-घंदा करितांना ज्या ज्या पदार्थांशीं हातांतील आंगठ्यांचा संबंध येतो त्या त्या पदार्थांचा मळ अथवा धूळ आंगठ्यांच्या कोंदणाच्या खालच्या भागांत व कडेच्या छिद्रांतून सांठते ती कोरण्यानें अथवा माडाच्या केर-सुणीच्या हिरानें काढून टाकून तो भाग स्वच्छ धुवून टाकून पुसला म्हणजे आंगठीतील रत्न लखलखीत होतें. मात्र एवढेंच कीं सर्व रत्नांस पांढऱ्या स्वच्छ कपड्यानें पुसावें लागतें म्हणजे त्यांचा मजीतपणा जातो. एवढेंच नव्हे तर रत्नावरून पांढरें स्वच्छ वस्त्र चांगलें घासलें म्हणजे त्यांस चांगला तजेला (Polish) येतो.

विशेष सुधारण्याची आवश्यकता असलेल्या या दोन रत्नांपैकी पोंवळें हलक्या जातीचें रत्न आहे. म्हणून तें सुधारण्याच्या भरीस न पडतां नवीनच घेणें परवडतें. तेव्हां राहिलें मोतीं. तें मात्र मौल्यवान असल्यानें विघडल्यावर वापरावयाचें तर त्यास दुरुस्त करून नवेपणा आणावा लागतो. तो कसा आणतात तें आतां आपण पाहूं.

मोत्याला अन्तर्बाह्य झीज येऊन वजन कमी होतें तें वाढविण्यास उपाय नाही. माणसाला वार्धक्यानें आलेलें कार्य जाणें शक्य नाही तसेंच

हैं आहे. फार दिवस वापरल्यामुळे मोत्यांची त्वचा कित्येक ठिकाणी फुटून तुटून जाते. विशेषतः वेजाजवळ हा प्रकार जास्त घडतो. जर बाहेरचा पदर तुटून निघून जाऊन उघडा पडलेला भाग तेजस्वी असेल तर उत्तम धारेच्या बारीक पात्याच्या चाकूने सभोवारची राहिलेली त्वचा कुशल कारागिराकडून काढवावी म्हणजे बहुधा स्वच्छ मोती बाहेर पडते. पण अर्थातच ते आकाराने व वजनाने लहान होतें. बहुधा स्वच्छ मोती बाहेर पडते असे संशयित विधान करण्याचे कारण असे की, जी शिलकी त्वचा काढावयाची तिच्या खाली खुल्या झालेल्या त्वचेच्या तेजाप्रमाणे तेज सर्वत्र सारखे असेलच अशी खाली देतां येत नाही. पण बहुधा तसे असते असे मानण्यास हरकत नाही. छोटे वगैरे असण्याचाही संभव असतो.

मोती वापराने मिळते तो मळ नाहीसा करण्यासाठी करण्याचे कांहीं प्रयोग या पुस्तकाच्या ३२ व्या पृष्ठावर दिले आहेत. त्यांशिवाय समुद्र-फेणानेही मोती साफ करितात. फारच जुने मोती मळाने भरले असल्यास एकदम पाण्यांत भिजत टाकू नये. टाकल्यास खराब होतें म्हणून प्रथम ते कोरडेच तांदुळाच्या कोंड्याने अगर समुद्रफेणाने साफ करावे व नंतर पुनः धुवावे. आणि स्वच्छ कपड्याने चांगले घासावे म्हणजे त्यांस पुष्कळ चांगली तकाकी येते. सन १५५३ साली इराणचे आखातांतील मोत्यांसंबंधाने एक ग्रंथकाराने लिहिले आहे की सडलेले तांदूळ आणि मीठ यानी मोत्यांस स्वच्छता व पालिश आणीत असत. मणिमालेत मोती स्वच्छ करण्याची रीत अशी दिली आहे की थोडे चांगले कांडलेले तांदूळ मडक्यांत घालून त्यांत पाणी घालावे व ते चुलीवर ठेवून जरा कोमट झाल्यावर उतरावे. ह्या पाण्याने स्वच्छ होईपर्यंत मोती चोळून काढावी. पाणी फार गरम असल्यास मोती बिघडेल म्हणून पाणी कोमटच असले पाहिजे. चांगल्या कांडलेल्या तांदुळांबरोबर मोती चांगली चोळली असतां अगदी स्वच्छ होतात. गव्हाच्या कोंड्यानेही जुनी मोती स्वच्छ होतात. गव्हाचा कोंडा पावशेर घेऊन तो दोन शेर पाण्यांत चांगला उकळावा. ते पाणी मंदोष्ण होईपर्यंत निवाल्यावर त्या पाण्याने मळकटलेली मोती हलक्या हाताने चोळून धुवावी. शेवटी स्वच्छ पाण्याने धुवावी म्हणजे साफ होतात.

जुनीं मोतीं धुण्याची सोपी उत्तम पद्धत:—जुनीं मोतीं मोकळीं करून त्यांचा पुनः उपयोग करण्यांत येतो. अशा वेळीं तीं चांगलीं धुतलीं पाहिजेत. मोतीं चांगलीं धुवून स्वच्छ करून वापरल्यानें त्यांचा तजेला व टिकाऊपणा वाढतो. निष्काळजी कारागीर तीं नुसत्या पाण्यांत—फार तर तांदुळांच्या पाण्यांत धुतात; पण तेवढ्यानें तीं पूर्ण स्वच्छ होत नाहीत. तीं रिठ्याचे पाण्यानें धुतलीं असतां स्वच्छ होतात. रिठ्याचा फेंस तळ-हातावर काढावा आणि त्यांत मोतीं ठेऊन बोटांनीं चांगलीं चोळावीं व धुवावीं असें तीन वेळां करावें म्हणजे मोत्यांस चांगला तजेला येतो व त्याचा रंगहि खुलतो. तरी त्यांचीं तोंडें व अंतर्भाग चांगला धुतला जात नाही. म्हणून नंतर तीं मोतीं रेशमाच्या दोऱ्यांत ओंवावीं आणि नंतर त्याचें एक टोक तोंडांत दांतांनीं धरून दुसरें टोक एका हातानें पकडावें आणि दुसऱ्या हातानें मोतीं त्या रेशमाच्या दोऱ्यावर वर खालीं करून घुसळावीं म्हणजे त्याचें तोंड व अंतर्भागहि निर्मळ होतो. ही क्रिया करून मोतीं वापरावीं. तीं अगदीं नव्याप्रमाणें दिसतात.

आणखी एक पद्धत अशी आहे कीं थोडेसें मीठ पाण्यांत विरवावें. मग त्यांत क्रीम ऑफ् टार्टर (हें केमिस्टांकडे मिळतें) आणि तुरटीची पूड मिसळावी. मग हें मिश्रण विस्तवावर उकळावें व खालीं उतरून ठेवावें. मग त्यांत मोतीं भिजवून दोन तळहातांच्या दरम्यान थोड्या पाण्यासह हलक्या हातानें चोळावीं. अथवा वाटल्यास ब्रशनें चोळावीं हातावरील पाणी थंड झालें म्हणजे पूर्वीच्या मिश्रणांतील गरम पाणी पुनः घेऊन पुनः चोळावीं. अशा तऱ्हेनें पुनः पुनः करावें. म्हणजे त्यांचा मळकटपणा निघून जाऊन त्यांस पूर्ववत् तेज येतें. मग तीं मोतीं कोमट पाण्यांत खळबळून काळोख असेल त्या जागीं वाळण्याकरितां तीं पांढऱ्या कागदावर पसरावी. ह्या कृतीनें मोतीं पुनः चांगलीं तजेलदार होतात. फार दिवसांच्या वापरामुळें मळलेलीं मोतीं स्वच्छ करण्याची इंग्रजी तऱ्हा आहे ती :—

हैड्रोजन पर ऑक्साइड
(Hydrogen Per oxide)

१ औंस

सल्फ्यूरिक ईथर
(Sulphuric ether)
ओझोनिक ईथर
(Ozonic ether)

ह्या प्रत्येक द्रव्याचे थोडेसे थेंब

हे मिश्रण तयार करून कांचिचें घट्ट बूच असलेल्या बाटलीत ठेवावें. मोतीं त्यांत फक्त बुडावीत. ह्याहून जास्त मिश्रण बाटलीत असूं नये. त्या बाटलीत मोतीं घालून बूच घट्ट लावून दोन तीन दिवस ती बाटली उन्हांत ठेवावी. ह्या अवधीत मोतीं निर्मळ झालीं किंवा नाहीं ह्याचें निरीक्षण आपण करीत असावें. इतक्या अवधीत तीं चांगली स्वच्छ झालीं नाहीत असें आढळल्यास एक चिमटीभर धुण्याचा सोडा बाटलीत सोडून बाटली चांगली हालवून ती आणखी दोन दिवस उन्हांत ठेवावी. जास्त जुन्या मोत्यांस ओझोनिक ईथर व सल्फ्यूरिक ईथरचे थेंब थोडे जास्त सोडावे. पण सल्फ्यूरिक ईथरचे थेंब फार जास्त होतां कामा नयेत. कारण जास्त झाल्यास मोत्यांचें सौंदर्य बिघडून त्यांवर पांढरे ठिबके उत्पन्न होण्याचा संभव असतो. ह्याचे किती मोत्यांस किती थेंब घालावे हे हलके हलके अनुभवानेंच आपणास अवगत होतें. मात्र प्रथम अंदाजाकरतां एवढें सांगणें अवश्य आहे कीं एक औंस हैड्रोजन पर ऑक्साइडला ३० ते ५० थेंब सल्फ्यूरिक ईथर हें द्रव्य घालावें लागतें. ओझोनिक ईथर याच प्रमाणांत घालावें. मात्र तें थोडें जास्त झालें तरी त्यापासून मोत्यांस नुकसान होत नाही. बाटलीत मोतीं स्वच्छ झाल्याचें दिसतांच त्यांस तीतून काढून ऊन पाण्यांत तयार केलेल्या रिठ्याच्या पाण्यानें किंवा क्यास्टाईल[‡] साबणाच्या भुकटीच्या पाण्यानें तीं चांगली धुवावीं आणि नंतर तीं शमायलेदर^१वर ठेवावीं आणि त्यांवर डायमन्डाईन पॅरॉलिश^१ पावडर नं. १ चें चूर्ण टाकून आणि त्यांत सुमारे १५ मिनिटे त्यांना चांगलें चोळून पॉलिश

‡ क्यास्टाईल साबण हा ऑलिव्ह तेल आणि कॉस्टिक सोडा ह्यापासून तयार केलेला मृदु साबण असतो.

^१ अनेक प्रकारच्या कातड्यांचें व माशाच्या तेलानें मर्दून तयार केलेलें मृदु असें कमावलेलें चामडें असतें.

^२ ही पावडर मुंबईस केमिस्टांकडे मिळते.

आणावें. इतकेंहि करून जर सुंदर तेज आणि पॉलिश आलें नाहीं तर खालील आणखी उपाय करावा तो—उत्तमपैकी ब्रॅन्डी थोडीशी घेऊन तीत १३ टांक मोत्यांस १ ते १३ ग्रेनपर्यंत क्याडमियम आयोडाइड मिसळावें. मोतीं बारीक असल्यास थोडें जास्त मिसळलें पाहिजे. हें मिश्रण वर लिहिल्याप्रमाणेंच कांचेच्या बुचाच्या वाटलींत ठेवून एक ते सहा दिवसपर्यंत जरूरीप्रमाणें उन्हांत ठेवावें. पांढरीं स्वच्छ मोतीं मिश्रणांत घातलीं असल्यास एक दोन दिवसांहून जास्त दिवस त्यांत तीं ठेवूं नयेत. कारण त्यांचा रंग जास्त दिवस ठेवल्यानें पिवळा होण्याचा संभव असतो. ह्याकरतां जपावें. जर शुभ्र रंगाशिवाय इतर मोतीं असून सहा दिवसांत त्यांस चांगलें तेज व रंग आला नाहीं तर काडमियम आयोडाइड आणखी आंत टाकून आणखी कांहीं दिवस उन्हांत ठेवून निरीक्षण करित जावें. मोतीं सामान्य अगर हलकीं असल्यास वाटलींत ठेवून दोन दिवस झाल्यावर तींत एक दोन लिंबाच्या रसाचे थेंब टाकावे. जास्त टाकूं नयेत. वरील दोन्ही प्रकारचीं मिश्रणें एकदां वापरल्यावर फेंकून द्यावीत. पुन्हां मोतीं ठेवणें झाल्यास नवीन मिश्रण वेळेवरच तयार करून उपयोगांत आणीत जावें. वाटल्यांचीं बुचें वातागम्य (air tight) असावीं. मिश्रणांतून मोतीं काढल्यावर पहिल्या मिश्रणाच्या अखेर लिहिल्याप्रमाणें स्वच्छ धुवून डायमंटाईन चूर्णानें चोळून काढावीं.

युरोपियन लोकाना शुभ्र रंगाचीं मोतीं आवडतात. त्याचप्रमाणें फार लाल रंगापेक्षां गुलाबी रंगावर असलेलीं मोतीं आपल्याकडे आवडतात. ह्यामुळे ह्या दोघांस किंमत जास्त येते; म्हणून इतर रंगाच्या मोत्यांस ह्या दोन रंगावर आणण्याकरितां मोत्यांवर प्रयोग करण्यांत येतात. मळलेल्या मोत्यांस स्वच्छ करण्याची जी तऱ्हा वर सांगितली आहे तिचाच थोड्याबहुत फरकानें त्या कामासाठीं उपयोग करण्यांत येतो. ह्या कामाकरतां हैड्रोजन पर ऑक्साइड आणि ओझोनिक ईथर साधारणपणें निमेनिम घालतात. जर मोत्यांचा रंग जास्त लाल असेल तर हैड्रोजन पर ऑक्साइड हें जास्त प्रमाणांत घालावें व ऊनही जास्त दिवस द्यावें लागतें. सल्फ्यूरिक ईथर ३ प्रमाणांत घालतात. पण त्याचे थेंब अनुभवानें कमी-जास्त करावे लागतात. ह्या प्रयोगांत मुख्य गोष्ट ही कीं नवीं कोरीं मोतीं

असल्यास त्यांस विंधून म्हणजे भोकें पाडून मिश्रणांत टाकावीं लागतात. असें केल्यानें औषधें अंतर्भागांतही मुरून जाऊन मोत्याच्या रंगांत पालट होतो. गुलाबी रंग पाहिजे असल्यास लाल रंगाच्या मोत्यांवर प्रयोग करून इष्ट तो रंग आल्यावर प्रयोग बंद करावा. शुभ्र पाहिजे असतील तर मोतीं शुभ्र होईपर्यंत प्रयोग करावा. हलकीं अस्मानी, काळसर निळसर, हिरवट वगैरे रंगावर असलेलीं दोन चार रुपये चवाच्या भावाचीं मोतीं हा प्रयोग करून गुलाबी रंगावर आणण्याचा प्रयत्न करण्यांत येत असतो. ओझोनिक ईथरमुळें मोत्याला तेज, पाणी व चमक चढते. सल्फ्यूरिक ईथरचा उपयोग मोत्याचा रंग कमी करण्याकडे होतो. हैड्रोजन पर ऑक्साइडमुळें मोत्यांचा मळ निघून जातो आणि नव्या मोत्यांवर बारीक बारीक छरे असल्यास तेहि जातात.

जेव्हां ऊन नसतें त्यावेळीं पांढरी रेंती पोत्यांत भरून तिला गरम करतात व त्यांत मोत्यांसह वरील औषधाच्या मिश्रणाची बाटली ठेवतात. आरशावर ऊन घेऊन त्याचा कवडसा बाटलीवर पाडून ठेविल्यानें बाटली-तील उष्णतामान वाढतें व प्रयोग लवकर यशस्वी होण्यास मदत होते. मोत्यांस इष्ट तो रंग आला कीं तीं मिश्रणांतून काढून साध्या स्वच्छ पाण्यानें भरलेल्या बाटलींत २४ तास ठेवून देतात. म्हणजे रंगाला चांगली चमक येते. शिवाय वाटल्यास लिंबाचा रस पाण्यांत मिसळून त्यानें मोतीं स्वच्छ धुतल्यासही चमक येते. गुलाबी रंग करावयाचा असल्यास तीं मोतीं रिठ्याचे पाण्यांत धुतात. म्हणजे चांगला गुलाबी रंग येतो. मात्र हें विसरतां कामा नये कीं कृत्रिम रंग अशा प्रकारें आणणें मोत्यांस अपायकारक असतें. बहुतेक व्यापारी नप्याच्या लालसेनें ही कृति करीत असतातच. पण अशी कृति न करणारेही कांहीं व्यापारी आहेत. ज्यांचा रंग कृतीनें पालटला नाही अशीं स्वाभाविक रंगावर असलेलीं मोतीं जास्त टिकाऊ असून त्यांचा रंगही लवकर न बिघडणारा असतो. कृतीनें आणिलेले भपकेदार तेजही कांहीं दिवसांनीं कमी होतें. अशा मोत्यांच्या टिकाऊपणासही धक्का बसलेला असतो. ह्यामुळें ह्यांचीं भोकें लवकर जिडून मोठीं होतात. एकंदरीत ह्या प्रयोगांनें मोत्यांचे आयुष्य कमी झालेले असतें. त्यांस प्रमाणही असें आहे कीं एकादें औषध जास्त प्रमाणांत पडल्यास, जसें डाळिंब जास्त पिकले म्हणजे फुटतें

किंवा उकलतें तशी मोतीही होतात. तीं फार जुनीं असल्यास त्यांस फाट पडते व तशी पडल्यास ती बंद होत नाहीं. म्हणून अशीं मोतीं न घेतां स्वाभाविक असलेल्या इष्ट त्या रंगाचीं मोतीं महाग मिळालीं तरी घेणें जास्त चांगलें. टिकाऊ असल्यानें परिणामावरून अखेर हींच जास्त स्वस्त ठरतात. जितकें स्वस्त तितकें महाग अशी एक म्हण आहे. कृत्रिम रंगाचीं मोतीं घेतल्यास ह्या म्हणीचा प्रत्यय आल्यावांचून रहाणार नाहीं.

मौल्यवान पाणीदार मोतीं असून त्यांचें भोंक मोठें झालें तर त्या भोंकांत प्लॅटर ऑफ पॅरिस किंवा तत्सम एकादें मिश्रण घालून तें बेमालूम बंद करून त्या मोत्यास दुसऱ्या ठिकाणीं भोंक पाडून विंधून तयार करितात. अगदीं सूक्ष्म नजरेनें अगर सूक्ष्मदर्शक यंत्रानें पाहिल्याखेरीज ही लबाडी नजरेस येत नाहीं.

मोत्यांस नर किंवा पोटनर हे दोष असल्यास खालील मिश्रणें उपयोगांत आणितात:-

मिश्रण नंबर १-शुद्ध कडव्या तें नसल्यास गोड्या बदामाचें तेल ३ आणि टरपेन्टाइन तेल ३ भाग.

मिश्रण नंबर २-इंग्रजी शुद्ध एरंडेल तेल ३ भाग, चंदनी तेल ३ भाग आणि कोलन-वॉटर ३ भाग.

यांपैकीं कोणत्याहि मिश्रणाचा उपयोग केला तरी नर, पोटनर (यास गरज असेंहि म्हणतात.) हे दोष नाहींसे होतात. कोरे मोत्यांस भोंक पाडून, विंधलेले मोतीं असल्यास तसेंच बटनासारखें असल्यास त्यास त्याच्या बैठकीच्या भागाकडून अर्धवट छिद्र करून वरील मिश्रणापैकीं एक मिश्रण वातागम्य बुचाच्या बाटलींत भरून घेऊन त्या मिश्रणांत हें सच्छिद्र मोतीं चार ते आठ दिवस बंद करून ठेवितात. असें केल्यानें हे दोष बुजले जाऊन दिसेनासे होतात. मिश्रणांत कोलन वॉटर असल्यास मोत्यांस चकाकीहि येते. एरंडेल आणि टरपेन्टाइन यांच्या मिश्रणांनेंहि मोत्यांची गरज (चीर) दिसेनाशी होते. तथापि कोणतेहि मिश्रण वापरलें तरी चीर कायमची बुजते असें नाहीं. कांहींची पांचसहा महिन्यांनीं तर कांहींची वर्ष-दोन वर्षांनीं पुनः दिसू लागते.

प्रकरण १६ वें

कृत्रिम रत्नें

शीतोष्ण, सुखदुःख ह्या जोड्या जशा सृष्टीबरोबर उत्पन्न झाल्या तशीच खॅरे आणि खोटे ही जोडीहि उत्पन्न झाली असें वाटते. रत्नांच्या बाबतीतही याचा अनुभव येतो. रत्नें भूगर्भांत होती त्या वेळीं हा प्रश्न अर्थातच नव्हता. पण त्यांचा अवतार व्यवहारांत जाहला त्याच्या निकट कार्लीच खोटी रत्नेंही जन्मास आलीं असावीं. रत्नांवरील जितके मिळून प्राचीन ग्रंथ आहेत त्यांतून खऱ्या रत्नांच्या वर्णनानंतर खोट्या अथवा कृत्रिम रत्नांचेही वर्णन आढळते. रोगावर जसा उपाय हा तोडगा, त्याप्रमाणें खोट्याच्या पाठोपाठ तें ओळखण्याचीं साधनेंही पण अस्तित्वांत आलीं. जुन्या रत्नग्रंथांतून या साधनांचेही पण वर्णन दिलेले असते. अगस्तिमत या ग्रंथांत दुष्ट लोक कृत्रिम हिरे तयार करितात असें सांगून अज्ञा कृत्रिमांना कसोटीवर घासून तसेंच त्यांवर क्षारांचें लेपन करून बारीक नजरेनें त्यांजकडे पाहून त्यांना ओळखावें असें म्हटले आहे. गोमेद, पुष्पराग, कांच, काचमणि आणि लोह यांचे खोटे हिरे करितात. बुद्धभटाच्या रत्नपरीक्षेत ह्या पदार्थांशिवाय वैदूर्याचेही कृत्रिम हिरे करितात असें सांगून ते ओळखण्याकरितां त्यांवर क्षार द्रव्यांचें लेपन करावें, त्यावर काणशीनें ओरखडून पहावें आणि कसोटीवरही घासावें असें सांगितले आहे. युक्तिकल्पतरूंत सांगितले आहे कीं, कांच, काचमणि, उत्पल, करवीर आणि वैदूर्य या रत्नांपैकीं जीं इंद्रनीलाच्या रंगाप्रमाणें रंगाचीं असतात तीं खरोखर इंद्रनील नसतां लबाड लोक त्यांस इंद्रनील या नांवानें मिरवितात. पण रत्नपारखी लोक त्यांचें विशिष्टगुरुत्व आणि काठिन्य तपासून त्यांचा खोटेपणा उघडा करितात. कारण वरील पांचही प्रकारच्या रत्नांचें विशिष्टगुरुत्व व काठिन्य इंद्रनील रत्नापेक्षां कमी

असतें. बुद्धभट आणखी सांगतात कीं खोटें पाचरत्न कांचेचें तयार करि-
तात; पण खऱ्या पाचेच्या खड्यापेक्षां तेवढाच कांचेचा खडा हलका
असल्यामुळें सहज ओळखतो. कांच आणि स्फटिक (काचमणि) हीं
वैदूर्याच्या वर्णाचीं मिळवून धूर्त लोक हीं वैदूर्याचीं रत्नें आहेत असें
सांगतात; पण लाक्षायोगानें (?) कांच आणि फाजील उजाळ्यामुळें स्फटिक
हीं ओळखतात. गोमेदाचें नकली रत्न स्फटिकाचेंच बनवितात. पण
जातिवंत रत्नाचा रंग कृत्रिमांत उतरतच नाही. सर्वसामान्य कृत्रिम-
अकृत्रिमाची परीक्षा मानसोल्लासांत अशी दिली आहे कीं, ज्याची
परीक्षा करावयाची त्या रत्नास हिऱ्याच्या सुईनें छिद्र पाडण्याचा प्रयत्न
करावा; त्यानें पिचून गेल्यास तें नकली समजावें. मोती पारखणें असल्यास
तें खऱ्या पाण्यानें धुवावें. जर त्रिघडलें तर तें खोटें. रत्नपारख्यानें
माणिक्यादि रत्नें कसोटीनें घासून व कढवूनहि तपासावीं, कढविण्यानें
ज्यांचा रंग अगर तजेला जातो तीं खोटीं, घासतांना हलकें गेलें तर तें रत्न
कृत्रिम आहे असें समजावें. युक्तिकल्पतरुंत “स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं
विजातिलिंगं खलु सार्वजन्यं” असें थोडक्यांत खऱ्या-खोट्याचें लक्षण
सांगितलें आहे. याचा अर्थ असा कीं तुळतुळीतपणांत फार फरक (म्हणजे
तुळतुळीतपणा फार कमी असणें), हलकेपणा आणि मृदुता हीं नकली
रत्नाचीं सार्वत्रिक लक्षणे आहेत. रत्नदीपिकाकार म्हणतात कीं खऱ्या
खोट्याची परीक्षा करण्याकरितां हिरा क्षारानें आणि आम्लानें लेपून विस्त-
वांत तापवावा. कृत्रिम असेल तर तजेला निघून जाईल, खरा असेल तर
त्याची प्रभा वाढेल. शिवाय कृत्रिम हिरा घासला असतां शिजतो व कुटला
असतां चुरतो. तसें हिऱ्याचें होत नाही. रत्न खरें कीं खोटें याचा संशय
आल्यास त्यास खऱ्या रत्नाबरोबर घासावें. खोटें असल्यास त्रिघडून जाईल.
पाचेचा खडा खरा कीं खोटा अशी शंका आल्यास तो निसण्याचे दगडा-
वर घासावा. कांच असेल तर त्रिघडून जाईल. संशयित पाच रत्नाला
लोहभृंगानें (ताडपत्रावर लिहिण्याकरितां तयार केलेल्या लोहाच्या कल-
मानें) ओरखाडावें आणि चुन्यानें माखावें. असें करून जर त्याचें तेज
चकाकलें तर तें खरें पाच रत्न आणि जर तें मळकट झालें तर खोटें
समजावें.

नील काय की पद्मराग काय त्या त्या रत्नानेंच ओरखडले जातात. हिरा हा फक्त अन्य हिऱ्यानेच ओरखडला जातो.

नैसर्गिक रत्ने व कृत्रिम रत्ने यांत मुख्य भेद असा आहे की पुष्कळशी नैसर्गिक रत्ने कठीण असतात. कृत्रिम रत्ने पुष्कळशी कांचेची किंवा रांध्याची केलेली असल्यामुळे काठिन्यांत पुष्कळच कमी असतात. कमी काठिन्यामुळे कृत्रिम रत्नांचे तेजही खऱ्यापेक्षा कमी असते.

वर दिलेली वर्णने ज्या वेळची आहेत त्या वेळी हिंदुस्थानांत रत्नाचा व्यापार मोठ्या धडाडीने चालत असे. तेव्हां प्रत्यक्ष प्रचारांत असलेल्या प्रकारांचे व साधनांचे हे वर्णन असल्यामुळे ते हिंदी जनतेला फारच उपयुक्त आहे.

येथवर कल्चर मोती खेरीज करून बहुतेक पौर्वात्य पद्धतींच्या कृत्रिम रत्नांचे वर्णन झाले. आतां पाश्चात्य विजाति रत्नांचे विवेचन करूं. हवा-पाण्याचा व जमीनीचा फरक वजा केला तर येथची व तेथची नैसर्गिक रत्ने बहुतेक सारखीच. पण पश्चिमेकडे आधिभौतिक शास्त्रांची वाढ फार झाल्याने तेथे इकडच्या कलचरादि ऐवजी तिकडे शास्त्रीय रत्ने निघाली आहेत. इकडे कलचरांत जशी मोत्यांची वाढ नैसर्गिक प्राण्याकडून करविली जाते, तद्वत् तिकडच्या कृत्रिम रत्नांची वाढ नैसर्गिक घटकांकडून केली जाते. नैसर्गिक उत्पत्ति दोन्हीकडेही ईशेच्छेच्याच स्वाधीन. कृत्रिम उत्पत्ति मात्र मनुष्यकृत.

मोती, प्रवाळ आणि तृणमणि हीं रत्ने मात्र खनिज नव्हत. तीं प्राणिज आणि उद्भिज रत्ने आहेत. बाकीचीं रत्ने पृथ्वीच्या घटकांतून नैसर्गिक रीत्या तयार झालेलीं खनिज द्रव्ये होत. तीं कांहीं नियमित पद्धतीने नियमित घटकांचीं तयार झालेलीं असतात. म्हणून इतर खनिजां प्रमाणें त्यांची सूत्रमय सारणी (Formula) सांगतां येते. ह्याचा फायदा घेऊन पाश्चात्य शास्त्रज्ञांनी नैसर्गिक रत्नांचे जे घटक आहेत त्याच द्रव्यांची कृत्रिम घटना करून कांहीं रत्ने नैसर्गिक रत्नांची बरोबरी करतील अशी तयार केली आहेत. ह्यामुळे ह्यांस शास्त्रीय रत्ने हे नांव देण्यांत आले आहे. ह्या रत्नांचे गुणधर्मही नैसर्गिक रत्नांच्या गुणधर्माशी जुळतात.

ह्यांशिवाय खऱ्या घटकांचीं बनविलेलीं दुसऱ्या एका प्रकारचीं रत्नेंही पाश्चात्य शास्त्री तयार करीत असतात. त्यांस पुनर्घटित रत्नें म्हणतां येईल. इंग्रजींत त्यांस रीकन्स्ट्रक्टेड म्हणतात. हीं रत्नें मणिकारांच्या कारखान्यांत रत्नांस आकार देतांना जे तुकडेताकडे पडतात, अथवा जे रज पडतात त्यांचीं, तसेंच माणिकासारख्या रत्नांच्या खाणींत रत्नांचे वाळूसारखें कण सांपडतात त्यांचीं, केलेलीं असतात. हे तुकडे, रजःकण, वितळवून व जरूर वाटल्यास थोडा रंग देऊन त्यांचे लहान मोठे आकार निववितात. ह्या पुनर्घटिताचे गुणधर्म नैसर्गिक रत्नांप्रमाणेच राहतात. हीं लहानमोठीं रत्नें अनेक कामीं येतात. आंगठ्यांतील आणि ब्रूचेस् (कपडा ठीक बसवण्याकरितां वापरण्यांत येणारा कांटा) मधील सूक्ष्म रत्नांचे गुच्छ तयार करण्याकडे, घड्याळांत वापरण्याकडे, गळेबंदाचीं टांचणी तयार करण्याकडे व मध्यम प्रतीच्या जवाहिरांत इत्यादि कामाकडे ह्यांचा उपयोग करितात. ह्यांस पैलूही पाडितां येतात व पालिशही नैसर्गिक रत्नांप्रमाणे करितां येते. सारांश, फुकट जाणारीं मूल्यवान् द्रव्ये एकत्र करून त्यांचीं बनविलेलीं हीं रत्नें मणिकाराच्या घद्यांस पूरक होऊन नैसर्गिक रत्नांपेक्षां स्वस्तही मिळतात.

खऱ्याखोऱ्या रत्नांच्या मिश्रणांचा एक प्रकार आहे तो ठकन्नाजी करून ग्राहकांस फसविण्याचे कामीं उपयोगांत आणतात. ह्यांस दिखाऊ रत्नें म्हणतां येईल. हा प्रकार म्हणजे रत्नांचीं दुबेळकीं (Doublets) हीं होत. ह्यांस दुपडी असेंही नांव आहे. हीं सर्वच्या सर्व खोटीं नसतात. दुबेळक्याचा वरचा अर्धा भाग खऱ्या रत्नाचा असून तो खालच्या अर्ध्या खोऱ्या रत्नास म्हणजे कांचेच्या भागास जडविलेला असतो. खालच्या ह्या भागाचा रंग वरच्या भागाच्या रंगापेक्षां जास्तच गहिरा असतो अथवा दोघांच्या दरम्यान रंग भरलेला असतो. ह्यामुळे वरच्या भागाचा फिका रंग खालच्या गहिन्या रंगामुळे चांगला खुलून दिसतो. ह्यांचे सांघप असें बेमालूम केलेले असते कीं, ते दोन भाग मिळून एक अखंड रत्न असल्याचा भास होतो.

खऱ्या पाचेची किंमत फार वाढली असल्यानें आणखीही एक फसविण्याची युक्ति निघाली आहे ती अशीः—खऱ्या पण अगदीं कमी

किंमतीच्या पाचेचे दोन तुकडे तयार करितात. आणि त्याच्या दरम्या उत्तम पाचेच्या रंगाच्या हिरव्या कांचेची बारीक चीप बसवितात. आर् उत्तम संधापकानें ह्यांचें सांधप बेमालूम करितात. असें केलें म्हण मधल्या हिरव्या कांचेचा रंग फिक्या पाचेच्या वरच्या व खालच्या तुकड्याला येतो. ह्या मधल्या कांचेला काणस लावतां येऊं नये म्हणु हा तुकडा मध्यावर सभोवतीं पुढें आलेल्या भागाच्या किंचित् आंतल्या भागाला बसवितात. म्हणजे काणस लाविली तरी कांचेला न लागत पाचेच्या वरच्या खालच्या तुकड्यास लागते आणि त्यामुळें काठिण तपासण्यांत ह्याला पाचेचेंच काठिण्य लागतें. ह्या अशा रीतीनें तथा केलेल्या पाचेला टिप्लेट म्हणजे तीन संधि किंवा तिबेळकीं म्हणतात. ह तीन संधीचें विशिष्टगुरुत्वही बहुतेक पाचेइतकें निघतें. आणि पाचेप्रमा हें दुहेरी वक्रीभवनही करितें. ह्यामुळें हें ओळखण्यास कठीण पडतें तथापि हें रत्न एका बाजूवर धरून तेलांत बुडवावें आणि नंतर त्याजक बारीक नजरेनें पहावें. असें केलें असतां तिन्ही पडदे निरनिराळ्या रंगां निरनिराळे दिसतात. ह्यावरून ही लबाडी ओळखावी. दुहेरी अथवा दोन संधि कृत्रिम रत्नेंही अशा रीतीनें ओळखतात. शिवाय हे टिप्लेट उन्हां ठेवून त्याचा कवडसा काडींवर पाडिला तर त्याचे दुहेरी कृत्रिम रत्न प्रमाणें दोन कवडसे पडतात. खऱ्या अखंड पाचेचा अशा रीतीनें एक कवडसा पडतो.

दुबेळकीं आणि तिबेळकीं हीं माणिक, इंद्रनील, पाच आणि ओप ह्यांचीं विशेषें करून आढळतात. ह्यांचें सांधप पुष्कळदां सीमेंटचें असल्य मुळें हीं गरम अथवा थंड पाण्यांत अथवा दारूंत अथवा क्लोरोफार्ममधें बुडवून ठेविलीं तर त्यांचें सांधे निखळून तुकडे मोकळे होतात. जर चांगल्य सूक्ष्मदर्शक यंत्रानें हीं तपासलीं तर त्यांचे सांधे ओळखूं येतात.

हिरा शास्त्रीय रीत्या तयार करण्याचा पहिला यशस्वी प्रयत्न कॅ णान्या शास्त्रज्ञांच्या मालिकेंत माइसन ह्या फ्रेंच शास्त्रज्ञाचा समावेश होतो. ह्यानीं हिरे तयार केले, पण अत्यंत सूक्ष्म असे झाले व त्यांस खर्चा फार आला. मायसनसाहेबानें शुद्ध कार्बन आणि लोह ह्यांचें मिश्र

तयार करून त्यास विजेच्या साह्याने ४०००० डिग्री सेंटिग्रेड उष्णतेत तापविले. ही उष्णता इतकी तीव्र असते की हिनें लोखंड मेणाप्रमाणें वितळून त्याची वाफ होऊन जाते. कांहीं वेळ इतकी उष्णता देऊन झाल्यावर तें मिश्रणाचें द्रावण थंडगार पाण्यांत एकदम बुडविलें. लोखंडाच्या रसाचें घनस्थितींत रूपांतर होतांना तें विस्तृत होतें. ह्या नियमानुरूप ह्या लोखंडाचा बहिर्भाग प्रथम विस्तार पावला व त्यानें अंतर्भागास चेंपून धरलें पाण्यालगतचा हा अंतर्भाग नंतर निवत असतां विस्तार पावतेवेळीं मोठा दाब उत्पन्न होऊन त्या दाबांनें मिश्रणांत विरलेला कार्बन बळेंच बाहेर काढला गेला, तेव्हां त्यापैकी कांहीं भागास पारदर्शक रूप येऊन त्यास स्फटिकाकार आला आणि त्याचा देखावा, रंग, काठिण्य व प्रकाशाचे त्यावरील परिणाम हीं सर्व हिऱ्याचीं झालीं. अर्थात् हे हिरे अत्यंत सूक्ष्म असून लोखंड आणि कार्बन ह्यांस चिकटलेले होते. त्यांपासून हिऱ्यांस मोकळें करण्याचें काम अत्यंत किचकट होतें. ह्यामुळे जरी शास्त्रीय रीत्या हिरे तयार झाले तरी व्यावहारिक रीत्या त्यांपासून कांहीं फलप्राप्ति होण्यासारखी नव्हती. दुसरे ह्याच कार्मी प्रयत्न करणारे वैज्ञानिक हेंने आणि फ्रेडलॅंडर ह्यांनीं व दुसऱ्या कित्येकांनीं दुसऱ्या तऱ्हेनें शास्त्रीय हिरे तयार केले आहेत म्हणतात. पण अद्याप तरी जवाहिरांत त्यांचा उपयोग होऊं लागलेला दिसून येत नाहीं.

मोठ्या प्रमाणावर शास्त्रीय रत्नें माणिक आणि इंद्रनील हीं तयार होऊं लागलीं असून त्यांचा उपयोगहि सर्व प्रकारच्या दागिन्यांत होऊं लागला आहे. ह्या दोन्ही रत्नांचा घटक एकच अल्युमिना हा होय. हीं दोन्ही रत्नें कुरुंदाचींच असतात.

हिरव्या रंगाचें रत्न आणून हें रत्न खोटें नसून ही शास्त्रीय अथवा सिंथेटिक पाच आहे असें कोणी सांगूं लागला तर तें खरें मानूं नये; कारण जशी माणिक व इंद्रनील हीं रत्नें शास्त्रीय रीत्या तयार करितां आलीं आहेत तशी पाच तयार करितां आलेली नाहीं. बारीक सारीक व कमसर रंगाची पाच वितळवून यथास्थित रंग देऊन पाचेचें कृत्रिम खडे तयार करितात. पण ती निवळ हिरबी कांच होते. पाचेचे काठिण्य तिला येत नाहीं व

चजनांतहि हलकी असते. शिवाय कांचेचेच इतर घर्महि त्या खड्याला येतात. पाच ही स्फटिकरूप आणि दुहेरी वक्रीभवन करणारी तर हे कृत्रिम खडे एकेरी वक्रीभवन करणारे असून स्फटिकाकार नसतात. शिवाय खरी पाच द्विवर्णत्व दाखविणारी असते आणि ह्या कृत्रिम खड्यांस द्विवर्णत्व नसतें; म्हणून माणिक शनीप्रमाणेच हें शास्त्रीय रत्न आहे असे कोणी म्हणेल तर फसूं नये म्हणून हा इशारा देण्यांत येत आहे.

शास्त्रीय माणकें व इंद्रनील फ्रान्स व अमेरिका या देशांत सुमारे एक कोटी क्यारट वजनाचे दरवर्षी तयार होतात व खपतात. जर्मनी व फ्रान्स या देशांत बहुतेक शास्त्रीय रत्ने तयार करितात. अगदी हलकीं रत्नें झेकोस्लोव्हाकियामध्येही होतात. अलेक्झान्ड्रा आणि स्पायनेल (लाल नांवाचें रत्न) ही शास्त्रीय पद्धतीनें हल्लीं तयार होऊं लागले आहेत.

शास्त्रीय रत्नें ओळखून काढण्याचीं बरींच साधनें माणकांचें वर्णन लिहितांना दिलीं आहेत. त्यावरून इतर खऱ्या खोट्या रत्नांतून शास्त्रीय रत्नें निवडून काढितां येतात.

कृत्रिम रत्नें तयार करण्याचे प्रकार अनेक आहेत. हलक्या रत्नांना बाहेरून रंग देऊन त्याचा देखावा सुधारण्यांत येतो. कांहीं शुभ्र रंगाचे रत्नांस तडे पाडून निरनिराळीं रत्नें तयार करण्याकरितां त्या तड्यांत रंग भरण्यांत येतो. त्यांचें वर्णन रत्नवर्णनावरोबर कित्येक ठिकाणीं देण्यांत आलें आहे.

ह्याशिवाय घटक निराळे पण ज्यांचें रंग रूप जवळ जवळ एकच अशीं कृत्रिम रत्नें नैसर्गिक रत्नांची प्रतिमा म्हणून तयार करण्यांत येत आहेतच. अर्थातच हीं कृत्रिम रत्नें शास्त्रीय रत्नांची बरोबरी करूं शकत नाहीत. हीं कृत्रिम रत्नें बहुतेक साध्या व रंगीत कांचेपासून तयार केलेलीं असतात. हीं कांच कित्येक रत्नांकरितां जरा निराळ्या तऱ्हेचीं केलेलीं असते. ह्या रांध्याच्या कांचेला पेस्ट अथवा स्ट्रास अशीं इंग्रजी नांवे आहेत. स्ट्रास ह्या नांवाचा एक मनुष्य जर्मनीच्या अल्सेस-लॉरेन प्रांताची राजधानी स्ट्रासबर्ग येथील रहाणारा होता. त्यानें प्रथम पुष्कळशा शिशाचा उपयोग करून चकचकीत कांच कृत्रिम रत्नें तयार करितां येण्याजोगी शोधून

काढली. ह्यामुळे अशा कृत्रिम रत्नांना स्ट्रॉसचीं रत्ने म्हणूं लागले. उत्तम कांच ज्यापासून करितात असे काचमणि हें खनिजही भूगर्भांत पुष्कळ ठिकाणीं सांपडतें, त्याचाही उपयोग कृत्रिम हिरे व दुसरीं अनेक कृत्रिम रत्ने तयार करण्याकडे केला जातो.

पारीसचे फेलसाहेबांनीं उत्तम प्रकारचा स्ट्रॉस बनविण्यांत आघाडी मारली आहे. त्यामुळे हल्लीं खोटीं रत्ने इतकीं हुबेहुब तयार करण्यांत येतात कीं शास्त्रीय कसोटी लावून पाहिल्याखेरीज तीं ओळखण्याचें काम फार कठीण झालें आहे.

पेस्टच्या अथवा स्ट्रॉसच्या केलेल्या रत्नांत एक दुर्गुण आहे तो असा कीं तीं पुढें काळसर होऊन अपारदर्शक होऊं लागतात. असें होण्याचें कारण त्याच्या कांचेंत असलेल्या शिशावर गंधकाचा परिणाम होतो हें आहे. शहरांतील हवेंत गंधकाचे आम्लाचें (Sulphurous acid) प्रमाण जास्त असल्यानें तें तर हीं रत्ने जास्त लवकर बिघडतात. कांचेंत शिशाचें प्रमाण जास्त असल्यास हा परिणाम जास्तच लवकर दृष्टीस पडूं लागतो. ह्याखालीं कृत्रिम रत्नाच्या कृतीतील घटकांचें प्रमाण आलें आहे. त्यावरून ह्या कांचेंत किती मोठ्या प्रमाणांत शिसें असतें तें आढळून येईल. शिसें कांचेला तेज यावें म्हणून घातलेलें असतें.

कृत्रीम हिरे बनविण्याची कृती:—या कामांत शुद्ध रेती म्हणजे स्वच्छ सिलिका (Silica) लागते. ती प्रथम तयार करून ठेवावी. ती रीत—पांढरी बारीक रेती घेऊन लोखंडी कढईत ठेवून खूप गरम करावी. नंतर तावेध्यानें वारंवार परतून फार कोरडी करण्याकरितां तिच्यातील पाणी गरमीनें उडवून द्यावें. चांगली कोरडी झाल्यावर व थंड झाल्यावर फडक्यांत घालून घांसून स्वच्छ करावी. नंतर पाटावर ठेवून तिच्यांतले पांढरे चकचकीत कण निवडून निराळ्या भांड्यांत ठेवून द्यावे. हीच शुद्ध रेती होय. रंगीत कणाची रेती या कामीं वापरूं नये.

मिश्रण

शुद्ध कास्टीक पोथ्याश
बोरॅसीक आसीड

१६ तोळे
४॥ तोळे

| | |
|------------------------------------|---------|
| आरसेनीक आसीड (सोमल) अकरा आणे भार | |
| लेड कार्बोनेट (White lead) | ८५ तोळे |
| पांढरी बारीक शुद्ध रेती | ५० तोळे |

साधारण गरम केलेल्या मुर्शीत वरच्या प्रमाणानें ते पदार्थ वजन करून भरावे. नंतर ती मूस भट्टीतील विस्तवांत बरोबर बसवावी. कचरा वगैरे तिच्यांत जाणार नाहीं असा बंदोबस्त ठेवावा; नंतर गरमी हळुहळू वाढवून त्यांचें पाणी करावें, पाणी होण्यास फार उशीर लागतो याप्रमाणें २४ तास गरमी देऊन एक रस करावा. तो पदार्थ त्या मुर्शीतच राहूं द्यावा. सोमलाचा धूर डोळ्यांस न लागेल व श्वासांत जाणार नाहीं याबद्दल काळजी घ्यावी. नंतर त्या मुशीखालची गरमी थोडथोडी कमी करीत जावी. याप्रमाणें तें मिश्रण सावकाश थंड होऊं द्यावें. नंतर कठिण झालेल्या पदार्थाचे (हिऱ्याचें बनावट द्रव्य) पाहिजे त्या आकाराचे हिरे पाडावे. ते कृत्रीम हिरे होतात.

बनावट माणिक करण्याची कृति

मिश्रण

| | |
|---------------------|---------|
| आल्युमिनम ऑक्साईड | भाग १९२ |
| चांगला शेंदूर | „ १९२ |
| पोटॅशियम बायक्रोमेट | „ १॥ |

वरच्यापैकीं पहिले दोन पदार्थ मुर्शीत घालून गरमीनें रस करावा. नंतर तिसऱ्या पदार्थाची भुकटी करून त्या रसांत मिळवावी. मिश्रण एक-जीव झाल्यावर थंड करावें. त्याचे तुकडे माणकासारखे लाल व चकाकीत होतात.

बनावट पाच (पन्ना) बनविण्याची कृति

मिश्रण

| | |
|-------------------|---------|
| आल्युमिनम ऑक्साईड | १६० भाग |
| चांगला शेंदूर | १६० „ |
| युरेनेट ऑफ सोडियम | १ „ |

वरच्या तीन पदार्थांच्या भुकट्यांचें मिश्रण करून मुर्शीत ठेवावें. गरमी देऊन त्यांचें पाणी करावें. पाण्यासारखें पातळ झाल्यानंतर थंड करावें. नंतर त्याचे लहान लहान तुकडे पाडावे. पाचेसारखे हिरवेगार व फार तेजस्वी होतात.

पिंढ्या पुष्कराज बनविण्याची कृती

हिन्याचे मिश्रणाची भुकटी भाग १२८.

आक्साईड ऑफ सिल्व्हर (रुप्याचें भस्म) भाग १.

वर लिहिलेल्या दोन पदार्थांची भुकटी मिश्र करून आटवावी. थंड झाल्यावर इच्छित आकाराचे तुकडे पाडावे. पिंढ्या पुष्कराजासारखे तेजस्वी दिसतात.

वरील मिश्रणाचे तुकडे खऱ्या रत्नांप्रमाणेंच कापून त्यांस पाहिजे तो आकार देऊन पालिश करतात. हे तुकडे खऱ्या रत्नापेक्षां मऊ असल्यानें आकार व पालिश देण्यास वेळ व श्रम कमी पुरतात. बहुतेक खोट्या रत्नांस बिलियन आकारच देतात. ह्या आकारानें खड्यांचें तेज चांगलें खुलतें. शिवाय हे तुकडे बिलियन आकारास पाहिजेत तसे जाड व रुंद असे घेऊन रत्न तयार करितां येत असल्यानें काम करण्यास चांगलें पडतें. पेस्टच्या खड्यांस बिलियन आकार दिला तरी हिन्यावर बिलियनचा जो परिणाम होतो तितक्या प्रमाणांत त्याचा इमिटेशन कांचेच्या रत्नांवर होत नाही. ह्याचें कारण असें आहे कीं, बिलियन आकारापैकीं जो माथ्याचा भाग (ज्यास टेबल असें इंग्रजींत म्हणतात) त्यांतून शिरणाऱ्या प्रकाशापैकीं बराच प्रकाश कांचेच्या खड्यांत खाऊन टाकिला जातो. तोच हिन्याच्या टेबल ह्या भागावर पडलेला बहुतेक प्रकाश हिन्याकडून तसाच परावृत्त केला जातो व जो कांहीं आंत घुसतो तोही वक्रीभूत होऊन खालच्या भागांतील पैलूंतून पार निघून पडतो. सारांश वक्रीभवन आणि परावर्तन ह्या दोन्ही प्रकारांचा परिणाम म्हणून हिन्यांतून चकाकित प्रकाशाचे खेळ दिसतात आणि आगीसारखें तेज (Fire)

ही तळपतांना दिसते. ह्याच गुणांमुळे खरा रत्नपारखी नैसर्गिक आणि कृत्रिम रत्नांच्या राशींतून दोन्ही प्रकारांस नुसत्या नजरेने निवडून काढतो. कोणताही आकार दिलेला कृत्रिम हिरा चांगल्या प्रकाशांत धरून फिरवून फिरवून पाहिला तर कांहीं विशिष्ट स्थितींत आल्यावर त्याचा माथा काळ्या ठिबक्याप्रमाणे दिसतो, आणि त्याच्यासभोवती पांढऱ्या प्रकाशाचे कडे दिसते. रत्नाचा माथा आणि कटिभाग ह्यांच्या दरम्यान जे लहान पैलू असतात त्यांमधून परावृत्त झालेल्या प्रकाशामुळे हे कडे उत्पन्न होते. आणि जो काळा ठिबका माथ्यावर दिसतो तो त्यावर पडलेला प्रकाश परावृत्त होऊन त्यांतून अथवा खालच्या पैलूंतूनही अंतर्धान पावला असल्यामुळे दिसतो.

खरे खोटे खडे ओळखण्यास दुसरे साधन असे आहे की ते जडलेले असल्यास त्यांचा कटिभाग आंढळला जातो त्या ठिकाणी ते फुटीर झाले असल्याचे अनेक वेळां आढळते. ही फूट कांचविशिष्ट म्हणजे कॉकॉइडल अथवा शिंपल्याच्या फुटीप्रमाणे असते. अशी फूट खऱ्या रत्नांत क्वचित्च आढळते व आढळली तरी ती कटिभागी नसते. मात्र खऱ्या हिऱ्याविषयी ह्या बाबतीत जास्त काळजी बाळगिली पाहिजे. कारण त्याला फूट आढळण्याचा संभव असतो. म्हणून खरा हिरा विकत घेताना जास्त शक्तीच्या सूक्ष्म दर्शकांने बारिक नजरेने तपासून नंतरच विकत घ्यावा.

एकंदर विवेचनावरून लक्षांत येईल की खऱ्या, खोट्या, शास्त्रीय, कलचर वगैरे सर्व प्रकारांना ओळखण्यास पुष्कळ साधने आहेत. जर रत्ने जशींच्या तशींच खार्णींतून काढून आणिलेली असली तर त्यांचा स्फाटिक आकार हा ती ओळखण्यास फार मोठे साधन आहे. त्याचप्रमाणे काठिन्य, विशिष्ट गुरुत्व आणि रंग ह्यांचाही उपयोग होतो. जर रत्नावर मणिकाराचा हात फिरवून ती तयार केली असली तर त्याचा वक्तीभवन कोन, विशिष्ट गुरुत्व, बहुवर्णत्व, काठिन्य, आणि रंग ही तपासावी. निर्णय करण्याचे अगोदर एकाहून जास्त पडताळे पहावे. नंतर निर्णय करावा.

मात्र लक्ष्यांत ठेवावें कीं नुसता रंग हा रत्न ओळखण्याचें खरें साधन नव्हे.

क्ष किरणांनीं हातांतील हाडें दिसतात त्याचप्रमाणें रत्नांच्या अंतर्भागांतील शर्करा, छाटे, बुडबुडे, रेखा, जाळीं वगैरे दोष दृष्टोत्पत्तीस येतात. मोत्यांची अंतररचनाही दिसत असल्यानें ह्याच्या साह्यानें नैसर्गिक (Natural) आणि लावणीचीं (Culture कलचर) मोती हीं पारखतां येतात. मुंबईच्या मोतीं बाजारांत कलचर व खरीं मोतीं पारखण्याचें एक ऑफिस आहे. तेथें खरीं खोटीं इतर रत्नेंही तपासलीं जातात.



प्रकरण १७ वें



कृत्रिम रत्नें—(पुढें चाढं)

कृत्रिम खोटीं मोतीं

कृत्रिम मोत्यांचा पूर्वापार चालत आलेला प्रकार खोटीं मोतीं हा होय. खोटीं मोतीं कांचेचीं किंवा कांचेशिवाय इतर पदार्थांचीं अशीं दोन प्रकारचीं आढळतात. कांचेचीं मोतीं पोकळ कांचेचीं अथवा भरीव कांचेचीं असतात. पोकळ कांचेच्या मोत्यांना ताज्या मौक्तिक-सत्वानें (Essence of orient) आंतून आच्छादन देऊन जीं मोतीं तयार करितात तीं हुबेहुब खऱ्या मोत्यांप्रमाणें दिसतात. पण हल्लीं कल्चर मोतीं पुढें आल्यानें ह्या पूर्वीच्या मोत्यांचा प्रचार फार कमी झाला आहे. म्हणून ह्या लहानशा पुस्तकांत त्यांचें वर्णन दिलें नाहीं. कांचेच्या खेरीज इतर प्रकारचीं खोटीं मोतीं शंखाच्या गुलाबी भागापासून केलेलीं, अभ्रकाचीं केलेलीं, तांबड्या वर्णाच्या माणकाच्या तुकड्यापासून व आणखी अन्य तऱ्हेचीं केलेलीं आढळतात. कृत्रिम खोट्या मोत्यांचें सविस्तर वर्णन आमच्या रत्नप्रदीपाच्या पहिल्या खंडाच्या १५ व्या प्रकरणांत दिलेलें आहे.

कृत्रिम कल्चर मोतीं

कृत्रिम मोत्यांचा नवा अवतार कल्चर मोतीं या आहे. कल्चर मोतीं खोटीं नाहींत. त्यांची उत्पत्ति खरीं मोतीं करणाऱ्या कालवापासून म्हणजे मौक्तिकजंतूपासूनच होत असून खऱ्या मोत्यांप्रमाणें त्यांचें उपादान-कारण मौक्तिकरस हेंच आहे. त्यांस कृत्रिम म्हणण्याचें कारण तीं स्वाभाविक अथवा नैसर्गिक कारणांनीं मौक्तिक जंतू तयार करीत नसून माणसांनीं मध्यवर्ती पदार्थ त्यांच्या शरिरांत खुपसला म्हणजे त्यापासून

होणारी इजा कमी करण्याकरतां नाइलाजास्तव त्या पदार्थावर मौक्तिकरस पसरून तो मोतीं तयार करतो हें आहे. या कल्चर मोत्यांचें रंगरूप उत्तम व किंमत हलकी असल्यानें त्यांचाच प्रचार सांप्रत बसराई खऱ्या मोत्यांपेक्षाही जास्त झाला आहे. म्हणून त्यांचें वर्णन सविस्तर करणें अवश्य झालें आहे.

कालवें म्हणजे मौक्तिकजंतू ह्याच्या शरिराच्या अनेक भागांत विजातीय द्रव्यें खुपसून त्यांजवर त्यांच्याकडून मौक्तिक रसाचीं पुटें देववून मोतीं तयार करून घेण्याची कल्पना कांहीं अगदीं नवीन नाही. ह्या कल्पनेचें जनकत्व जपानी लोकांकडे नसून चिनी लोकांकडे आहे. चिनांतील नद्यांतून लावणीचीं मोतीं तयार करण्याची पद्धति ये-जिग-यंग नांवाच्या हुचू येथील रहिवाशांनं इसवी सनाच्या तेराव्या शतकांत शोधून काढली. हल्लीं चीन देशांतील तेहसिंग शहराजवळ सुमारे पांच हजार लोक लावणीचीं म्हणजे कल्चर मोतीं तयार करण्याकडे गुंतलेले आहेत. मे व जून महिन्यांत पुष्कळसे मोतीं तयार करणारे कालव गोळा करण्यांत येतात. त्यांचे शिंपले अन्यवस्तु आंत घालण्याकरतां सुरीनें अलगत उकलण्यांत येतात, आणि कळकाच्या काढ्या, कांटे लावून त्यांच्या साहाय्यानें त्या अन्यवस्तु म्हणजे बहुधा कमावलेल्या मातीच्या बारीक गोळ्या अगर कधीं कधीं हाडांचे, पितळेचे अगर लांकडाचे बारीक गेंद व कधीं तर घातूच्या पातळशा बुद्धाच्या मूर्ति आंत घालण्यांत येतात. एका शिंपल्यांत सोईसोईच्या जागीं हे पदार्थ घालून झाल्यावर ह्या दुर्दैवी प्राण्यांना उलटण्यांत येतें आणि दुसऱ्या शिंपल्यांतही ह्याच प्रमाणें पदार्थ घालून बसविण्यांत येतात. नंतर कालव्यांना लागून असलेल्या उथळ खड्ड्यांतून हे मौक्तिकजंतु ठेवून देण्यांत येतात. कित्येक महिन्यांनीं, कांहीं वेळीं तर दोन तीन वर्षांनीं हे मौक्तिकजंतु पाण्यांतून काढतात आणि आंत ठेविलेल्या पदार्थाचीं त्यांवर मौक्तिक रसाचा थर बसून जीं मोतीं झालेलीं असतात तीं काढून घेतात. त्या मोत्यांपैकीं कित्येक कुतूहल उत्पन्न करणारीं बसलेल्या बुद्धाच्या लहान मूर्तिरूपीं असतात. अशीं बुद्ध-मौक्तिकें ब्रिटिश अजबखान्यांत ठेविलेलीं आहेत.

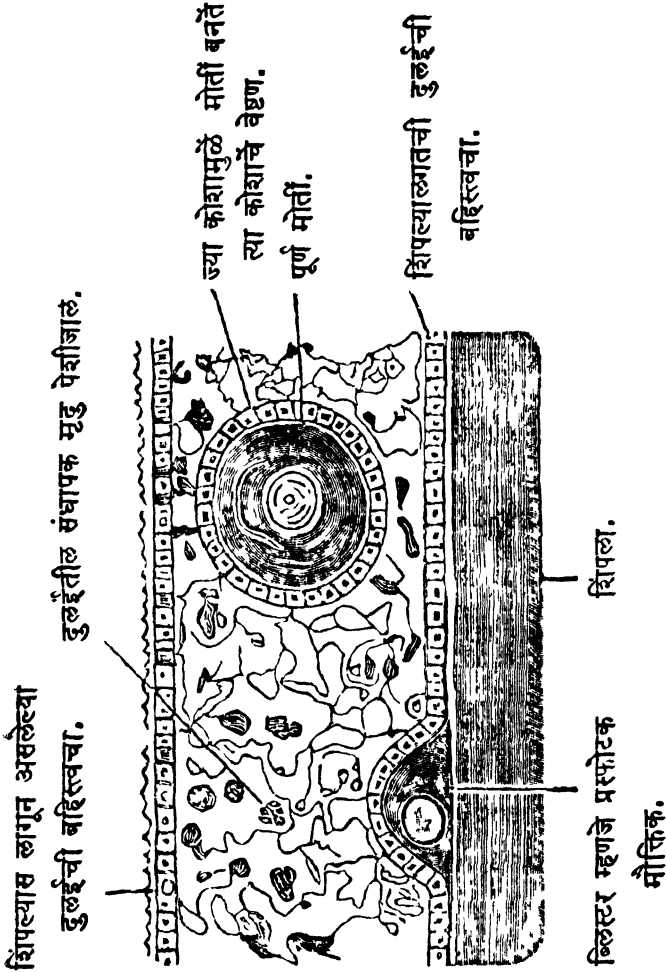
हे पदार्थ जरी मौक्तिकरसाने वेष्टिले जात होते तरी त्यांचा रंग व तेज कमी असे. जपानी लोकांनी हा घंदा हातांत घेऊन तो कमीपणा नाहीसा केला आहे. आतां जपानी लोक त्या प्राण्यांकडून जी मोती तयार करून घेतात तीं रंगारूपाने बहुतेक खऱ्या मोत्यांप्रमाणे असतात.

लावणीच्या म्हणजे कल्चर मोत्यांचे जपानांतील जनक कोचिचि मिक्मोटो हे होत. यांचा जन्म मध्य जपानांतील शिमा प्रांताचे मुख्य शहर टोबा येथे इ. स. १८५८ साली झाला. हे घरचे गरीब असल्याने फेरीवाल्याचा घंदा करित असत. हे लोकोत्तर बुद्धिमान आणि अत्यंत उद्यमशील असल्याचे प्रोफेसर कचिचि मिटसूकरी यांचे निदर्शनास आल्यामुळे त्यांनी त्याला कालवाकडून चिनी लोकांप्रमाणे मोती तयार करण्याचा घंदा करण्याचा मंत्र दिला. त्यावरून त्यांनी एक प्रॅजुएट विद्यार्थी व दुसरे प्रोफेसर चूजिरो सकाकी यांच्या मदतीने इ. स. १८९० साली एगोच्या उपसागरांतील टेहोक् बेटांत टोबाकडील समुद्रकिनार्यावर कल्चर मोत्यांच्या लागवडीच्या उद्योगास प्रारंभ करून सन १८९२ मध्ये टोकिओ येथील राष्ट्रीय प्रदर्शनांत आपण तयार केलेली कल्चर मोती मांडली व पदक मिळविले.

प्रथम प्रथम अर्धमौक्तिकेंच उत्पन्न होत असत. कारण तीं शिंपल्याच्या बाजूस चिकटलेलीं अशीं सांपडत. यामुळे कापून काढतांना तीं अर्धी होत. यांस मग शिंपल्याच्या चकचकीत भागाची पुस्ती देऊन तीं विक्रीत असत. तीं खड्यासारखीं कोंदणांत वापरतां येत असल्यामुळे किंमत बरी येत असे. पुढे त्यांची मागणी वाढू लागली. त्यामुळे उत्तेजन मिळून जास्त जास्त सुधारणा करित हाच घंदा त्यांनी नेटाने चालविला. अर्धमौक्तिकानंतर चपटी मोती निघू लागली. पुढे कांहींशीं वर्तुळाकार निघत जाऊन सन १९१३ मध्ये ते पूर्ण वर्तुळाकार मोती काढू लागले. कल्चर मोत्यांना जपानी भाषेत 'योशोको शिजू' म्हणतात.

घंदा चांगला चालू लागल्यावर त्यांनी टेहोक् बेट भाड्याने घेतले व त्याच्या आसपासच्या ५० मैलांचा हक्क त्यांनी मिळविला. यापैकी कांहीं भाग कालवाच्या अड्यांकरितां स्वतंत्र राखून ठेविला आहे. ह्या

कालबाध्या दुलईत मौक्तिक आणि दुलई व शिपला यांचे दरम्यान प्रस्फोटक मौक्तिक कसे बनते हे दाखविणारे चित्र.



ठिकाणी असलेल्या निवाऱ्याच्या भाटीवर सहा ते आठ पौंड वजनाचे दगड मे व जून महिन्यांत पसरून टाकिले जातात. त्या दगडांस आगष्ट महिन्याचे सुमारास फार बारीक बारीक मौक्तिकजंतूंचे शिपले चिकटलेले दिसू लागतात. नोव्हेंबरपर्यंत त्यांची संख्या वाढत असते. पुढे येणाऱ्या हिवाळ्यातील थंडीपासून त्यांचें रक्षण करण्याकरतां ते दगड तेथून शिपल्यासुद्धा उचलून सहा फुटांपेक्षा जास्त खोलीचे जागी ठेवण्यांत येतात. तेथे तीन वर्षे राहिल्यावर त्यांस बाहेर काढून त्यांच्या शरिरांत मोत्यांचा मध्यवर्ती पदार्थ बसवून देतात. त्यानंतर ते तेथे न ठेवतां त्यास पिंजऱ्यांत घालून ३०।३५ फूट खोल पाण्यांत नेऊन ठेवितात. ते तेथे सुमारे पांच वर्षेपर्यंत ठेवून मग बाहेर काढितात. नंतर त्यांचे शिपले उघडून जीं लावणीचीं आणि नैसर्गिक झालेलीं असतील तींही अशीं सर्व मोतीं काढून घेतात. दरसाल दहा लक्षांवर मोतीं निघतात. त्यांपैकीं जीं वाटोळीं नसतात किंवा ज्यांस काहीं कमीपणा दिसतो त्यांचा नाश करून टाकतात. हेतू हा कीं, आपल्या घंथांतील मोत्यांना कोणी नावें ठेवूं नये. विक्रीला आलेलीं कल्चर मोतीं सर्व मोहक असतात याचें कारण हें आहे.

मिकिमोटो हे ज्या रीतीनें मौक्तिकजंतूंकडून मोतीं तयार करवितात ती सांगण्याला सोपी असली तरी करण्याला फार कठीण आहे. ह्याकरतां ह्या कामाचीं माणसें फार कुशल असावीं लागतात व त्यांस ह्या कामाचें शिक्षणही घ्यावें लागतें. प्रथमतः एक कालव समुद्रांतून काढून घेऊन त्या कालवाचा शिपला काढून टाकतात आणि मौक्तिक रसाची तयार केलेली गोळी अगर असाच एकादा या कामीं उपयोगी पडणारा पदार्थ म्हणजे बारीक मोतीं वगैरे कालवाच्या दुलईच्या बाहेरच्या भागावर म्हणजे ज्या भागांतून रस तयार होऊन त्याचीं मोतीं तयार होतात त्यावर तो पदार्थ ठेवून त्या भागावरची सूक्ष्मदर्शक यंत्रानें दिसणाऱ्या अशा अत्यंत बारीक कणांची बनलेली चामडी इतकीच कातरून घेतात कीं, दुलईवर ठेविलेल्या पदार्थाला एकपदरी त्याचें पुरेसें पिशवीसारखे आच्छादन करिता येईल. ही चामडी वळवून त्या पदार्थाभोंवतीं तिचें पिशवीसारखें आच्छादन करून तिचें तोंड दोऱ्यानें बांधून बंद करितात. नंतर ही पिशवी काढून घेऊन दुसऱ्या कालवाच्या दुलईच्या बाह्य-

त्वचेच्या खालच्या पेशीजालावर ठेवितात व पिशवीचे तोंड ज्याने बांधले होते तो दोरा काढून घेतात. ह्या कार्याकरिता केलेल्या जखमेला संकोच करणारे मलम लावून मग हे दुसरे कालव म्हणजे ज्याच्या त्वचेत मध्यवर्ती गोळी असलेली पिशवी बसवून दिलेली असते ते कालव त्या पिशवीसह पुन्हा समुद्रांत नेऊन ठेवितात. तेथे त्याच्या आंगांत घुसविलेल्या पिशवी. वर त्याचे मौक्तिकरसाचे थर वगैरे सुरू होतात. ह्या मौक्तिक रसाचे थर व फेरे त्या पिशवीवर पुरेसे जाड होईपर्यंत त्यास तेथे ठेवून मग वर काढतात आणि पिशवीचे त्याने तयार केलेले मोती काढून घेतात. साधारणपणे ५० कालवांतून १३ कालवांत अगदी पूर्ण वर्तुळ मोती निघतात. तीं तेज, रंग, आकार वगैरे गुणांत खऱ्या मोत्यापेक्षा काडीमात्र कमी असत नाहीत.

हा विषय समजण्यास अगदी सुलभ व्हावा म्हणून द्विशौक्तिक मौक्तिकजंतूची अवश्य तेवढी शरीररचना सांगतो. ह्याला दोन शिंपले असून त्यांचा जड भाग एकमेकांशी जोडलेला असतो. दोन्ही शिंपल्यांस लागून एक जाड त्वचा असते तिला दुर्लई म्हणतात. ही दुर्लई शिंपल्यास चिकटलेली असते व शिंपल्याबरोबर उघडते व मिटते. मात्र ही कडाकडे शिंपल्यापासून अलग असते. येथे तिच्या अग्राला बारीक बारीक कांटे असतात. ह्या कडांपासून निघालेल्या रसाने शिंपल्याचे बाहेरचा व मधला असे दोन भाग तयार होतात. तिसरा भाग जो मौक्तिकरसाचा असतो तो दुर्लईचा जो भाग शिंपल्यास चिकटलेला असतो त्याच्या बहिस्त्वचेच्या भागांतून निघालेल्या रसाने तयार झालेला असतो.

मिक्मोटो यांनी पहिलीं जीं अर्धमोतीं तयार केलीं त्यांची तऱ्हा तसेंच चिनई लोक जीं मोतीं अगर बुद्धाच्या मौक्तिकरसदिग्ध मूर्ति कालवांकडून तयार करून घेतात त्यांची तऱ्हा एकच. त्या तऱ्हेने ह्या प्राण्याच्या शिंपल्याच्या व दुर्लईच्या दम्यांन शिरकाविलेल्या पदार्थावर मोतीं तयार करून घेतात. ह्या पदार्थाची एक बाजू शिंपल्याच्या टणक भागास टेंकली जात असल्यामुळे टेंकल्या गेलेल्या भागावर फारसा मौक्तिकरसाचा थर न बसतां दुर्लईच्या बहिस्त्वचेतून तयार होणारा रस तिच्या जवळच्या

भागालाच जास्त लागत असे व ह्या कारणाने ह्या भागावर जास्त पुढे बसत. शिवाय दुलाईच्या जोराने तो पदार्थ शिंपल्याच्या बाजूस चिकटलाही जाई. ह्यामुळे शेवटीं कापून काढून घ्यावा लागे. ह्या कारणाने अर्ध-मौक्तिके तयार होत. वार्ट अथवा ब्लिस्टर मोती अशीच तयार होतात. कोणत्याही प्राण्याने शिंपल्यास भोक पाडून नंतर दुलाईच्या बहिस्त्वचेतून आंत प्रवेश केला तर त्याजबरोबर बहिस्त्वचेचा भाग आंत जाऊन अगर ही बहिस्त्वचा फारच पातळ व आपल्या आंगावरच्या (आंग खाजविले असतां) कातडीचा जसा भुसा निघतो त्याप्रमाणे असल्याने त्या प्राण्यावर गळून पडून त्या प्राण्याभोवतीं त्या बहिस्त्वचेचे पिशवीप्रमाणे आवरण तयार होऊन तिच्यापासून झरलेल्या रसाचे वेष्टण त्या आंत गेलेल्या पदार्थाभोवतीं सुरू होऊन मोती तयार होत. वाळूच्या कणावर अगर दुसऱ्या कोणत्याहि आंत शिरलेल्या विजातीय पदार्थावर त्याचप्रमाणे कोणताही विजातीय पदार्थ खुपू लागला म्हणजे त्यावर दुलाईच्या पृष्ठ-भागावर असलेल्या मौक्तिकरस तयार करण्याच्या कोशापैकी कांहीं कोशा तेथून आंत जाऊन त्या विजातीय पदार्थाभोवतीं पिशवी करतो. असा बहिस्त्वचेचा भाग असल्याशिवाय मोती तयार होत नाही असे अगदीं अलिकडचे मत बनलेले आहे. ज्याप्रमाणे दुलाईच्या त्वचेपासून मौक्तिकरस झरून शिंपल्याच्या अंतर्भागाला लागतो त्याचप्रमाणे तो येथे ह्या पिशवीपासून तयार होऊन तीभोवतीं पसरून मोती तयार होत.

३ कल्चर विरुद्ध खरी मोती

मुघोळचे मोतीवाले श्री. कल्लो व्यंकाजी हुद्दार हे कांहीं दिवसापूर्वी येथे येऊन मुकाम करून गेले. हे गृहस्थ जुन्या मोत्यांचे तुटकेपदर काढून टाकणे, त्यांस तजेला देणे, त्यांस मीठा रंग देणे, पोटनर अथवा गरज भरून काढणे आणि मोत्यांस आकार देणे हीं कामे चांगलीं करतात. हीं कामे सर्व देशीच औषधे व उपकरणे वापरून ते तयार करितात हा त्यांचा विशेष होय. ही कला त्यांजपासून अवगत करून घेण्याची उत्कट इच्छा झाल्याने मूल्य देऊन त्यांजकडून आम्ही ती कला आत्मसात् करून घेतली. त्यावेळीं कल्चर मोत्यांचा आलेला अनुभव पुढे वर्णिला आहे.

वात्स्यायनाच्या कामसूत्रांत चौसष्ट कलांचीं नांवां दिलीं आहेत. त्यांपैकीं चाळीसावी कला 'मणिरागाकरज्ञान' ही आहे. ह्यावरील ग्रंथ उपलब्ध नाही. ह्यांत रत्नांना व मोत्यांना निरनिराळे रंग देण्याची माहिती दिली आहे असें एका ग्रंथांत वाचण्यांत आले. श्री. हुद्दार यांस फक्त मीठाच रंग मोत्यांस देतां येतो. महत्त्वाचा जो गुलाबी रंग तो देण्याची कला त्यांजपाशीं नाही. तथापि, रंगाखेरीज इतर बऱ्याच गोष्टी शिकण्या-लायक असल्यानें त्यांचे प्रयोग तीन दिवस त्यांजकडून करविले.

मोत्यांस आकार देण्याकरितां ज्या शिलेचा त्यांनीं उपयोग केला त्या शिलेवर आमचेपाशीं असलेल्या एका मोठ्या कल्चर मोत्याचा बेढबपणा काढून टाकण्याकरितां आम्हीं त्या मोत्यास त्या शिलेवर घासण्यास उद्युक्त झालों असतां, श्रीयुत हुद्दार म्हणाले कीं, कल्चर मोतीं घासल्यास घासलेला भाग काळा पडेल. असें कां व्हावें हें त्यांस विचारतां "अनुभव असा आहे. कारण सांगतां येणार नाही" असें ते म्हणाले.

ह्यामुळे उत्सुकता जास्तच वाढली आणि मोतीं काळें पडल्यानें फुकट जाईल ह्याची पर्वा न करितां आम्हीं तें घासून पाहिलें, तर काय? अनुभव श्री. हुद्दारांच्या बोलण्याप्रमाणें आला! घासलेला भाग शेजारच्या त्रिनघासलेल्या भागापेक्षां काळा दिसूं लागला. नैसर्गिक मोतीं डौलदार करण्यांत आले होते. पण त्यांचा घासलेला भाग काळा पडलेला नव्हता. तो त्रिनघासलेल्या शेजारच्या भागाप्रमाणेंच चकचकीत व तेजयुक्त होता. आतां, जर कल्चर मोतीं सागरांतच, मोतीं काढणारे कालवांकडून तयार करून घेण्यांत येतात व तीं नैसर्गिक मोत्यांप्रमाणेंच मौक्तिकरसाच्या थरांनीं बनविलीं जातात असें प्रतिपादन करण्यांत येतें, तर हा असा फरक कां पडावा, हें कोडें कसें उकलावें? त्यावर विचार करतां, हें कल्चर मोतीं घासून पहावें असें वाटून घासण्यास सुरवात केली, पण त्या शिलेवर तें झराझर घासलें जाईना. म्हणून सहाण आणून तिजवर बरेंच घासून काढलें. ह्या घासण्यानें मोत्याचा एक जाड थर घासला गेला व आंतील कल्चर म्हणजे लक्ष्मणीच्या मोत्याच्या मध्यवर्ती पदार्थाची गोळी दिसूं लागली. त्यायोगें जिज्ञासा वाढली, म्हणून तें मोतीं अर्धें होईपर्यंत उगाळून

काढलें, व नंतर तें स्वच्छ पाण्यानें साफ धुवून काढून सूक्ष्मदर्शक यंत्राखालीं त्याचें निरीक्षण केलें; परंतु, वरच्या क्षिजून झालेल्या मोत्यांच्या सभोवारच्या गोल कडांत पापुद्रे असल्याचें प्रत्ययास येईना. क्षिजलेला थर एकच सलग आहे असें दिसून येई. रसाचे फेरे सूक्ष्म असतात, ते फिरवून फिरवून नैसर्गिक मोती तयार होत असतें व त्यामुळें त्या थरांत तसेच पापुद्रे दिसले पाहिजेत असें वाटत होतें. तसें न होतां मध्यवर्ती पदार्था-वरचा थर एकच असून तो जाड आहे असें दिसूं लागलें. म्हणून नैसर्गिक म्हणजे आपण ज्यास खरें म्हणत आहों तसें मोती घेऊन, तेंहि सहाणेवर घांसण्यास व ताडून पाहण्यास सुरवात केली व अर्धे मोती क्षिजवून धुऊन सूक्ष्मदर्शक यंत्राने कडा तयासून पाहूं लागलों. पण त्यांतहि पापुद्रे तुटलेले दिसून येईनात. म्हणून हें सूक्ष्मदर्शक यंत्र कमी शक्तीचें असावें असें ठरवून दोन्ही प्रकारच्या मोत्यांत पापुद्रे आहेत किंवा नाहीत याचा निर्णयच करून टाकण्याचे उद्देशानें दोन्ही मोत्यें अडकित्यानें कापून पाहण्याचें ठरविलें.

प्रथम, कल्चर मोती कापलें. यांत पापुद्रे असल्याचें आढळून आलें नाही. त्याच्या गर्भातील गोळीवरच्या जाड पापुद्याचे तुकडे होऊन ते गळून पडले. हा जाड पापुद्रा सूक्ष्म पापुद्यांचा नसून एकाच जाड थराचा झालेला आहे असें दिसून आलें. त्यांपैकीं एक तुकडा अंतर्भाग दिसावा म्हणून आडवा फोडला तरीहि पापुद्रा न दिसतां एकदम घट्ट झालेल्या रसाचे ते दोन तुकडे झाल्याचें दिसून आलें. ह्यावरून उघड आहे कीं, ह्या मोत्यांच्या गर्भातील गोळीवरील थर पापुद्यापापुद्यांचा नसून एकच एक सल्लक असा घातलेला जाड रस वाळून थर झालेला आहे.^१ हें ठरल्यावर खरें नैसर्गिक मोती आडकित्यानें फोडून पाहिलें.

१ हा भाग लिहून झाल्यावर नाशिकचे पिंणळे ह्यांचें सीलोन अथवा लंकादर्शनम् हें पुस्तक वाचण्यांत आलें. त्यांत पृष्ठ ८५-८६ वर वरील आमच्या अनुभवाचा अनुवाद आढळला. ते लिहितात कीं, कांदांत जसे एकावर एक पापुद्रे असतात तसे खऱ्या मोत्यांत एकावर एक असे पातळ थर असतात. कल्चर्ड मोती एकाच दाट थराचें बनलेले असतें.

तेव्हां थराचे तुकडे तुकडे होऊन एका वाटीसारख्या तुकड्यांतून दुसरा वाटीसारखा तुकडा निघू लागला. अर्थातच हा थर बारीक बारीक सूक्ष्म थरांनी बनत आला असे दिसून आले. असे कांहीं थर निघाल्यावर आंत एक लहानशी गोळीहि निघाली. ही खऱ्या मोत्यांतील अंतर्वर्ती म्हणजे गर्भातील गोळी होय. तिला जास्त निरखून पाहतां, तिजवर चमक दिसत आहे असे वाटू लागल्यामुळे, हलक्या हाताने आडकित्याने ती आणखी फोडली तेव्हां त्यावर मौक्तिक रसाचे आणखी कवच होतें असे आढळून आले. तें काढून घेतल्यावर आंत जवळ जवळ मातीच्या रंगाची मोठ्या वरीएवढी गोळी निघाली. तीवर मात्र रसाचे कवच नव्हतें. ती बहुधा चिकण मातीची बारीक गोळी आहे असे दिसते. ह्याप्रमाणे नैसर्गिक मोत्यांतील मध्यवर्ती, म्हणजे ज्या आधारावर खरे नैसर्गिक मोती तयार करण्यांत येतें, तो मोत्याच्या गर्भातील पदार्थ पहावयास सांपडला. खऱ्या मोत्यांतील गर्भातील पदार्थ एक वाळूचा कणहि असू शकतो, ह्याप्रमाणे केलेल्या प्रयोगाने खऱ्या नैसर्गिक मोत्याचे अनेक थर असून ते फार पातळ असतात आणि कलचर मोत्याचे गर्भातील गोळीवर एकच थर असून तो नैसर्गिकांतील थरांच्या मानाने फार जाड असतो, असे आढळून आले.

जपानी मोत्यांतील मध्यवर्ती गोळी नैसर्गिक मोत्यांतील मध्यवर्ती कणापेक्षां फार मोठी असते, हें पाश्चात्य रत्नावरील ग्रन्थकारही सांगतात. वेनस्टीन हे लिहितात की, (page '62) " If real, the nucleus should be very small etc. " म्हणजे खऱ्या मोत्यांतील मध्यवर्ती पदार्थ फार लहान असतो आणि पुढे त्याच पृष्ठावर लिहितात की, " With the cultured pearls the nucleus is generally large " कलचर्डे मोत्यांतील मध्यवर्ती पदार्थ बहुतेक मोठा असतो. आणखी " This (inserting of a round bead for producing a culture pearl) is still being carried on, though as it is now more a commercial than a scientific proposition the nuclei are getting larger and the nacreous coatings are getting thinner. "

ह्याप्रमाणे ले ६२ पृष्ठावर लिहितात. त्याचा अर्थ:-कलचर मोती तयार करण्याकरितां वाटोळी गोळी मध्यवर्ती म्हणून घालण्याचीच वद्दिवाट

हल्लीं सुरू आहे; पण आतां हा शास्त्रीय प्रश्न राहिला नसून त्यास व्यापारी स्वरूप प्राप्त झालें आहे आणि (त्यामुळें दिवसेंदिवस) गोळीचा आकार वाढत चालला आहे आणि मौक्तिकरसाचा थर कमी कमी होत चालला आहे.

आतां नैसर्गिक मोत्यांवर जो तजेला असतो तो थराच्या प्रत्येक पदरावर आंतील व बाहेरील दोन्ही बाजूंस असतो. ह्यामुळें एक बारीक थर झिजला कीं, दुसरा बारीक थर त्याखालीं व त्यालाहि मोत्याचा तजेला असल्यानें त्याचा एक थर झिजला तरी खालीं मोत्याचाच तजेला पहावयास मिळतो.

खरें मोती घासलें तरी काळें दिसत नाहीं. पण कल्चरचा मौक्तिक रसाचा थर जाड व एकत्र असतो. यामुळें तो झिजविला तर थराचा अंतर्भाग खुला दिसू लागतो व तेथें पापुद्रा नसल्यानें मोत्याचा तजेला असत नाहीं. ह्यामुळेंच हें मोतीं झिजविलें असतां झिजविलेला भाग काळसर दिसतो. असाही खुलासा आमच्या प्रयोगांत दिसून आला.

दुसरे एक कल्चर मोतीं झिजवून अंधें केलें, तेव्हां पहिल्या मोत्याप्रमाणेंच त्यांतही दर्शनी भाग मोत्याचे रसाचा व तजेल्याचा असून त्याच्या कडांत पापुद्रें दिसलें नाहींत. पहिल्या मोत्याप्रमाणें थर कापून अलग मात्र केला नाहीं. त्या थराची जाडी गर्भातील गोळीवर किती प्रमाणाची असते हें पहावयास मिळावें म्हणून तो कायम ठेविला आहे.

आतां पापुद्रे असण्याऐवजीं मध्यवर्ती गोळीवर एकच जाड थर म्हणजे लगदा कां असावा ही शंका राहते. आमच्या मते ह्याचें कारण मध्यवर्ती पदार्थाची व तो आंत घालण्याची तऱ्हा निराळी हें असावें. असा लगदा खऱ्या मोत्याच्या बोरोक आणि ब्लिस्टर ह्या जातींत दिसून येतो. ह्यासंबंधानें कॅटेलीसाहेब लिहितात कीं—

‘ When borers intrude through the shell the presentation is at once covered with nacre, and successive deposits are built up around it resulting in the nacreous warp known as a baroque. ’

म्हणजे एकाद्या प्राण्याने शिंपल्याला भोक पाडिले आणि त्यांतून तो आंत घुसला तर मौक्तिक रस एकदम थापडून देतो व असे थर वारं-वार चढवून दिल्याने त्या प्राण्यावर त्या रसाचा चामखिळासारखा आकार तयार होतो. त्याला बोरोक मोती म्हणतात. बिलिस्टर मोतीही असेंच, पण जास्त मोठा शत्रू भोक पाडून आंत आला तर त्याला होरून काढण्यासाठी सपासप रस त्याच्यावर बसवून केलेले असते. अशा वेळीं बहुधा या आकस्मिक व मोठ्या हल्ल्याचा प्रतिकार करण्याकरिता रसाचे फेरे फिरवीत न बसतां मौक्तिकजंतु मौक्तिकरसाचे लगदेच त्या प्राण्यावर बसवितो.

मिकिमोटोसाहेब त्याहूनहि जास्त अत्याचार या प्राण्यावर करितात. त्याचे दुर्लईस छिद्रे पाडून त्यांतून त्याच्या नाजूक शरीराला अगदी असह्य होण्याइतक्या मोठ्या गोळ्या त्याच्या शरीरांत घुसवितात आणि त्याही अनेक असल्यामुळे तो विचारा गरीब व निरुपद्रवी प्राणी अगदीं बेहोष होऊन जात असला पाहिजे. अशा वेळीं तो तात्पुरत्या उपायाचा अवलंब करून गोळीवर लगदाच बसवीत असला पाहिजे. असा एक थर अगर कांहीं थर झाल्यावर ते जाड असल्याने ते सुकण्यास बराच काळ व्यतीत होतो. पुढे लवकरच म्हणजे स्वस्थपणा येऊन फेरे सुरु होण्याचे सुमारास अथवा कांहीं थोडे फेरे झाल्यावर हा प्राणी बाहेर काढण्यांत येत असावा. हा भाग तयार झाल्यावर त्या प्राण्यास लवकर बाहेर न काढले तर त्या मोत्यावर पातळ थरांचे फेरेही फिरविले जात असतील. पण आमच्या दोनच मोत्यांच्या प्रयोगांत तसे आढळून आले नाही. ह्या दोन प्रयोगांत एवढे मात्र निःसंशय दिसले की, ह्या दोन कल्चर मोत्यांच्या गर्भातील गोळी नैसर्गिक खऱ्या मोत्याच्या गर्भातील गोळीपेक्षां कितीतरीपट मोठी होती. हा प्रयोग करून झालेले तुकडे, गोळ्या, कपळे व झिजविलेलीं मोत्यें कोणासही पहातां यावीं म्हणून आम्हीं बाळगून ठेविलीं आहेत. खरी पाहण्याची जिज्ञासा असणाऱ्या कोणाही चिकित्सकास तीं दाखवितां येतील.

जपानांतील मौक्तिकजंतूंची जात मार्टेन्सी ही आहे. ह्या जातीपेक्षां हिंदी कालव व्हल्यारिस ह्या निराळ्या जातीचे असून तें थोडे अधिक मोठे पण अधिक नाजूक असते. शिवाय दोन्ही ठिकाणच्या कालवांच्या आयुर्मर्यादांतही फरक आहे. हिंदी कालवे सहा वर्षांहून जास्त जगत

नाहींत. पण जपानांतील कालवें बारातेरा वर्षे जगतात. ह्या फरकामुळे त्यांपासून मिळणारी मोती एकाच रंगारूपाची व टिकाऊपणाची असणेही शक्य दिसत नाही. मि. डेकीन हे व्हल्यारिस ह्या जातीबद्दल लिहितांना म्हणतात की—

“ The pearls found in this species vary somewhat in beauty according to the district in which the mollusk (the oyster) occurs. (Vide Dakin page 12.)

एकच जात निराळ्या हवेंत गेली असता तिच्याहि कृतींत (मोत्यांच्या सौंदर्यांत) फरक पडतो, तर निराळ्या जातीनेच जपानच्या निराळ्या हवापाण्यांत तयार केलेल्या मोत्यांच्या रंगांत व पाण्यांत पुष्कळच फरक पडेल हें अगदी उघड आहे व त्याचे कारण असें की, खाऱ्या पाण्यांतील मोती विषुववृत्ताच्या दोन्ही बाजूंस वर व खाली तीस अंशांच्या आंत असलेल्या प्रदेशांत होतात. म्हणजे मोती तयार करणाऱ्या प्राण्यांस स्वाभाविकपणे उष्ण हवा लागते. जपान हा या मर्यादेच्या पुष्कळ बाहेर असून थंड प्रदेश आहे; पण तेथून महासागरांतील उष्ण पाण्याचा प्रवाह गेला असल्यामुळे तेथील समुद्रांत मोती तयार होणे शक्य झाले आहे. तथापि उष्ण कटिबंधांतील स्वाभाविक उष्णता आणि उष्ण प्रवाहाच्या पाण्याने मिळालेली तात्पुरती उष्णता ह्यांच्या प्रमाणांत स्वाभाविकपणेच फरक राहातो व त्याचा परिणाम कालवांवर होतो. शिवाय जपानच्या व इतर पौरात्य मोत्यांच्या रंगांत व पाण्यांत अगर तेजांत फरक होण्यास आणखी एक महत्त्वाचें कारण आहे. मोती हें चुन्याचें रत्न आहे. हा चुना कालवांना त्यांच्या रहिवासाच्या स्थानांतून व पाण्यांतून मिळत असतो. तो सर्व ठिकाणीं सारखाच व सारख्याच दर्जाची मिळत असणे शक्य नाही. हा चुना आत्मसात् करून त्याचा मौक्तिक रस (Mother of pearl) हे प्राणी तयार करित असतात. आणि शरीरांत घुसलेल्या अगर घुसविलेल्या कणांभोवतीं अगर गोळ्यांभोवतीं ह्या रसाचे फेरे फिरवून अगर त्यांवर हा रस थापडून मोती तयार करतात. असा प्रकार असल्यामुळे निरनिराळ्या टिकाणांच्या मोत्यांच्या स्वरूपांत, वजनांत, व काठिण्यांत फरक पडतो; म्हणून जगानी कल्चर मोत्यांचे रंगारूपांचा, वजनांचा व काठिण्यांचा इतर टिकाणांच्या

नैसर्गिक मोत्यांचे रंगारूपांशी, वजनांशी व काठिण्यांशी मेळ बसणें शक्य नाही; व ह्याच कारणानें मोत्यांचे खरे पारखी (असे फार थोडे असतात) मोती हातांत घेऊन, वजन अजमावून व रंगरूप पाहून तें कल्चर आहे कीं नैसर्गिक आहे हें बहुतेक बिनचूक सांगू शकतात. शिवाय पाश्चात्य ग्रंथकर्त्यांचीं मतेहि जपानी कल्चर मोत्यांचे रंगरूप वगैरे गुण इतर पौर्वात्य नैसर्गिक मोत्यांप्रमाणें असत नाहीत अशीच आहेत.

‘जेमस्टोन’ ह्या पुस्तकाचे कर्ते हरबर्ट स्मिथ साहेब हे आपल्या पुस्तकाच्या २९७ पृष्ठावर लिहितात कीं—

“In both cases (the cases of China and Japan) however the orient is deficient in quality.

म्हणजे चीन व जपान ह्या दोन्ही ठिकाणच्या (कल्चर) मोत्यांचें पाणी कमी दर्जाचें असतें. ही गोष्ट ते चीन व जपान येथील कल्चर मोत्यां-संबंधानें लिहितांना म्हणत आहेत. क्याटेली साहेबही मोत्यांवरील आपल्या ग्रंथांत पान ८९ वर स्मिथ साहेबांच्या म्हणण्याचाच अनुवाद करीत आहेत. ते लिहितात कीं—

“These pearls possessing orient were taken from the oysters found on the coast of Ceylon, Arabia and the Red Sea.”

म्हणजे असें पाणी असणारें मोतीं सिलोन, अरबस्तान व तांबडा समुद्र यांच्या निकान्यानजीक असणाऱ्या कालवांतून काढीत असत. हें वर्णन त्यांनीं प्राचीन काळचें म्हणजे जपानी कल्चर मोत्यांच्या उत्पादनाच्या पूर्वीच्या स्थितीबद्दल केलें आहे. त्यावेळीं जपानांत नैसर्गिक मोतीं काढण्याचा धंदा होताच असें असून तेथील मोत्यांचें ह्यांत नांव नाही. अर्थात् उत्तम पौर्वात्य पाणी ज्या मोत्यांना असतें अशा मोत्यांत जपानी नैसर्गिक मोत्यांचाहि समावेश होत नाही. मग कल्चरचा कोठून होईल? तिसरा ग्रंथकार मिकेल वेन्स्टीन ह्यानें आपलें “Precious and Semi-precious stones” हें पुस्तक अलीकडे म्हणजे सन १९३० सालीं लिहिलेलें आहे. त्यांत तो म्हणतो कीं,

“There is a large difference in the value of natural and culture pearls. The former retain their value to a large

degree and keep their natural form and sheen for a much longer period than do the cultured variety. In the latter the space between the deposited nacre and the bead tends to dry. In time the outer nacre splits and crumbles away as it is very thin in most cases. ”

ह्याचा अर्थ:—नैसर्गिक आणि कल्चर्ड मोत्यांच्या किंमतीत फार फरक असतो. नैसर्गिक मोत्यांची किंमत बरीच कायम राहते आणि त्यांचा स्वाभाविक आकार आणि पाणी हीं कल्चर्ड मोत्यांपेक्षा बरेच जास्त दिवस टिकतात. कल्चर्ड मोत्यांत घातलेली अन्तर्वर्ती गोळी आणि त्यावरचा भौक्तिक रसाचा थर यामधील जागा वाळू लागते; आणि कांहीं काल गेल्यानंतर पुष्कळ मोत्यांतील गोळ्यांवरचा भौक्तिकरसाचा थर फार पातळ असल्यामुळे फुटतो व गळून जातो.

शिवाय कल्चर मोती टिकाऊपणांत कमी येतील हें दुसऱ्या तऱ्हेनेंही दाखवितां येतें. त्याचें कारण त्यांतील मध्यवर्ती पदार्थ नैसर्गिक मोत्यांतील पदार्थापेक्षां भलत्याच प्रमाणांत म्हणजे फार मोठा असतो हें होय. एका व्यापाऱ्यानें काढिलेल्या पत्रकांत कल्चर मोत्यांचा मध्यवर्ती पदार्थ ‘कण’ असतो असें लिहिलें आहे. पण तें खरें नाहीं. पूर्वी क्वचित् बारीक मोती घालीत, पण हल्लीं निव्वळ भौक्तिकरसाच्या जाड गोळ्या तयार करून त्या घालीत असतात. ह्यामुळे वरचा पातळ पापुद्रा नैसर्गिक मोत्यांच्या सर्व पदरांपेक्षां जास्त लवकर शिजून जातो. त्यामुळे त्याचें आयुष्य कमी असतें.

नैसर्गिक मोत्यांना रंगारूपास जास्त टिकाऊपणा असण्याचें दुसरें कारण त्यांची पातळ पदरांची बांधणी हें होय. मोत्यांच्या रंगरूपाचा टिकाऊपणा अशा बांधणीवर अवलंबून असतो. नैसर्गिक मोती ज्या मध्यवर्ती पदार्थावर तयार होतें, तो पदार्थ वाळूच्या कणासारखा अगदींच क्षुल्लक असतो. भौक्तिकजंतूच्या गुलगुलीत, नाजूक देहाला तोहि असह्य होतो. म्हणून त्यावर मृदु भौक्तिकरसाचे फेरे फिरवून त्यांस गुळगुळीत करण्याचा व असें करून त्याचें खुपणें कमी करण्याचा हा जंतु प्रयत्न करतो. त्यावर रसाचा एक फेरा फिरवून तो वाळला

म्हणजे त्यावर दुसरा फेरा फिरावयाचा असतो. पहिल्या फेऱ्याच्या सुकण्यांत रवेदारपणाची (crystallization ची) क्रिया होऊन तीमुळें अगर फेऱ्या-नंतर होणाऱ्या अन्य कांहीं रासायनिक क्रियाशक्तीनें ह्या फेऱ्याच्या पातळ पापुद्र्यावर एक प्रकारची जिल्हई चढते व तो चकाकित व पाणीदार बनतो. एक फेरा असा तयार होऊन गेल्यावर हा जंतु त्यावर रसाचा दुसरा फेरा फिरवूं लागतो. तो ह्याचप्रमाणें तयार झाल्यावर तिसरा. असे अनेक फेरे दिले गेल्यामुळें मोत्याची बांधणी घट्टही होते. शिवाय आंत गेलेल्या पदार्थास गुळगुळीत वाटोळेपणा आल्यानें तो खुपेनासा होऊन त्यावर चंद्रमाच्या गोड तेजाप्रमाणें तेज चढलेलें असें हें मोती तयार होतें. ही अशी नैसर्गिक मोत्यांची रचना असल्यामुळें छेद घेतल्यास त्या छेदा-वर एकसारखी लहानापासून कडेकडे मोठ्यापर्यंत सर्व वर्तुळेंच दिसतात. शिवाय नैसर्गिक मोती फोडलें तर त्याचे बारीक बारीक पापु-द्र्याचे कमी जास्त वर्तुळ असे तुकडे निघतात. हे पाहिले असतां त्या मोत्यांची रचना ध्यानी येते. शिवाय कितीहि विरविरित पापुद्रा असो, त्यावर जिल्हईचें पाणीहि असतेंच. त्यामुळें नैसर्गिक मोत्यांवरचा एक पापुद्रा झिजून गेला तर (क्वचित् अपवाद सोडून) आंतील पापुद्राही पाणीदार निघतो व मोत्याचें मोतीपण कायम राहतें. क्वचित् अपवाद सोडून असें म्हणण्याचें कारण केव्हां केव्हां जंतूच्या हातून मौक्तिक रसाच्या-ऐवजीं जंतूचा शिंपला ज्या रसाचा होतो त्या रसाचा फेरा चुकून दिला जातो. अशा फेऱ्यास मोत्याचा रंग असत नाही. तसा फेरा असल्यास मात्र निघून गेलेल्या पापुद्र्याचे आंत निराळा रंग आढळतो. पण असें हें क्वचित् घडतें. अशी ही खऱ्या मोत्याची रचना असून आम्ही त्याबद्दल खरी मोती फोडून खात्री करून घेतली आहे. जिज्ञासूसही हे कपळे स्वामच्यापार्शीं अजूनहि पाहण्यास मिळतील. अशा फेऱ्याफेऱ्यांच्या बांधणी-मुळें मोत्यास घट्टपणाही येतो. कित्येक वेळीं तर नैसर्गिक मोती इतकें टणक आढळतें कीं, त्याला फोडण्यास घणाचा उपयोग करावा लागतो.

डेकीन साहेब आपल्या मोत्यांवरील ग्रंथांत पृष्ठ ६१ वर नैसर्गिक मोत्यांविषयीं लिहितात कीं,

“ So far as hardness is concerned, it may be said that some pearls require a hammer to break them. This property varies greatly with the structure of the pearl.”

यांतील शेवटचे वाक्य असे आहे कीं, हा कठिणपणा मोत्यांच्या रचनेप्रमाणे कमीजास्त होत असतो. ही कठिणपणा आणण्यासारखी पुष्कळ फेऱ्यांची रचना कल्चर मोत्यांत नसते. अर्थात् त्यांस कठिणपणा कमी असतो. या कठिणपणावरच टिकाऊपणा अवलंबून असतो. रत्नाची योग्यता येण्यास ह्या कठिणपणाची अत्यंत आवश्यकता असते. हिरा अत्यंत कठिण म्हणून तो अत्यंत टिकाऊ. ह्यापेक्षां कमी, पण इतरापेक्षां पुष्कळच कठिणपणा शनि आणि माणिक ह्यांमध्ये असल्याने हिऱ्यापेक्षां कमी पण इतरापेक्षां जास्त टिकाऊ शनि व माणिक हीं रत्नें असतात. तात्पर्य कीं कठिणपणाबरोबर टिकाऊपणा असतो. तो कठिणपणा कल्चर मोत्यांत कमी असल्याने तीं कमी टिकाऊ आहेत हें उघडच आहे.

ह्यावरून असें दिसून येईल कीं:—

- १ कल्चर मोत्याची झीज झाली म्हणजे तें मोतीं काळें पडेल.^१
- २ कांहीं वर्षे वापरल्यावर मौक्तिकरसाचा थर झिजून जाईल व आंतील गोळी दिसू लागेल व नंतर मोतीं वापरण्यास नालायक होईल.
- ३ कल्चर मोत्यांतील अंतर्वर्ती पदार्थ म्हणजे गर्भातील गोळी फारच मोठी असल्याने हें मोतीं, मोतीं म्हणून वापरण्यास फार वर्षे उपयोगी पडणार नाहीं.
- ४ प्रत्येक कल्चर मोत्यांत सारखेच जाड अन्तर्वर्ती पदार्थ असत नाहीत. मोठ्या मोत्यात ते फार जाड असतात. लहानांत कमी जाड असतात. त्यांच्या कमीजास्त जाडीप्रमाणे मोत्यांचें कमीजास्त आयुष्य ठरेल.

५ थोडक्या श्रमांत जास्त पैसा मिळविण्याच्या तृष्णेने हे मध्यवर्ती पदार्थ पहिल्यापेक्षां जास्त जाडे घातले जाऊं लागले आहेत असे समजतें;

^१ काळें पडेल म्हणजे मोत्यांसारखा रंग व तेज जाऊन तें मळकट होईल.

अलीकडे कल्चर मोत्यांची विशेषतः मोठ्या मोत्यांची किंमत फारच उतरली आहे, तिला दुसऱ्या कारणाबरोबर हेहि एक कारण असावे.

ह्याप्रमाणे अनुमाने निघतात. हीं कल्चर अथवा लावणीचीं मोत्ये प्रचारांत आल्यास अजून फार वर्षे झालीं नाहीत म्हणून कोणते दोष किती कालांत दिसून येतील हे सांगतां येणे शक्य नाही. त्यास कांहीं वर्षांचा अवधि लागेल. ह्या केलेल्या वरील प्रयोगावरून ज्यास जो बोध घ्यावा-याचा असेल तो त्याने घ्यावा. आम्हीं जास्त मोत्ये फोडून पाहू शकलो नाही. ह्यामुळे ह्यांतील कांहीं अनुमाने कांहीं प्रमाणांत कमीजास्त करावींहि लागतील ह्याची जाणीव आम्हांस आहे. म्हणून ज्यास जास्त खात्री करून घेणे असेल त्यांनीं जास्त घस सोसून प्रयोग करून पहावे. अथवा मोत्यांचे व्यापान्यांकडे फुटकी मोती अल्प किंमतीस विकत मिळतात तीं घेऊन पडताळापहावा.

लहान मध्यवर्ती गुलिका वापरली आणि अवश्य तितका काल जाऊं दिला तरीहि जपानी कल्चर मोत्यांस सीलोनी किंवा दुर्मुजी नैसर्गिक मोत्यांची बरोबरी करतां येणारच नाही. ह्याचें कारण, बीजाचा व परिस्थितीचा फरक हे आहे. जपानी समुद्रांतील मोतीं करणाऱ्या कालवांची जात सीलोनच्या समुद्रांतील व इराणच्या आखातांतील मोतीं करणाऱ्या कालवांच्या जातीहून भिन्न आहे. ह्यामुळे बीजाचा फरक होतो. शिवाय जपानी समुद्राच्या तळाच्या चुन्याची स्थिति व तेथील हवापाणी आणि सिलोन व इराणचें आखात येथील स्थिति एकच असणें शक्य नाही. ह्यामुळे त्या चुन्याचें मौक्तिकोत्पादक रासायनिक द्रव्य अगदीं एकाच स्वरूपाचें होणें शक्य नाही. ह्यामुळेहि हा फरक राहणार आहे.

४ कल्चर मोत्यांचा दर्जा

वरील विधानावरून कल्चर मोतीं कोणी वापरूंच नये असें आमचें मत असल्याचा कोणाचा ग्रह झाल्यास तो खरा नव्हे. 'नास्तिमूलमनौषधं' 'योजकस्तत्र दुर्लभः' इ. हा श्लोक सर्वसाधारण व्यवहारांत नेहमीं लागणारा आहे. कल्चर मोतीं वापरूंच नये असें आमचें मुळींच म्हणणें नाही.

कल्चर काय किंवा बसराई काय दोन्ही प्रकारचीं मोतीं विदेशीच. सीलोनो मोत्यें मात्र कांहींशीं स्वदेशी म्हणतां येतील. पण त्यांची पैदास फारच कमी व अनियमित. ह्यामुळें मोत्यांत घातलेला पैसा कायमचा हिंदुस्थान देशास पारखा होतो. ह्यामुळें हल्लींच्या मंदीच्या दिवसांत तर ह्या कार्मीं जितका पैसा कमी खर्च होईल तितका चांगला. शिवाय हौसच करावयाची तर ती कल्चर मोत्यांनींही पुरी होते. कारण कल्चर मोतीं निवडून काढून विकण्यांत येत असल्यामुळें बहुतेक वेळां नैसर्गिकपेक्षाहि तीं रंगारूपाला जास्तच चांगलीं दिसतात. म्हणून तीं वापरण्यानें आनंदांत कमीपणा नाही. विचार करण्यासारखी गोष्ट टिकाऊपणाची पण कल्चर मोतीं किती दिवसांत निरुपयोगी होतील हें अद्याप ठरावयाचें आहे. बहुधा नेहमींच्या वापरांत तें १५ ते २० वर्षें टिकण्यास हरकत नसावी असें वाटतें. हें खरें ठरल्यास किंमतीच्या मानानें त्याचा नवीन दागिना विकत घेणेंही परवडेल. शिवाय नथीसारखा दागिना नेहमीं वापरण्यांत येत नसल्यानें तो तर पुष्कळ वर्षें टिकेल. म्हणून तारतम्य वापरून कोणत्या प्रकारच्या मोत्यांत पैसे घालावे हें प्रत्येकानें ठरवावें. आमच्या मते कुड्यांसारखे आंगावर नेहमीं राहणारे दागिने नैसर्गिक खऱ्या मोत्यांचे करावे; व नथीसारखे वेळप्रसंगीं वापरण्याचे दागिने कल्चर मोत्यांचे करावे. आम्ही हें फक्त दिग्दर्शन केलें आहे. प्रत्येकानें आपला सारासारविचार पहावा.

आतां कल्चर मोत्यांच्या खरेदीसंबंधानेंहि थोडें लिहिलें पाहिजे. कल्चर मोत्यांचे मोठे लाट ५० ते १०० तोळे वजनाचे किंमतींत ५ रुपये तोळ्यापासून १०० रुपये तोळ्यापर्यंत असणारे असे पुष्कळ येतात. पण त्यांत मोतीं सरसकट असतात. तशीं घेणें सोईचें नसतें. कल्चर मोत्यांचे फुटकळ व्यापाऱ्यांच्या जपानी कंपन्या मुंबईस आहेत त्यांतून तोळ्याच्या वजनानें मिळणारीं मोतीं ध्यावीं; आणि नंतर निवड करून प्रति लावाव्या. ह्या दुकानांतून घाऊक खरेदी करणें असल्यास मोत्याचा भाव रतलावर मिळतो. अर्थात् तो जास्त सवलतीचा असतो. जपान इंडस्ट्रियल रिपोर्टांत तर भाव टनावर दिलेला असतो. एवढा अवाढव्य हा व्यापार आहे. असो. जपानी कंपन्यांतून निरनिराळ्या

दर्जांच्या मोत्यांची पाकिट तयार असतात. त्या त्या दर्जाचा क्रमांक (Number) त्यांस लाविलेला असून वजनहि त्यावर मांडलेले असते. ते म्हणजे जपानी शब्द मूमेट (मोम ?) ने लिहिलेले असते. आंकडे इंग्रजी व अंश दशांशांत मांडलेले असतात. १ M M* म्हणजे साधारण $\frac{1}{2}$ तोळा होतो. एक तोळ्याच्या ६२ रती होतात. रतीवरून चव केले जातात. त्यावरून आपणांस कल्चर मोत्यांचा चवाचा भाव ठरविता येतो व ह्या पाकिटांवर मोत्यांची संख्याहि लिहिलेली असल्याने प्रत्येक मोत्याची किंमत अजमासाने कळते.

जपानांत चव नाहीत. पण आपले व्यापाऱ्यांनी नैसर्गिक खऱ्या मोत्यांच्या व्यापाराच्या वहिवाटीशी साम्य दाखविण्याकरितां कल्चर मोत्यांच्या व्यवहारांतही चवांवर मोती विकण्याची पद्धति सुरू केली आहे. ती कांहीं वावगी नाही. ह्या पद्धतीमुळे मोत्यांची निवड करून त्यांच्या प्रति लावून किंमत ठरवितां येते व त्यामुळे नैसर्गिक खरी आणि कल्चर खरी ह्या मोत्यांच्या किंमतीची तुलना करणेहि सुलभ होतें व ग्राहकांस चवांवर मोती विकत घेण्याची नेहमीची संवय असल्याने त्यांसही ते सोयीचें पडतें. मात्र अशा करण्याने व्यापाऱ्यांस नफ्याचा अंश बिनमाहितगार ग्राहकांपासून जास्त घेतां येतो. त्याच कारणाने हल्लीं कल्चर मोत्यांची दुकाने बरीच वाढली आहेत. पण त्यामुळे स्पर्धा (Competition) सुरू होऊन नवीन नवीन व्यापारी चवांचा भाव उतरीत आहेत, ही गोष्ट अशा चार दुकानांस भेट दिली असतां आढळून येते.

हल्लीं कल्चर खऱ्या मोत्यांच्या किंमती त्याच दर्जांच्या नैसर्गिक खऱ्या मोत्यांच्या किंमतीच्या सुमारे $\frac{1}{2}$ आहे. एका व्यापाऱ्याने ती $\frac{1}{2}$ असते असे आपल्या जाहिरातीत कबूलही केले आहे. ह्यावरून ग्राहकांस कल्चर मोत्यांच्या किंमतीची कल्पना येईल. व्यापारी लोकांस जो तोळ्याचा भाव मिळतो त्यावरून त्यांस चवाचा भाव ह्याहूनही पुष्कळ कमी पडतो. पण त्यांस त्या मोत्यांची निवड करावी लागते व नफाही झाला पाहिजे. तेव्हां ह्या दोहोंचा विचार करून त्यांचा भाव ठरवावा.

* १० फुन = १ कुन, १० कुन = १ मोम, ३ मोम = १ तोळा.

मालाची निवड करतांना कोंवळा माल घेण्याचें टाळावें. तो माल दिसण्यांत जून असा दिसत नाही. ही नजरेची पारख आहे. जसा हिऱ्याचा टणकपणा नजरेनें ओळखतो तसाच कल्चर मालाचा जूनपणाहि नजरेनें ओळखतो. कोंवळा माल म्हणजे मोती योग्य कालपर्यंत समुद्रांत न ठेवितां घाई करून लवकर काढलेला माल होय. मालावर काळसरपणा असला तर तो जून समजू नये. ज्यावर टणकपणा भासेल तो जून समजावा. ही नजर सवईनें येते. जितकें मोती मोठें तितकी त्यांत अन्तर्वर्ती गोळी मोठी असते व ह्यामुळे मौक्तिकरसाचा थर त्या मानानें कमी असतो. म्हणून मोठ्या मोत्यांची किंमत लहान मोत्यांच्या वजनाशीं प्रमाणबद्ध असत नाही. ह्याचाच अर्थ असा कीं, मोठ्या मोत्यांचा चवांचा दर पुष्कळ कमी असतो. जेथें टपोर मोठा दाणा लावणें असेल तेथें अशीं मोतीं माफक दरानें विकत घेऊन लावणें सोयीचें पडतें. नथीमध्ये जाडी व बारीक अशा दोन्ही प्रकारचीं मोतीं लागतात म्हणून नथीचा समुच्चय चवांचा भाव बराच कमी म्हणजे १ ३/४ रुपया चव ते ३ १/४ रुपये चवपर्यंत असतो. पण कुड्यांस साधारणपणें मोती लहान व एकसारखीं लागत असल्यानें त्यांचा भाव दर चवास ५ रुपयेपासून ८ रुपयेपर्यंत असतो. चिंचपटीलाहि मोतीं लहान व सारखीं लागतात. ह्यामुळे ह्यांचाहि भाव सुमारे ३ ते ४ रुपयेपर्यंत असतो. वरील सर्व मोती उत्तम गुलाबी रंगाचीं मिळतात.

बांगड्यांकरितां जीं कल्चर मोतीं वापरतात त्यांचा रंग गुलाबी असतो. हीं मोतीं मनोहर दिसतात; पण ह्यांचा हा रंग स्वाभाविक नसून त्यांस कांहीं तरी पक्का रंग दिलेला असतो अशी कांहीं चिकित्सक व्यापाऱ्यांची समजूत आहे. हा माल फार येतो व फार खपतो. ह्याचे सर जपानांतूनच ओंवलेले असे येतात. सर्व लोक ह्याच्या रंगालाच उत्तम गुलाबी रंग समजतात. हे दाणेहि आठ रुपये चवपर्यंत मिळतात.

कल्चर आणि नैसर्गिक मोत्यांची निवड करणें फार कठिण आहे. नुसत्या नजरेनें व हातांत घेऊन वजन अजमावून पारख करणारे व्यापारी क्वचित् असले तरी इतर व्यापारी काय, कीं सामान्य जनता काय, ह्या दोहोतील फरक सांगू शकत नाहीत. ह्यांची खरी परीक्षा यंत्रानें मात्र होते. मुंबईच्या जव्हेरी बाजारांत मोतीं आणि जवाहिर ह्यांचा धर्मकांटा

आहे. त्या ठिकाणी ही परीक्षा करण्यांत येते. (येथे इतर रत्नांचीही परीक्षा करण्याची सोय आहे.) परीक्षा करण्याची फी थोडी असून परीक्षे-बद्दल दाखला देण्यांत येतो व मिळालेली फीही धर्मखात्यांत दिली जाते. युरोप आणि अमेरिका ह्या खंडांत अशा पारखण्याच्या सोई आहेत. पण बाकीच्या पृथ्वीच्या भागांत मुंबईशिवाय मोती तपासण्याची अशी सोय नाही. मुंबईस दोन प्रकारांनी मोत्यांची परीक्षा केली जाते. मोत्याला छिद्र पाडलेले असल्यास ते इंडोस्कोप ह्या यंत्राच्या साहाय्याने तपासले जाते. ह्या यंत्राला एक पोकळ सुई लावून तीत पाण्याच्या वाफेच्या प्रखर प्रकाशाचे केंद्रीकरण केलेले असते. ह्या सुईवर पारखावयाचे मोती चढविले म्हणजे ह्या प्रकाशाने त्याचा अंतर्भाग प्रकाशित होतो. व ते मोती कल्चर असल्यास मोत्यांत घातलेली गोळी दिसते व तीमुळे मधला भाग काळा दिसतो. ह्या यंत्राने अविष मोती तपासतां येत नाहीत म्हणून दुसरे यंत्र आणिलेले आहे. हे दुसरे यंत्र क्ष किरणाच्या (एक्सरे) नळीचे आहे. ती नळी एका काळ्या टेबलाच्या आंत बसविलेली असते. त्या टेबलाला एक फट ठेवलेली असते. तीतून क्ष किरण प्रकाश देतात. ह्या फटीवर पडदा पसरून त्यावर मोती ठेवून तपासतां येतात. ह्यामुळे विंधलेली, विन विंधलेली शेंकडों मोती झपाझप तपासतां येतात. मौक्तिक हार न विसकटकतां जशाचा तसाच तपासतां येतो. त्याने निर्णय होतोच. पण संशय राहिल्यास मोत्यांचा एक्सरे फोटोग्राफ घेऊन त्यांची विस्तृत तपासणी करून निर्णय देण्यांत येतो.

आधुनिक कृत्रिम खोटी मोती करण्याच्या क्रियेचे वर्णन आमच्या ' रत्नप्रदीप खंड १ च्या ' १५ व्या प्रकरणांत दिले असून प्राचीन हिंदी कृत्रिम मौक्तिकांची माहितीहि ह्या भागांत आलेली आहे. तसेच कल्चर मोत्यांसंबंधाची उपलब्ध असलेली सर्व माहिती त्याच खंडाच्या प्रकरण १६ मध्ये दिलेली आहे. ह्यामुळे ती वाचण्याची वाचकांस शिफारस करीत आहों.



समारोप



रत्नत्रितयग्रंथीं ग्रथिणीं मीं जीं महत्प्रयासाने ।
त्यांतुनि निरखुनि रत्ने वणिग्यलीं येथ सूक्ष्मरूपाने ॥१॥
खांबेटेकुलसंभव लक्ष्मणसुत माधवाख्य जो लाने ।
रचिला ग्रंथ पहा 'लघुरत्नपरीक्षा' विशिष्ट नामाने ॥२॥
अल्पायासें होते रत्नपरीक्षा सुसाध्य ही माते ।
रत्नव्यवसायरता जनता पाहुनि बरोत मोदाते ॥३॥
अठाराशे त्रेसष्टीं शक्तिं श्रावण शुद्ध पंचमीला जो ।
जन्मा आला ग्रंथ व्यवसायी विबुधजनकरीं साजो ॥४॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु.

शुभं भवतु । भवतु शुभम् ।

परिशिष्ट पहिलें

मोत्याचे रतीवरून चव करण्याच्या हिशेबाचें कोष्टक

खाली दिलेल्या कोष्टकांत मोत्याच्या एका दाण्याच्या वजनाच्या रती पहिल्या सदरांत (कालमांत) दाखविल्या आहेत. तितकें वजन एका दाण्याचें भरल्यास त्याचे किती चव तें त्याच्याजवळच्या दुसऱ्या कालमांत दाखविलें आहे. ह्याप्रमाणें एका दाण्याचे वजनावरून त्याचे चव समजावे. जेव्हां या पहिल्या सदरांत दाखविलेल्या रती एकाहून जास्त मोत्यांच्या असतील तेव्हां एका मोत्याच्या रतीपुढें जो चवांचा आंकडा आहे त्यास त्या मोत्यांच्या संख्यानें भागावें. येतील ते तितक्या मोत्यांचे चव झाले.

उदाहरण—पुढील कोष्टकांत एका मोत्याचें वजन दोन रती असल्यास त्याचे चव २।४ असे दाखविले आहेत. २।४ म्हणजे सवादोन चव, चार दोकडे. शंभर दोकडे म्हणजे एक चव व ६। बदाम म्हणजे एक दोकडा. हें कोष्टक लक्षांत ठेवावें. आतां हे दोन रती जर ४ मोत्यांमिळून झाले असतील तर ह्या दोन रतींच्याजवळच्या चवांच्या आंकड्यास म्हणजे २।४ चवांस चारनें भागलें पाहिजे. म्हणून $\frac{२।४}{४} = \frac{२२९}{४}$ दोकडे = $५७\frac{१}{४}$ = याचे चव ॥. चव आणि ७। दोकडे (॥.७।) हे चार मोत्यांचे चव झाले. ह्याप्रमाणें समजावें.

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|------|----------------|-------|----------------|
| ० | ००३॥ | ०।। | ०।२॥ |
| ०। | ०।० | ०।।। | ०।५॥ |
| ०= | ०।।० | ०।।= | ०।८॥ |
| ०=॥ | ०१। | ०।।=॥ | ०।२२ |
| ०= | ०२ | ०।।= | ०।० |
| ०=॥ | ०२॥ | ०।।=॥ | ०।३॥ |
| ०। | ०३॥ | १ | ०।७। |
| ०।०॥ | ०४॥ | १०॥ | ०।१०॥ |
| ०। | ०५॥ | १० | ०।१४॥ |
| ०।॥ | ०६॥ | १०। | ०।१८॥ |
| ०।= | ०८ | १०= | ०।२२॥ |
| ०।=॥ | ०९। | १०=॥ | ०।।१॥ |
| ०।= | ०१०॥ | १०= | ०।।५॥ |
| ०।=॥ | ०१२॥ | १०=॥ | ०।।१० |
| ०।० | ०१४। | १० | ०।।१४॥ |
| ०।०॥ | ०१६ | १०। | ०।।१९ |
| ०। | ०१८ | १० | ०।।२३॥ |
| ०।। | ०२० | १०। | १०३। |
| ०।= | ०२२। | १०= | १०८। |
| ०।=॥ | ०२४॥ | १०=॥ | १०१३। |
| ०।= | ०।२ | १०= | १०१८। |
| ०।=॥ | ०।४॥ | १०=॥ | १०२३॥ |
| ०।० | ०।७ | १०॥ | १०३॥ |
| ०।। | ०।९॥ | १०। | १०९। |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|-------|----------------|-------|----------------|
| १॥- | १॥१४॥ | २॥- | ३०६। |
| १॥-॥ | १॥२०॥ | २॥-॥ | ३०१४॥ |
| १॥= | १॥१। | २॥= | ३०२३ |
| १॥=॥ | १॥७ | २॥=॥ | ३।६॥ |
| १॥≡ | १॥१३ | २॥≡ | ३।१५। |
| १॥≡॥ | १॥१९ | २॥≡॥ | ३।२४ |
| १॥। | १॥। | २॥ | ३।८ |
| १॥।॥ | १॥।६॥ | २॥।॥ | ३॥१७ |
| १॥।- | १॥।१३ | २॥।- | ३॥।१ |
| १॥।-॥ | १॥।१९॥ | २॥।-॥ | ३॥।१०। |
| १॥।= | २०२। | २॥।= | ३॥।१९॥ |
| १॥।=॥ | २०८ | २॥।=॥ | ४०४ |
| १॥।≡ | २०१'५ | २॥।≡ | ४०१३॥ |
| १॥।≡॥ | २०२२ | २॥।≡॥ | ४०२३। |
| २ | २।४ | २॥। | ४।८। |
| २०। | २।११ | २॥।।॥ | ४।१८ |
| २०- | २।१८॥ | २॥।- | ४।।३ |
| २०-॥ | २॥।१ | २॥।-॥ | ४।।१३। |
| २०= | २॥।८॥ | २॥।= | ४।।२३॥ |
| २०=॥ | २॥।१६। | २॥।=॥ | ४॥।८॥ |
| २०≡ | २॥।२४ | २॥।≡ | ४॥।१९। |
| २०≡॥ | २॥।७ | २॥।≡॥ | ५०४॥ |
| २०। | २॥।१५ | ३ | ५०१५॥ |
| २।॥ | २॥।२३ | ३०। | ५।१। |

| रती | एक दाण्याचे चक्र | रती | एक दाण्याचे चक्र |
|--------|------------------|-------|------------------|
| ३०- | ५१२१ | ३॥- | ८१७॥ |
| ३०-॥ | ५१२३१ | ३॥-॥ | ८१२१॥ |
| ३०= | ५॥९॥ | ३॥= | ८॥१०॥ |
| ३०=॥ | ५॥२०॥ | ३॥=॥ | ८॥२४॥ |
| ३०≡ | ५॥॥७ | ३॥≡ | ८॥॥१३ |
| ३०≡॥ | ५॥॥१८॥ | ३॥≡॥ | ९०२॥ |
| ३१ | ६०५ | ४ | ९०१६॥ |
| ३१-॥ | ६०१६॥॥ | ४०॥ | ९१६ |
| ३१- | ६१३॥ | ४०- | ९१२०॥ |
| ३१-॥ | ६११५॥ | ४०-॥ | ९११० |
| ३१= | ६१२२॥ | ४०= | ९१२४॥॥ |
| ३१=॥ | ६११४॥ | ४०=॥ | ९११४॥॥ |
| ३१≡ | ६१११॥॥ | ४०≡ | १००४॥ |
| ३१≡॥ | ६१११४॥ | ४०≡॥ | १००१९॥॥ |
| ३१॥ | ७०१॥॥ | ४१ | १०१९॥॥ |
| ३१०-॥ | ७०१४॥ | ४१-॥ | १०॥ |
| ३११- | ७१२ | ४१- | १०॥१५॥ |
| ३११-॥ | ७११४॥॥ | ४१-॥ | १०॥५॥॥ |
| ३११= | ७१२॥॥ | ४१= | १०॥२१॥॥ |
| ३११=॥ | ७११५॥॥ | ४१=॥ | ११०१२॥ |
| ३११≡ | ७११४ | ४१≡ | १११३ |
| ३११≡॥ | ७११७॥ | ४१≡॥ | १११९ |
| ३११॥ | ८०५॥ | ४१॥ | ११११० |
| ३११०-॥ | ८०१९ | ४१०-॥ | १११११॥ |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|-------|----------------|-------|----------------|
| ४॥- | ११॥१७॥ | ५॥- | १६०१६॥॥ |
| ४॥-॥ | १२०९ | ५॥-॥ | १६१११ |
| ४॥= | १२१०॥ | ५॥= | १६१५ |
| ४॥=॥ | १२११७ | ५॥=॥ | १६१२४ |
| ४॥≡ | १२१८॥॥ | ५॥≡ | १६११८॥॥ |
| ४॥≡॥ | १२११०॥ | ५॥≡॥ | १७०१३१ |
| ४॥॥ | १२१११७॥ | ५॥० | १७०८ |
| ४॥॥०॥ | १३०९॥ | ५॥०॥ | १७०२१॥ |
| ४॥॥- | १३११॥ | ५॥- | १७०२२॥ |
| ४॥॥-॥ | १३११९ | ५॥-॥ | १७०१७॥ |
| ४॥॥= | १३१११॥ | ५॥= | १८०१२॥ |
| ४॥॥=॥ | १३११४ | ५॥=॥ | १८०७॥ |
| ४॥॥≡ | १३११२१॥ | ५॥≡ | १८०३१ |
| ४॥॥≡॥ | १४०१४१ | ५॥≡॥ | १८०२३॥ |
| ५ | १४०७ | ५॥० | १८०१९ |
| ५०॥ | १४०१ | ५॥०॥ | १९०१४॥॥ |
| ५०- | १४०१८१ | ५॥०- | १९०१०॥ |
| ५०-॥ | १४०१११॥ | ५॥०-॥ | १९०१६ |
| ५०= | १५०४॥ | ५॥०= | १९०२१ |
| ५०=॥ | १५०२३ | ५०=॥ | १९०२३॥ |
| ५०≡ | १५०१६॥ | ५०≡ | २००१९॥॥ |
| ५०≡॥ | १५०१०१ | ५०≡॥ | २०११६ |
| ५१ | १५०१४ | ६ | २००१२॥ |
| ५१॥ | १५०२२॥ | ६०॥ | २००१९ |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|------|----------------|------|----------------|
| ६०- | २१०५॥ | ६॥- | २६॥८॥ |
| ६०-॥ | २११२। | ६॥-॥ | २६॥८। |
| ६०= | २११२४। | ६॥= | २७०७॥ |
| ६०=॥ | २१॥२१। | ६॥=॥ | २७।७॥ |
| ६०≡ | २१॥१२८। | ६॥≡ | २७।७। |
| ६०≡॥ | २२०१५॥ | ६॥≡॥ | २७॥७। |
| ६। | २२।१२॥ | ७ | २८०७। |
| ६।-॥ | २२॥१०। | ७०॥- | २८।७। |
| ६।- | २२॥७॥ | ७०- | २८।७॥ |
| ६।-॥ | २३०५॥ | ७०-॥ | २८॥७॥ |
| ६।= | २३।३। | ७०= | २९०८। |
| ६।=॥ | २३॥१। | ७०=॥ | २९।९ |
| ६।≡ | २३॥२४। | ७०≡ | २९॥९॥ |
| ६।≡॥ | २३॥२२। | ७०≡॥ | २९॥१०। |
| ६॥० | २४०२०॥ | ७। | ३००११। |
| ६॥०॥ | २४।१८॥ | ७०॥- | ३०।१२। |
| ६॥- | २४॥१७। | ७०- | ३०॥१३॥ |
| ६॥-॥ | २४॥१५॥ | ७०-॥ | ३०॥१४ |
| ६॥= | २५०१४॥ | ७०= | ३१०१६ |
| ६॥=॥ | २५।१३। | ७०=॥ | ३१।१७॥ |
| ६॥≡ | २५॥१२ | ७०≡ | ३१॥१९ |
| ६॥≡॥ | २५॥११ | ७०≡॥ | ३१॥२०॥ |
| ६॥० | २६०१०। | ७० | ३२०२२॥ |
| ६॥०॥ | २६।९॥ | ७०॥- | ३२।२४॥ |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|-------|----------------|-------|----------------|
| ७।- | ३२॥१॥ | ८।- | ३९॥८॥ |
| ७।-॥ | ३३०३॥ | ८।-॥ | ३९॥॥१३॥ |
| ७।= | ३३५॥॥ | ८।= | ४००१८। |
| ७।=॥ | ३३॥८। | ८।=॥ | ४०।२३॥ |
| ७।≡ | ३३॥॥१०॥॥ | ८।≡ | ४०॥॥३॥ |
| ७।≡॥ | ३४०१३। | ८।≡॥ | ४१०८॥॥ |
| ७।॥ | ३४।१६ | ८।० | ४१।१४। |
| ७।॥०॥ | ३४॥१८॥॥ | ८।०॥ | ४१॥१९॥॥ |
| ७।।- | ३४॥॥२१॥॥ | ८।।- | ४२०। |
| ७।।-॥ | ३५०२४॥॥ | ८।।-॥ | ४२।६ |
| ७।।= | ३५॥२॥॥ | ८।।= | ४२॥११॥॥ |
| ७।।=॥ | ३५॥६ | ८।।=॥ | ४२॥॥१७॥॥ |
| ७।।≡ | ३६०९॥ | ८।।≡ | ४३०२३॥॥ |
| ७।।≡॥ | ३६।१३ | ८।।≡॥ | ४३॥५ |
| ८ | ३६॥१६॥ | ८।० | ४३॥॥११। |
| ८०॥ | ३६॥॥२०। | ८।०॥ | ४४०१७॥॥ |
| ८०- | ३७०२४ | ८।०- | ४४।२४। |
| ८०-॥ | ३७।३ | ८।०-॥ | ४४॥५॥॥ |
| ८०= | ३७॥७ | ८।०= | ४५०१२॥॥ |
| ८०=॥ | ३८०११। | ८।०=॥ | ४५।१९। |
| ८०≡ | ३८।१५॥ | ८।०≡ | ४५॥॥१। |
| ८०≡॥ | ३८॥१९॥॥ | ८।०≡॥ | ४६०८। |
| ८। | ३८॥॥२४। | ९ | ४६।१५॥ |
| ८।०॥ | ३९।४ | ९०॥ | ४६॥२२॥॥ |

| रति | एक दाण्याचे चव | रति | एक दाण्याचे चव |
|------|----------------|-------|----------------|
| ९०- | ४७०५। | ९॥- | ५५०१६। |
| ९०-॥ | ४७१२२॥ | ९॥-॥ | ५५॥१॥ |
| ९०= | ४७॥२०। | ९॥= | ५५॥११॥६ |
| ९०=॥ | ४८०३ | ९॥=॥ | ५६०२२। |
| ९०≡ | ४८११ | ९॥≡ | ५६॥७॥ |
| ९०≡॥ | ४८॥१८॥ | ९॥≡॥ | ५६॥१८। |
| ९। | ४९०२ | १० | ५७।४ |
| ९।। | ४९१० | १००। | ५७॥१५ |
| ९।- | ४९॥१८। | १००- | ५८०१ |
| ९।-॥ | ५००१॥ | १००-॥ | ५८।१२ |
| ९।= | ५०१०। | १००= | ५८॥२३। |
| ९।=॥ | ५०॥१९ | १००=॥ | ५९०९॥ |
| ९।≡ | ५१०२॥ | १००≡ | ५९।२१ |
| ९।≡॥ | ५१११॥ | १००≡॥ | ५९॥७॥ |
| ९॥ | ५१॥२०॥ | १०। | ६००१९ |
| ९॥-॥ | ५२०४॥ | १०।-॥ | ६०॥५॥ |
| ९॥- | ५२।१३॥ | १०।- | ६०॥१७॥ |
| ९॥-॥ | ५२॥२३ | १०।-॥ | ६१०४॥ |
| ९॥= | ५३०७॥ | १०।= | ६१॥१६॥ |
| ९॥=॥ | ५३१७ | १०।=॥ | ६२०४ |
| ९॥≡ | ५३॥११॥ | १०।≡ | ६२।१६। |
| ९॥≡॥ | ५४०११। | १०।≡॥ | ६२॥३॥ |
| ९॥० | ५४।२१। | १०।० | ६३०१६। |
| ९॥०॥ | ५४॥६। | १०।०॥ | ६३॥४ |

| रति | एक दाण्याचे चव | रति | एक दाण्याचे चव |
|-------|----------------|-------|----------------|
| १०॥- | ६३॥१६॥॥ | ११- | ७३॥६॥॥ |
| १०॥-॥ | ६४॥४॥ | ११-॥ | ७३॥२२॥ |
| १०॥= | ६४॥१७॥ | ११= | ७४०१३ |
| १०॥=॥ | ६५०५॥॥ | ११=॥ | ७४॥३॥॥ |
| १०॥≡ | ६५॥१९ | ११≡ | ७४॥१९॥ |
| १०॥≡॥ | ६५॥॥७॥ | ११≡॥ | ७५॥१०॥ |
| १०॥० | ६६०२०॥॥ | ११॥० | ७५॥॥१॥॥ |
| १०॥०॥ | ६६॥१९॥ | ११॥०॥ | ७६०१८ |
| १०॥- | ६६॥२२॥ | ११॥- | ७६॥९॥ |
| १०॥-॥ | ६७॥११॥॥ | ११॥-॥ | ७७०॥॥ |
| १०॥= | ६७॥॥॥ | ११॥= | ७७॥१७॥ |
| १०॥=॥ | ६८०१४॥ | ११॥=॥ | ७७॥॥९ |
| १०॥≡ | ६८॥३॥ | ११॥≡ | ७८॥०॥॥ |
| १०॥≡॥ | ६८॥१७॥॥ | ११॥≡॥ | ७८॥१७॥॥ |
| ११ | ६९॥७॥ | ११॥० | ७९०९॥॥ |
| ११०॥० | ६९॥२१॥ | ११॥०॥ | ७९॥१॥॥ |
| ११०- | ७००११॥ | ११॥- | ७९॥१९ |
| ११०-॥ | ७०॥०॥॥ | ११॥-॥ | ८०१११॥ |
| ११०= | ७०॥१५॥ | ११॥= | ८०॥॥४ |
| ११०=॥ | ७१॥५॥ | ११॥=॥ | ८१०२१॥ |
| ११०≡ | ७१॥२०॥ | ११॥≡ | ८१॥१४॥ |
| ११०≡॥ | ७२०१०॥॥ | ११॥≡॥ | ८२०७ |
| ११० | ७२॥०॥॥ | १२ | ८२॥ |
| ११०॥ | ७२॥१६॥ | १२०॥ | ८२॥१८ |

| रति | एक दाण्याचे चव | रति | एक दाण्याचे चव |
|---------|----------------|---------|----------------|
| १२८- | ८३।११ | १२।।- | ९४८५ |
| १२८-॥ | ८३।।।४। | १२।।।-॥ | ९४।।०।। |
| १२८= | ८४८२२।।। | १२।।।= | ९४।।।२१।।। |
| १२८=॥ | ८४।।१६ | १२।।।=॥ | ९५।१८ |
| १२८≡ | ८५८९।।। | १२।।।≡ | ९५।।।१४। |
| १२८≡॥ | ८५।।३।। | १२।।।≡॥ | ९६।१०।।। |
| १२।० | ८५।।।२२। | १३ | ९६।।।७। |
| १२।०॥ | ८६।१६। | १३८॥ | ९७।३।।। |
| १२।- | ८६।।।१०। | १३८- | ९७।।।०।। |
| १२।-॥ | ८७।४। | १३८-॥ | ९८८२२। |
| १२।= | ८७।।२३।। | १३८= | ९८।।१९। |
| १२।=॥ | ८८८१८ | १३८=॥ | ९९८१६। |
| १२।≡ | ८८।।१२।। | १३८≡ | ९९।।१३।। |
| १२।।≡॥ | ८९८७ | १३८≡॥ | १००८१०।।। |
| १२।।० | ८९।।१।।। | १३।० | १००।।८। |
| १२।।०॥ | ८९।।।२१।। | १३।०॥ | १०१८५।।। |
| १२।।- | ९०।१६।। | १३।- | १०१।।३। |
| १२।।-॥ | ९०।।११।। | १३।-॥ | १०२८१ |
| १२।।= | ९१।६।।। | १३।= | १०२।२३।।। |
| १२।।=॥ | ९१।।।२ | १३।=॥ | १०२।।।२१।।। |
| १२।।≡ | ९२८२२। | १३।≡ | १०३।१९।।। |
| १२।।≡॥ | ९२।।१७।।। | १३।≡॥ | १०३।।।१८ |
| १२।।।० | ९३८१३। | १३।।० | १०४।१६। |
| १२।।।०॥ | ९३।।९ | १३।।०॥ | १०४।।।११।।। |

| रति | एक दाण्याचे चक्र | रति | एक दाण्याचे चक्र |
|---------|------------------|----------|------------------|
| १३॥- | १०५।१३। | १४।- | ११७।११ |
| १३॥-॥ | १०५॥११॥॥ | १४।-॥ | ११७॥१२। |
| १३॥=- | १०६।१०॥ | १४।=- | ११८।१३॥॥ |
| १३॥=-॥ | १०६॥१९॥ | १४।=-॥ | ११८॥१५। |
| १३॥≡ | १०७।८। | १४।≡ | ११९।१९॥॥ |
| १३॥≡॥ | १०७॥॥७॥ | १४।≡॥ | ११९॥१८॥ |
| १३॥।० | १०८।६॥ | १४।० | १२०।२०॥ |
| १३॥।०॥ | १०८॥॥६ | १४।०॥ | १२०॥१२२॥ |
| १३॥।- | १०९।५। | १४।।- | १२१।२४॥ |
| १३॥।-॥ | १०९॥१४॥॥ | १४।।-॥ | १२२०१॥॥ |
| १३॥।=- | ११०।४॥ | १४।।=- | १२२॥४ |
| १३॥।=-॥ | ११०॥१४। | १४।।=-॥ | १२३०६॥ |
| १३॥।≡ | १११।४ | १४।।≡ | १२३३९ |
| १३॥।≡॥ | १११॥१४ | १४।।≡॥ | १२४०११॥॥ |
| १४ | ११२।४ | १४।।० | १२४।१४॥ |
| १४०॥ | ११२॥१४। | १४।।०॥ | १२५०१७। |
| १४०- | ११३।४॥ | १४।।।- | १२५।२०। |
| १४०-॥ | ११३॥५ | १४।।।-॥ | १२६०२३। |
| १४०=- | ११४।५॥ | १४।।।=- | १२६॥११॥ |
| १४०=-॥ | ११४॥६ | १४।।।=-॥ | १२७।४॥॥ |
| १४०≡ | ११५।७॥॥ | १४।।।≡ | १२७॥८। |
| १४०≡॥ | ११५॥७॥॥ | १४।।।≡॥ | १२८।११॥॥ |
| १४।० | ११६।८॥॥ | १५ | १२८॥१५॥ |
| १४।०॥ | ११७॥९॥॥ | १५०॥ | १२९।१९। |

| रति | एक दाण्याचे चव | रति | एक दाण्याचे चव |
|---------|----------------|---------|----------------|
| १५०- | १२९।।।२३। | १५।।।- | १४३०२४।। |
| १५०-॥ | १३०।।२। | १५।।।-॥ | १४३।।।६।। |
| १५०= | १३१०६। | १५।।।= | १४४।१३। |
| १५०=॥ | १३१।।१०।। | १५।।।=॥ | १४४।।।२०। |
| १५०≡ | १३२०१४।।। | १५।।।≡ | १४५।।२। |
| १५०≡॥ | १३२।।१९। | १५।।।≡॥ | १४६०९। |
| १५।० | १३३०२३।।। | १६ | १४६।।१६।। |
| १५।०॥ | १३३।।।३।। | १६०।। | १४७०२४ |
| १५।- | १३४।८। | १६०- | १४७।।।६। |
| १५।-॥ | १३४।।।१३ | १६०-॥ | १४८।१४ |
| १५।= | १३५।१८ | १६०= | १४८।।।२१।। |
| १५।=॥ | १३५।।।२३। | १६०=॥ | १४९।।।४।। |
| १५।≡ | १३६।।३।। | १६०≡ | १५००१२। |
| १५।≡॥ | १३७०८।।। | १६०≡॥ | १५०।।।२०। |
| १५।।० | १३७।।१४। | १६।० | १५१।३।। |
| १५।।०॥ | १३८०१९।।। | १६।०॥ | १५१।।।११।।। |
| १५।।- | १३८।।।०।। | १६।- | १५२।२०। |
| १५।।-॥ | १३९।६। | १६।-॥ | १५३०३।। |
| १५।।= | १३९।।।१२ | १६।= | १५३।।१२ |
| १५।।=॥ | १४०।१८ | १६।=॥ | १५४०२०।। |
| १५।।≡ | १४०।।।२४। | १६।≡ | १५४।।।४।। |
| १५।।≡॥ | १४१।।५।। | १६।≡॥ | १५५।१३।। |
| १५।।।० | १४२०११।।। | १६।।० | १५५।।।२२।। |
| १५।।।०॥ | १४२।।१८। | १६।।०॥ | १५६।।६।। |

| रति | एक दाण्याचे चव | रति | एक दाण्याचे चव |
|--------|----------------|--------|----------------|
| १६॥- | १५७६१६ | १७।- | १७१॥२१॥ |
| १६॥-॥ | १५७॥। | १७।-॥ | १७२।८॥ |
| १६॥= | १५८।९॥॥ | १७।= | १७२॥३०॥॥ |
| १६॥=॥ | १५८॥॥१९। | १७।=॥ | १७३॥८ |
| १६॥≡ | १५९॥४ | १७।≡ | १७४४२०। |
| १६॥≡॥ | १६००१३॥॥ | १७।≡॥ | १७४॥७॥॥ |
| १६॥।० | १६०॥२३॥॥ | १७।० | १७५।२०॥ |
| १६॥।०॥ | १६१।८॥॥ | १७।०॥ | १७६०८। |
| १६॥।- | १६१॥१९ | १७।- | १७६॥२१ |
| १६॥।-॥ | १६२॥४। | १७।-॥ | १७७।९ |
| १६॥।= | १६३०१४॥ | १७।= | १७७॥२२ |
| १६॥।=॥ | १६३॥।० | १७।=॥ | १७८॥१०। |
| १६॥।≡ | १६४।१०॥॥ | १७।≡ | १७९०२३॥ |
| १६॥।≡॥ | १६४॥२१। | १७।≡॥ | १७९॥११॥॥ |
| १७ | १६५॥७। | १७॥।० | १८०॥।०। |
| १७।० | १६६०१८ | १७॥।०॥ | १८१०१४ |
| १७।- | १६६॥४। | १७॥।- | १८१॥२॥॥ |
| १७।-॥ | १६७।१५। | १७॥।-॥ | १८२।१६॥ |
| १७।= | १६८०१॥ | १७॥।= | १८३०५॥ |
| १७।=॥ | १६८॥१३ | १७॥।=॥ | १८३॥१९॥ |
| १७।≡ | १६९०२४॥ | १७॥।≡ | १८४।८॥॥ |
| १७।≡॥ | १६९॥११ | १७॥।≡॥ | १८४॥२३ |
| १७।० | १७०।२२॥ | १८ | १८५॥१२॥ |
| १७।०॥ | १७१०९॥ | १८।० | १८६।२ |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|----------|----------------|---------|----------------|
| १८८- | १८६।।।१६।। | १८।।- | २०२।।।१ |
| १८८-॥ | १८७।।६। | १८।।-॥ | २०३।१८।। |
| १८८= | १८८८२१ | १८।।= | २०४८११ |
| १८८=॥ | १८८।।।११ | १८।।=॥ | २०४।।।३।। |
| १८८≡ | १८९।।१ | १८।।≡ | २०५।२१। |
| १८८≡॥ | १९००१६। | १८।।≡॥ | २०६८१४। |
| १८। | १९०।।।६।। | १९ | २०६।।।७। |
| १८।०।। | १९१।२२ | १९०।० | २०७।०। |
| १८।- | १९२८१२।। | १९०- | २०८८१८।। |
| १८।-॥ | १९२।।।३। | १९०-॥ | २०८।।।११।। |
| १८।= | १९३।१८।। | १९०= | २०९।।५। |
| १८।=॥ | १९४८९।। | १९०=॥ | २१०८२३।। |
| १८।≡ | १९४।।०।। | १९०≡ | २१०।।।१७।। |
| १८।≡॥ | १९५।१६।। | १९०≡॥ | २११।।।११। |
| १८।। | १९६८८ | १९।० | २१२।५ |
| १८।।०।। | १९६।।२४। | १९।०।। | २१२।।।२४ |
| १८।।- | १९७।१५।। | १९।- | २१३।।१८ |
| १८।।-॥ | १९८८७। | १९।-॥ | २१४।१२। |
| १८।।= | १९८।।२३।। | १९।= | २१५८६।। |
| १८।।=॥ | १९९।१५।। | १९।=॥ | २१५।।।१ |
| १८।।≡ | २००८७।। | १९।≡ | २१६।२०।। |
| १८।।≡॥ | २००।।२४।। | १९।≡॥ | २१७८१५। |
| १८।।। | २०१।१६।। | १९।० | २१७।।।१० |
| १८।।।०।। | २०२८८।। | १९।।०।। | २१८।।५ |

| रति | एक दाण्याचे चव | रति | एक दाण्याचे चव |
|--------|----------------|--------|----------------|
| १९॥- | २१९। | २०।- | २३६।१३। |
| १९॥-॥ | २१९॥॥२० | २०।-॥ | २३७०११ |
| १९॥= | २२०॥१५। | २०।= | २३७॥१९ |
| १९॥=॥ | २२१।१०॥ | २०।=॥ | २३८॥७ |
| १९॥≡ | २२२०६ | २०।≡ | २३९।५ |
| १९॥≡॥ | २२२॥१॥ | २०।≡॥ | २४००३। |
| १९॥।० | २२३।२२। | २०।० | २४०॥१॥॥ |
| १९॥।०॥ | २२४०१८ | २०।०॥ | २४१॥। |
| १९॥।- | २२४॥१४ | २०।- | २४२०२३॥ |
| १९॥।-॥ | २२५॥१० | २०।-॥ | २४२॥२२॥ |
| १९॥।= | २२६।६ | २०।= | २४३॥२१। |
| १९॥।=॥ | २२७०२। | २०।=॥ | २४४।२० |
| १९॥।≡ | २२७॥२३॥ | २०।≡ | २४५०१९। |
| १९॥।≡॥ | २२८।२० | २०।≡॥ | २४५॥१८। |
| २० | २२९०१६॥ | २०।।० | २४६॥१७। |
| २००॥ | २२९॥१३। | २०।।०॥ | २४७।१७ |
| २००- | २३०॥१० | २०।।- | २४८०१६। |
| २००-॥ | २३१।७ | २०।।-॥ | २४८॥१६ |
| २००= | २३२०४ | २०।।= | २४९॥१५॥ |
| २००=॥ | २३२॥१ | २०।।=॥ | २५०।१५॥ |
| २००≡ | २३३।२३। | २०।।≡ | २५१०१५। |
| २००≡॥ | २३४०२०॥ | २०।।≡॥ | २५१॥१५। |
| २०।० | २३४॥१८ | २१ | २५२॥१५॥ |
| २०।०॥ | २३५॥१५॥ | २१०॥ | २५३।१५॥ |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|--------|----------------|-------|----------------|
| २१०- | २५४४१६ | २१॥- | २७२॥८॥ |
| २१०-॥ | २५४॥१६॥ | २१॥-॥ | २७३॥११॥ |
| २१०= | २५५॥१७ | २१॥= | २७४०१४॥ |
| २१०=॥ | २५६१८ | २१॥=॥ | २७४॥१८ |
| २१०≡ | २५७०१८॥ | २१॥≡ | २७५॥२१॥ |
| २१०≡॥ | २५७॥१९॥ | २१॥≡॥ | २७६॥- |
| २१। | २५८॥२०॥ | २२ | २७७४ |
| २१।॥ | २५९॥२१॥ | २२०- | २७८८ |
| २१।- | २६००२३ | २२०- | २७८॥११॥ |
| २१।-॥ | २६०॥२४॥ | २२०-॥ | २७९॥१६ |
| २१।= | २६१॥१ | २२०= | २८०॥२० |
| २१।=॥ | २६२॥२॥ | २२०=॥ | २८१०२४। |
| २१।≡ | २६३।४। | २२०≡ | २८२०३॥ |
| २१।≡॥ | २६४०६ | २२०≡॥ | २८२॥८। |
| २१॥- | २६४॥८ | २२। | २८३॥१२॥ |
| २१॥-॥ | २६५॥१० | २२।-॥ | २८४।१७॥ |
| २१॥- | २६६।१२। | २२।- | २८५०२२॥ |
| २१॥-॥ | २६७०१४॥ | २२।-॥ | २८६०२। |
| २१॥= | २६७॥१६॥ | २२।= | २८६॥७॥ |
| २१॥=॥ | २६८॥१९। | २२।=॥ | २८७॥१२॥ |
| २१॥≡ | २६९।२२ | २२।≡ | २८८।१८ |
| २१॥≡॥ | २७००२४॥ | २२।≡॥ | २८९०२३। |
| २१॥॥- | २७१०३॥ | २२॥ | २९००३॥॥- |
| २१॥॥-॥ | २७१॥५। | २२॥-॥ | २९०॥९॥ |

| रती | एक दाण्याचे चव | रती | एक दाण्याचे चव |
|---------|----------------|---------|----------------|
| २२॥- | २९१॥१५। | २३।- | ३११।११ |
| २२॥-॥ | २९२।२१ | २३।-॥ | ३१२०१९॥।। |
| २२॥= | २९३।२ | २३।= | ३१३०३। |
| २२॥=॥ | २९४०८ | २३।=॥ | ३१३॥।१२। |
| २२॥≡ | २९४॥।१४। | २३।≡ | ३१४।।२१। |
| २२॥≡॥ | २९५॥२०॥ | २३।≡॥ | ३१५॥।५ |
| २२॥।। | २९६।।२ | २३।। | ३१६।१४। |
| २२॥।।॥ | २९७।।८॥ | २३।।॥ | ३१७०२३॥ |
| २२॥।।- | २९८०१५ | २३।।- | ३१८०७॥ |
| २२॥।।-॥ | २९८।।२१॥।। | २३।।-॥ | ३१८।।१७। |
| २२॥।।= | २९९॥।३॥।। | २३।।= | ३१९॥।१॥।। |
| २२॥।।=॥ | ३००॥।१०॥ | २३।।=॥ | ३२०।।११। |
| २२॥।।≡ | ३०१।१७॥।। | २३।।≡ | ३२१।२१ |
| २२॥।।≡॥ | ३०२०२४॥।। | २३।।≡॥ | ३२२।६ |
| २३ | ३०३०७। | २३।।। | २२३०१६ |
| २३०। | ३०३॥।१४॥ | २३।।।॥ | ३२४०१ |
| २३०- | ३०४।।२२ | २३।।।- | ३२४॥।११। |
| २३०-॥ | ३०५।।४॥।। | २३।।।-॥ | ३२५।।२१॥ |
| २३०= | ३०६।१२॥ | २३।।।= | ३२६॥।७ |
| २३०=॥ | ३०७०२०। | २३।।।=॥ | ३२७।१७॥ |
| २३०≡ | ३०८०३। | २३।।।≡ | ३२८।३। |
| २३०≡॥ | ३०८॥।११॥ | २३।।।≡॥ | ३२९०१४ |
| २३। | ३०९॥।१९॥ | २४ (१) | ३३० |
| २३।। | ३१०।।३ | टांक | |

| टांक रति | एक दाण्याचे चव | टांक रति | एक दाण्याचे चव |
|----------|----------------|----------|----------------|
| १००- | ३३१॥२२ | १०१॥- | ३७४।११॥ |
| १००= | ३३३।१९॥ | १०१॥= | ३७६०२० |
| १००≡ | ३३५०१७॥ | १०१॥≡ | ३७८०३॥ |
| १०। | ३३६॥१६ | १०१॥। | ३७९॥१३ |
| १०।- | ३३८॥१५ | १०१॥।- | ३८१॥२२॥ |
| १०।= | ३४०।१४ | १०१॥।= | ३८३॥७॥ |
| १०।≡ | ३४२०१४ | १०१॥।≡ | ३८५।१८ |
| १०।। | ३४३॥१४ | १०२ | ३८७।४ |
| १०।।- | ३४३॥१५ | १०२०- | ३८९०१५॥ |
| १०।।= | ३४७।१६ | १०२०= | ३९१०२॥ |
| १०।।≡ | ३४२०१८ | १०२०≡ | ३९२॥१४॥ |
| १०।।। | ३५०॥१९॥ | १०२। | ३९४॥२॥ |
| १०।।।- | ३५२॥२२। | १०२।- | ३९६॥१५॥ |
| १०।।।= | ३५४॥ | १०२।= | ३९८॥४। |
| १०।।।≡ | ३५६।३॥ | १०२।≡ | ४००।१८॥ |
| १०१ | ३५८०७। | १०२।। | ४०२।८ |
| १०१०- | ३५९॥११॥ | १०२।।- | ४०४०२३ |
| १०१०= | ३६१॥१६। | १०२।।= | ४०६०१३॥ |
| १०१०≡ | ३६३।२१। | १०२।।≡ | ४०८०४। |
| १०१। | ३६५।२ | १०२।।। | ४०९॥२०॥ |
| १०१।- | ३६७०८ | १०२।।।- | ४११॥१२॥ |
| १०१।= | ३६८॥१४॥ | १०२।।।= | ४१३॥४॥ |
| १०१।≡ | ३७०॥२१॥ | १०२।।।≡ | ४१५॥२२॥ |
| १०१।। | ३७२॥३॥ | १०३ | ४१७॥१५॥ |

| टांक रती | एक दाण्याचे चव | टांक रती | एक दाण्याचे चव |
|----------|----------------|----------|----------------|
| १०३०- | ४१९॥९। | १०४।- | ४६७।१४॥ |
| १०३०= | ४२१॥३। | १०४।= | ४६९।१९। |
| १०३०≡ | ४२३।२२॥॥ | १०४।≡ | ४७१।२४॥ |
| १०३।० | ४२५।१७॥ | १०४।।० | ४७३।।५ |
| १०३।- | ४२७।१३ | १०४।।- | ४७५।।११। |
| १०३।= | ४२९।८॥॥ | १०४।।= | ४७७।।१७॥॥ |
| १०३।≡ | ४३१।५ | १०४।।≡ | ४७९।।२४॥॥ |
| १०३।।० | ४३३।१॥॥ | १०५ | ४८१।।।७। |
| १०३।।- | ४३५।०२४ | १०५०- | ४८४।।।१५। |
| १०३।।= | ४३७।०२१॥ | १०५०= | ४८५।।।२३॥ |
| १०३।।≡ | ४३९।०१९॥ | १०५०≡ | ४८८।०७। |
| १०३।।।० | ४४१।०१८ | १०५।० | ४९०।०१६॥ |
| १०३।।।- | ४४३।०१७ | १०५।- | ४९२।१ |
| १०३।।।= | ४४५।०१६॥ | १०५।= | ४९४।११। |
| १०३।।।≡ | ४४७।०१६। | १०५।≡ | ४९६।२२ |
| १०४ | ४४९।०१६॥ | १०५।।० | ४९८।।८ |
| १०४०- | ४५१।०१७। | १०५।।- | ५००।।१९॥ |
| १०४०= | ४५३।०१८॥ | १०५।।= | ५०२।।।६॥ |
| १०४०≡ | ४५५।०२०। | १०५।।≡ | ५०४।।।१८॥॥ |
| १०४।० | ५५७।०२२। | १०५।।।० | ५०७।०६॥॥ |
| १०४।- | ४५९।०२४॥॥ | १०५।।।- | ५०९।०२० |
| १०४।= | ४६१।१२॥॥ | १०५।।।= | ५११।१८॥॥ |
| १०४।≡ | ४६३।६। | १०५।।।≡ | ५१३।२२॥॥ |
| १०४।।० | ४६५।१० | १। | ५१५।।१२॥ |

| टांक रती | एक दाण्याचे चक्र | टांक रती | एक दाण्याचे चक्र |
|----------|------------------|----------|------------------|
| १।४- | ५१७।।२।। | १।१।।- | ५७०।।२३।। |
| १।४= | ५१९।।१।।८ | १।१।।= | ५७२।।।२४।।। |
| १।४≡ | ५२२।।४ | १।१।।≡ | ५७५।।१।। |
| १।०। | ५२४।।०।। | १।१।।।० | ५७७।।३।। |
| १।०।- | ५२६।।१७। | १।१।।।- | ५७९।।।६ |
| १।०।= | ५२८।।९।। | १।१।।।= | ५८२।।४ |
| १।०।≡ | ५३०।।।९। | १।१।।।≡ | ५८४।।१२।।। |
| १।०।।० | ५३२।।।२०।। | १।२ | ५८६।।१६।। |
| १।०।।- | ५३५।।१४। | १।२।- | ५८८।।।२१ |
| १।०।।= | ५३७।।८। | १।२।= | ५९१।।०।।। |
| १।०।।≡ | ५३९।।।२।।। | १।२।= | ५९३।।६ |
| १।०।।।० | ५४१।।।२२।।। | १।२।० | ५९५।।।११।।। |
| १।०।।।- | ५४३।।।१८। | १।२।- | ५९८।।१८ |
| १।०।।।= | ५४६।।१४ | १।२।= | ६००।।२४।।। |
| १।०।।।≡ | ५४८।।१०।। | १।२।≡ | ६०२।।।६।।। |
| १।१ | ५५०।।७। | १।२।।० | ६०५।।१४। |
| १।१।- | ५५२।।।४।। | १।२।।- | ६०७।।२२। |
| १।१।= | ५५५।।२। | १।२।।= | ६०९।।।५।।। |
| १।१।≡ | ५५७।।०। | १।२।।≡ | ६१२।।१४।। |
| १।१।० | ५५९।।२३।।। | १।२।।।० | ६१४।।२३।।। |
| १।१।- | ५६१।।।२२।।। | १।२।।।- | ६१६।।।८।। |
| १।१।= | ५६३।।।२२। | १।२।।।= | ६१९।।१८।।। |
| १।१।≡ | ५६६।।२२। | १।२।।।≡ | ६२१।।४।। |
| १।१।।० | ५६८।।२२।। | १।३ | ६२३।।।१५।। |

| टांक रति | एक दाण्याचे चव | टांक रति | एक दाण्याचे चव |
|----------|----------------|----------|----------------|
| १।३०- | ६२६।२ | १।४।।- | ६८४।१३।। |
| १।३०= | ६२८।।१४ | १।४।।= | ६८६।।।११। |
| १।३०≡ | ६३१।०१।। | १।४।।≡ | ६८९।९।। |
| १।३।० | ६३३।१४।। | १।४।।० | ६९१।।।।८। |
| १।३।- | ६३५।।।२।।। | १।४।।।- | ६९४।७। |
| १।३।= | ६३८।०१६।। | १।४।।।= | ६९६।।।६।।। |
| १।३।≡ | ६४०।।५।।। | १।४।।।≡ | ६९९।६।।। |
| १।३।।० | ६४२।।।२०।। | १।५ | ७०१।।।।७। |
| १।३।।- | ६४५।१०।।। | १।५०- | ७०४।८ |
| १।३।।= | ६४७।।।१। | १।५०= | ७०६।।।९।। |
| १।३।।≡ | ६५०।०१७। | १।५०≡ | ७०९।११। |
| १।३।।।० | ६५२।।।८।।। | १।५।० | ७११।।।।१३।। |
| १।३।।।- | ६५५।०।।। | १।५।०- | ७१४।१६ |
| १।३।।।= | ६५७।१८ | १।५।०= | ७१६।।।१९। |
| १।३।।।≡ | ६५९।।।१०।।। | १।५।०≡ | ७१९।२२।।। |
| १।४ | ६६२।४ | १।५।।० | ७२२।०१।।। |
| १।४०- | ६६४।।२२।। | १।५।।०- | ७२४।।६। |
| १।४०= | ६६७।०१७ | १।५।।०= | ७२७।०११। |
| १।४०≡ | ६६९।।११।। | १।५।।०≡ | ७२९।।१६।। |
| १।४।० | ६७२।०६।।। | १।५।।।० | ७३२।०२२। |
| १।४।०- | ६७४।।२। | १।५।।।०- | ७३४।।।३।। |
| १।४।०= | ६७६।।।२३ | १।५।।।०= | ७३७।१०। |
| १।४।०≡ | ६७९।१९।। | १।५।।।०≡ | ७३९।।।१७। |
| १।४।।० | ६८१।।।१६। | १।।० | ७४२।।० |

| टांक रति | एक दाण्याचे चक्र | टांक रति | एक दाण्याचे चक्र |
|----------|------------------|----------|------------------|
| १॥००- | ७४५६८ | १॥१॥- | ८०८१० |
| १॥००= | ७४७॥१६॥ | १॥१॥= | ८११०४ |
| १॥००≡ | ७५०॥०॥ | १॥१॥≡ | ८१३॥२४ |
| १॥००. | ७५२॥१९॥ | १॥१॥०. | ८१६॥१९॥ |
| १॥००- | ७५५॥१९॥ | १॥१॥०- | ८१९०१४॥ |
| १॥००= | ७५८०५ | १॥१॥०= | ८२१॥१०॥ |
| १॥००≡ | ७६०॥१५॥ | १॥१॥०≡ | ८२४॥७ |
| १॥००. | ७६३॥१॥ | १॥२ | ८२७॥४ |
| १॥००- | ७६५॥१३॥ | १॥२०- | ८३००१॥ |
| १॥००= | ७६८॥०॥ | १॥२०= | ८३२॥२४ |
| १॥००≡ | ७७१०१३ | १॥२०≡ | ८३५॥२२॥ |
| १॥००. | ७७३॥१॥ | १॥२०. | ८३८०२१ |
| १॥००- | ७७६॥१४॥ | १॥२०- | ८४०॥२०॥ |
| १॥००= | ७७९०३॥ | १॥२०= | ८४३॥२० |
| १॥००≡ | ७८१॥१७॥ | १॥२०≡ | ८४६॥२० |
| १॥१ | ७८४॥७ | १॥२०. | ८४९०२०॥ |
| १॥१०- | ७८६॥२२॥ | १॥२०- | ८५१॥२१॥ |
| १॥१०= | ७८९॥१३ | १॥२०= | ८५४॥२२॥ |
| १॥१०≡ | ७९२॥४॥ | १॥२०≡ | ८५७॥२४॥ |
| १॥१०. | ७९४॥२०॥ | १॥२०. | ८६०॥२ |
| १॥१०- | ७९७॥१२॥ | १॥२०- | ८६३०४॥ |
| १॥१०= | ८००॥५॥ | १॥२०= | ८६५॥७॥ |
| १॥१०≡ | ८०२॥२३ | १॥२०≡ | ८६८॥११॥ |
| १॥१०. | ८०५॥१६॥ | १॥३ | ८७१॥१५॥ |

| टांक रती | एक दाण्याचे चव | टांक रती | एक दाण्याचे चव |
|----------|----------------|----------|----------------|
| १॥३०- | ८७४०२० | १॥४॥- | ९४२॥१२॥॥ |
| १॥३०= | ८७७ | १॥४॥= | ९४५॥३॥ |
| १॥३०≡ | ८७९॥५॥ | १॥४॥≡ | ९४८॥९॥॥ |
| १॥३०. | ८८२॥११॥ | १॥४॥०. | ९५१॥११॥ |
| १॥३०- | ८८५॥१७॥॥ | १॥४॥०- | ९५४॥३॥ |
| १॥३०= | ८८८०२४॥ | १॥४॥०= | ९५७०२१ |
| १॥३०≡ | ८९१०६॥॥ | १॥४॥०≡ | ९६००१३॥॥ |
| १॥३००. | ८९३॥१११४॥ | १॥५. | ९६३०७॥ |
| १॥३००- | ८९६॥२२॥ | १॥५०- | ९६६०१ |
| १॥३००= | ८९९॥६ | १॥५०= | ९६८॥२०॥ |
| १॥३००≡ | ९०२॥१५ | १॥५०≡ | ९७१॥११५ |
| १॥३०००. | ९०५०२४॥ | १॥५०. | ९७४॥१०॥ |
| १॥३०००- | ९०८०९॥ | १॥५०- | ९७७॥६ |
| १॥३०००= | ९१०॥१९॥॥ | १॥५०= | ९८०॥२ |
| १॥३०००≡ | ९१३॥५॥॥ | १॥५०≡ | ९८३॥२३॥ |
| १॥४ | ९१६॥१६॥॥ | १॥५००. | ९८६॥२०॥॥ |
| १॥४०- | ९१९॥३॥ | १॥५००- | ९८९॥१८ |
| १॥४०= | ९२२॥१५॥॥ | १॥५००= | ९९२॥१५॥॥ |
| १॥४०≡ | ९२५॥३ | १॥५००≡ | ९९५॥१४॥ |
| १॥४०. | ९२८०१६ | १॥५०००. | ९९८॥१३ |
| १॥४०- | ९३१०४॥॥ | १॥५०००- | १००१॥१२ |
| १॥४०= | ९३३॥१८॥॥ | १॥५०००= | १००४॥११॥॥ |
| १॥४०≡ | ९३६॥७॥॥ | १॥५०००≡ | १००७॥११॥॥ |
| १॥४००. | ९३९॥२२॥॥ | १॥५००००. | १०१०॥१२॥॥ |

| टांक रती | एक दाण्याचे चव | टांक रती | एक दाण्याचे चव |
|----------|----------------|----------|----------------|
| १॥॥०- | १०१३॥१३॥ | १॥॥१॥- | १०८७०२१॥॥ |
| १॥॥०= | १०१६॥१५ | १॥॥१॥= | १०९०।९ |
| १॥॥०≡ | १०१९॥१६॥॥ | १॥॥१॥≡ | १०९३।२१॥॥ |
| १॥॥।० | १०२२॥१९। | १॥॥१॥।० | १०९६॥९॥॥ |
| १॥॥।- | १०२५।२२ | १॥॥१॥।- | १०९९॥२३। |
| १॥॥।= | १०२८॥॥। | १॥॥१॥।= | ११०२॥॥१२। |
| १॥॥।≡ | १०३१॥॥४ | १॥॥१॥।≡ | ११०६०१॥॥ |
| १॥॥।।० | १०३४॥॥८ | १॥॥२ | ११०९०१६॥ |
| १॥॥।।- | १०३७॥॥१२॥ | १॥॥२०- | १११२।७ |
| १॥॥।।= | १०४०॥॥१७॥॥ | १॥॥२०= | १११५।२२॥॥ |
| १॥॥।।≡ | १०४३॥॥२३ | १॥॥२०≡ | १११८॥१४ |
| १॥॥।।।० | १०४७०४ | १॥॥२।० | ११२१॥॥५। |
| १॥॥।।।- | १०५००१०॥ | १॥॥२।- | ११२४॥॥२२॥॥ |
| १॥॥।।।= | १०५३०१७। | १॥॥२।= | ११२८०१५। |
| १॥॥।।।≡ | १०५६०२४॥ | १॥॥२।≡ | ११३१।८। |
| १॥॥१ | १०५९।७। | १॥॥२।।० | ११३४॥१॥॥ |
| १॥॥१०- | १०६२।१५॥ | १॥॥२।।- | ११३७।२०॥॥ |
| १॥॥१०= | १०६५।२४ | १॥॥२।।= | ११४०॥॥१५ |
| १॥॥१०≡ | १०६८॥८ | १॥॥२।।≡ | ११४४०९॥॥ |
| १॥॥१।० | १०७१॥१७॥ | १॥॥२।।।० | ११४७।५ |
| १॥॥१।- | १०७४॥॥२॥ | १॥॥२।।।- | ११५०॥।।।० |
| १॥॥१।= | १०७७॥॥१३ | १॥॥२।।।= | ११५३॥२२ |
| १॥॥१।≡ | १०८०॥॥२३॥॥ | १॥॥२।।।≡ | ११५६॥॥१८॥ |
| १॥॥१।।० | १०८४०१० | १॥॥३ | ११६००१५। |

| रति | एक दाण्यांचे चव | रति | एक दाण्यांचे चव |
|--------|-----------------|-------|-----------------|
| १॥३०- | ११६३।१३ | १॥४॥- | १२४२०१२ |
| १॥३०= | ११६६॥११ | १॥४॥= | १२४५२०॥॥ |
| १॥३०≡ | ११६९॥१९॥ | १॥४॥≡ | १२४८॥॥५ |
| १॥३।० | ११७३०८। | १॥४।० | १२५२०१४॥ |
| १॥३।- | ११७६।७॥ | १॥४।- | १२५५२४॥ |
| १॥३।= | ११७९॥७ | १॥४।= | १२५८॥॥१० |
| १॥३।≡ | ११८२॥७॥ | १॥४।≡ | १२६२०२०॥॥ |
| १॥३॥० | ११८६०८ | १॥५ | १२६५॥७ |
| १॥३॥- | ११८९।९ | १॥५०- | १२६८॥॥१९ |
| १॥३॥= | ११९२॥१०॥ | १॥५०= | १२७२।६। |
| १॥३॥≡ | ११९५॥१२॥ | १॥५०≡ | १२७५॥१९ |
| १॥३॥।० | ११९९०१५ | १॥५।० | १२७९०७। |
| १॥३॥।- | १२०२।१७॥ | १॥५।- | १२८२।२०॥॥ |
| १॥३॥।= | १२०५॥२१। | १॥५।= | १२८५॥॥९॥॥ |
| १॥३॥।≡ | १२०९ | १॥५।≡ | १२८९०२४। |
| १॥४ | १२१२।४ | १॥५।० | १२९२॥१४। |
| १॥४०- | १२१५॥८॥॥ | १॥५।- | १२९६०४॥॥ |
| १॥४०= | १२१८॥॥१३॥॥ | १॥५।= | १२९९।२०॥॥ |
| १॥४०≡ | १२२२०१९॥ | १॥५।≡ | १३०२॥॥११॥॥ |
| १॥४।० | १२२५॥०॥ | १॥५।० | १३०६।३॥ |
| १॥४।- | १२२८॥॥६॥॥ | १॥५।- | १३०९॥२०॥॥ |
| १॥४।= | १२३२०१३॥॥ | १॥५।= | १३१३०१३। |
| १॥४।≡ | १२३५।२१ | १॥५।≡ | १३१६॥६॥ |
| १॥४॥ | १२३८॥॥३॥॥ | २ | १३२० |

परिशिष्ट दुसरें

वक्रीभवनदर्शक

१ एकेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांचे

| | | | |
|-------------|------|-----|------|
| चित्र खनिज | १०४३ | ओपल | १०४५ |
| डोंगरी कांच | १०५० | | |

कांच एकेरी वक्रीभवन करणारी आहे. द्विवर्णत्व नाही.

| | | | |
|------------------|------|----------------------|------|
| अंबर | १०५४ | सर्पटाइन (जहर मोहरा) | १०५७ |
| स्पायनेल (लाल) | १०७२ | गोमेद | १०७४ |
| पायरोप चुनडी | १०७५ | लाल चुनडी | १०७९ |
| झिर्कान | १०८१ | डीमंटाइड चुनडी | १०८८ |
| हिरा | २०४१ | | |

२ दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांचे—

| | | | |
|----------------------|--------------|-------------|--------------|
| चंद्रकांत, सूर्यकांत | १०५३....१०५४ | काचमणि | १०५४....१०५५ |
| पाच | १०५७....१०५८ | नेफ्राइट | १०६०....१०६३ |
| पिरोजा | १०६१....१०६५ | पुष्पराज | १०६१....१०६२ |
| तोरमल्ली | १०६२....१०६५ | स्पोड्यूमीन | १०६५....१०६८ |
| पेरिडाट | १०६५....१०६९ | जेडाइट | १०६६....१०६८ |
| स्वर्णवैदूर्य | १०७४....१०७५ | कुरुंद | १०७६....१०७७ |
| स्फीन | १०९०....२००५ | झिर्कान | १०९२....१०९८ |

—*—

टीपः—दुहेरी वक्रीभवन करणाऱ्या रत्नांचे कमीत कमी आणि जास्तीत जास्ती असे वक्रीभवनदर्शक दिले आहेत.

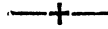
परिशिष्ट तिसरें

द्विवर्णत्व

जोरदार—कुरुंद, तोरमली, अलेक्झांड्राईट, स्पोड्यूमीन, एपिडोट.

स्पष्ट—पाच, पुष्पराज, काचमणि, पेरिडाट, स्वर्णवैडूर्य, निळा झिर्कान,
स्फीन, अयडोक्नेज, कायनाइट, अपेटाइट.

कमजोर—वैडूर्य, डायोप्साइड.



परिशिष्ट चौथें

द्विवर्णत्वांत कोणत्या रंगाचे कोणते
दोन रंग दिसतात ?

| | |
|-----------------------|-------------------------------|
| रत्नाचें नांव | दोन रंगांचीं नांवें |
| इंद्रनील | १ हिरवट गवताचा. |
| (निळ्या रंगाचें) | २ निळा. |
| माणिक | १ अरुणोदयाप्रमाणें लाल. |
| (तांबड्या रंगाचें) | २ किरमिजी लाल. |
| तोरमली | १ संत्र्याच्या रंगाचा तांबूस. |
| (लाल रंगाची) | २ गुलाबी तांबूस. |
| तोरमली | १ अंबर जातीचा (आळिंबूच्या |
| (तपकिरी लाल रंगाची) | रंगासारखा) तांबळसर. |
| | २ पारव्याच्या रंगाचा तांबूस. |

रत्नाचें नांव

तोरमली

(उदी रंगाची)

तोरमली

(हिरव्या रंगाची)

तोरमली

(अस्मानी रंगाची)

पुष्पराग

(शेरी दाख्ख्या रंगाचा)

पेरीडाट

(पिस्त्याच्या रंगाचा)

सागरराग

(सागराप्रमाणें हिरव्या रंगाचा)

वैदुर्य

(फिक्का अस्मानी)

स्वयंवैदुर्य

(पिवळ्या रंगाचा)

याकूत

दोन रंगांचीं नांवां

१ संत्र्याप्रमाणें उदी.

२ हिरवट पिवळा.

१ पिस्त्यासारखा हिरवा

२ निळसर हिरवा

१ हिरवट करडा

२ निळीसारखा निळा

१ पिवळट गवतासारखा

२ गुलाबी

१ उदी पिवळा

२ सागराप्रमाणें हिरवा

१ पांढरक्या गवताप्रमाणें

२ करडा निळा

१ समुद्राप्रमाणें हिरवा

२ आकाशासारखा निळा

१ सोनेरी उदी

२ हिरवट पिवळा

१ तांबूस जांभळा

२ निळसर जांभळा

परिशिष्ट ५ वें.

रत्नांची व्यावहारिक स्वदेशी नांवे, त्यांचे इंग्रजी प्रतिशब्द,
आणि रत्नांशीं संलग्न असलेल्या कित्येक प्रस्तरांची नांवे.

| रत्नाचें व्यावहारिक स्वदेशी नांव. | इंग्रजी प्रतिशब्द. |
|--|------------------------------|
| १ हिरा, वज्र. | Diamond |
| २ माणिक, पद्मराग, लाल | Ruby |
| ३ सौगंधिक, लाल, डालिंबी माणिक | Spinel |
| ४ कुरुविंद | Rubicelle |
| ५ मांसखंड, मांसपिंड | Balas Ruby |
| ६ कंटकारिक | Almandine Ruby |
| ७ नीलांग | Violet Ruby |
| ८ नीळ, शनी | Sapphire |
| ९ पाच, पन्ना | Emerald |
| १० सागरराग, पारिभद्र | Aquamarine |
| ११ लसण्या, वैडूर्य (कर्केतनः) | Chrysoberyl |
| १२ मार्जारनेत्री, बिडालाख्य | Cat's Eye |
| १३ अलकझाँडा | Alexandrite |
| १४ पुष्पराग, पुखराज | Topaz |
| १५ गोमेद, धुमासमणि | Hessonite, Cinnamon stone |
| १६ प्रवाळ, पोवळें | Coral |
| १७ मोती | Pearl |
| १८ कृत्रिम अगर खोटी मोती | Artificial Pearls |
| १९ लावणीचीं अगर क्रियासिद्ध मोती | Culture Pearl |
| २० तोरमली, वैक्रांत, गंधर्व | Tourmaline |
| २१ माणिक्यकल्प | Rubellite |
| २२ स्फटिक-काच-पाषाण, स्फटिक मणि, काचमणि | Quartz, Rock-Crystal |

रत्नाचें व्यावहारिक स्वदेशी नांव.

इंग्रजी प्रतिशब्द.

| | |
|---------------------------------------|-------------------------|
| २३ धूम्र स्फटिक | Smoky Quartz, Cairngorm |
| २४ महालुंगी खडा | Citrine |
| २५ याकृत | Amethyst |
| २६ अकीक | Calcedony |
| २७ संगयशव | Jaspar |
| २८ सुलेमानी पत्थर | Agate |
| २९ दोरेदार सुलेमानी पत्थर | Vein agate |
| ३० सव्जी " " | Moss agate |
| ३१ गंज " " | Mocha-stone |
| ३२ साधा " " | Common agate |
| ३३ पालंक " " | Onyx |
| ३४ रुधिर पालंक " | Sardonyx |
| ३५ शिवघातु, क्षीरस्फटिक, दुधिया पत्थर | Opal |
| ३६ मौल्यवान किंवा थोर शिवघातु | Precious Opal |
| ३७ औदकीन शिवघातु | Hydrophane |
| ३८ सामान्य शिवघातु | Common Opal |
| ३९ दारुसदृश शिवघातु | Wood Opal |
| ४० चुनडी, पुलकमणि | Garnet |
| ४१ केप माणिक | Pyrope |
| ४२ लाल पुलकमणि | Amondine Garnet |
| ४३ विमलक, अग्निफुलक | Fire opal |
| ४४ पिरोजा, पेरोज | Turquoise |
| ४५ लाजवर्द, राजावर्त, गोविंदमणि | Lapis lazuli |
| ४६ पीलु, संग-इ-यस्व, यष्म, सूत्सी | Jade |
| ४७ सुगंधी | Jacinth |
| ४८ सूर्यकांतमणि | Sunstone |
| ४९ चंद्रकांतमणि | Moonstone |

रत्नाचें व्यावहारिक स्वदेशी नांव.

इंग्रजी प्रतिशब्द.

| | |
|---|-------------|
| ५० रुधिराख्य, रुधिराक्ष | Carnelion |
| ५१ अंबर, तृणमणि | Amber |
| ५२ वज्रभासीय | Zircon |
| ५३ स्वर्णांगी | Chrysoprase |
| ५४ ज्योतीरस | Blood-stone |
| रत्नाशी संबंध असलेला आणखी उपयुक्त शब्दसंग्रह | |
| ५५ शिरगोळा | Flour spare |
| ५६ कुपा | Zeolite |
| ५७ जांभा दगड | Laterite |
| ५८ काळवत्री दगड | Trap |
| ५९ स्फटिकोपल | Felspar |
| ६० गार | Quartz |
| ६१ शिलाद्रव | Lava |
| ६२ फलक | Schist |

—*—

परिशिष्ट ६ वें

थोडेसे उपयुक्त पत्ते

(रत्नें व जवाहिराचा तयार माल मिळण्याचे)

- १ Mogok Transport and Trading Company, Burmah, Rubi mines. (यांजकडे ब्रह्मी माणकें, नील वगैरे मिळतील.)
- २ John Theodoris and Co. Ceylon, Colombo, 40 Chatham street. (यांजकडे सिलोनी रत्नें, खडें, मोतीं मिळतील.)
- ३ K. Mikimoto Ginzast. Japan, Tokio. (हे माल बाहेर पाठविणारे व देशांत आणणारे व्यापारी आहेत.)

- ४ Mehela S. B. Japan, Kobe. Post box No. 31. (हे माल बाहेर पाठविणारे व देशांत आणणारे व्यापारी आहेत.)
- ५ P. B. Javeri. The New Pearl Trading Agency (Importers and stockists of Culture pearls.)
Javeri Bazar, Bombay.
- ६ वामन हरी पेठे, पेठे बिल्डिंग, गिरगांव रोड, मुंबई (मोत्याचे व इतर रत्नांचे व्यापारी).
- ७ कृ. वि. भागवत, पोर्तुगीज चर्चसमोर, पहिला मजला, गिरगांव, मुंबई. (हे कलचर मोत्यांचे व्यापारी आहेत.)
- ८ गोपाळ बाळकृष्ण डबीर, रीअल पर्ल मर्चेट, मुकुंद म्यानशन, कोहिनूर सिनेमासमोर, दादर मुंबई १४ (रत्नांचे व्यापारी असून मोती एक्स रे मधून तपासून देतात.)
- ९ डाह्याभाई मगनलाल अँड सन्स Chitari Dhal Brokers Company (खंबायत) गुजराथ. (यांजकडे खरी व कृत्रिम रत्ने आणि राजपिंपळ्याची अँगेट, कार्नेलियन, ओनिक्स हीं रत्ने मिळतील).
- १० L. H. Lilaram and Co. Ltd. Manufacturing Jewellers. Diamond merchants and dealers in precious stones, Calcutts, 7 and 9 Park street. (ह्यांच्याकडे मुख्यत्वेकरून रत्नांच्या आंगठ्या मिळतील).

वजनांमापांच्या नवीन कायद्याप्रमाणें वजनें व तराजु

मिळण्याचे पत्ते:—

- ११ डब्लू. टी. अग्हेरी, बालार्ड एस्टेट मुंबई.
- १२ ए. एम्. मास्तर, जंजीकर स्ट्रीट, मुंबई.
- १३ फिदाअली गुलामअली, १६३ जंजीकर स्ट्रीट, मुंबई.
- १४ इ. एम्. इस्माइलजी अँड को. लिमडा चौक, सुरत.

मिळकत कशी वाढवावी ?

हा विकट प्रश्न आज तुमच्यापुढें उभा आहे. तो कसा सोडवावा या विवंचनेंत तुम्ही आहां ना ? तर मग

ज्योतिष, सामुद्रिक व रमल यांचीं

अभ्यासपत्रकें भाग १ व २ एकत्र

हें पुस्तक आजच मागवा.

किंमत आगाऊ म. ऑ. नें ३ रु. व्ही. पी. नें ३।। रु.

ही अभ्यासपत्रकें त्रिरेखावेलाप्रबोध, नष्टजातक वगैरे ग्रंथांचे लेखक

सुप्रसिद्ध ज्योतिषी श्री. ज. वा. जोशी, पालशेतकर.

यांनीं तयार केलीं असून यांच्या साहाय्यानें आपला नित्याचा व्यवसाय संभाळून घरचे घरीं फावल्या वेळांत वरील तिन्ही शास्त्रांचें ज्ञान मिळवितां येतें व आपल्या प्राप्तींत चांगली भर टाकतां येते. स्वतंत्र रीतीनें धंदा करून महिना ४०-५० रुपये या पत्रकांच्या अभ्यासानें सहज मिळवितां येतात. बेकार तरुण, गरीब शाळामास्तर, कारकून व लहानसहान धंदे करून उपजीविका करणाऱ्या लोकांना, जोडधंदा करून आपली मिळकत वाढविण्याचे कामीं हीं पत्रकें अत्यंत उपयुक्त ठरलीं आहेत. 'काय करावें कांहीं सुचत नाहीं' असा विचार करण्यांत व्यर्थ कालापव्यय न करतां ३ रु. म. ऑ. नें आजच पाठवून पत्रकें मागवा व उद्योगास लागा. अनेकांनीं या पत्रकांचा फायदा घेतला आहे, घेत आहेत. तुम्ही ही आलेली संधी गमावूं नका.

पत्रकें मागविण्याचा पत्ता—

अरविंद प्रकाशन, कोल्हापुर.

आमचीं कांहीं पुस्तके

कादंबरी

- रिकाभा देव्हारा : खांडेकर
 सुखाचा शोध : „
 काश्मिरी गुलाब : प्रो. फडके
 कुलाब्याची दांडी : „
 दौलत : „
 जादूगार : „
 प्रवासी : „
 दौलत (संक्षिप्त) : „
 दिव्य चक्षु : कु. रत्नप्रभा रणदिवे
 आंधळा न्याय : वि. वा. पत्की
 समरांगण : म. भा. भोसले

लघुकथा

- दत्तक व इतर गोष्टी : खांडेकर
 विद्युत्प्रकाश : „
 पाकळ्या : (२री आ.) „
 गोष्टी भाग १ ला : प्रो. फडके
 गोष्टी भाग २ रा : „
 परिस आणि लोखंड : शं. गो. गोखले
 कोंवळीं किरणें : दिनकर द. पाटील

काव्य

- भिकारीण : मंगसुळीकर
 जीवनप्रभा : द. दा. पेंडसे
 फुलांची बाग : वासुदेवाग्रज

संस्कृत

- बलिदानम् : लाटकरशास्त्री
 श्रीशाहुचरितम् : „

नाटकें व नाटिका

- संजीवन : प्रो. फडके
 तौतया नाटककार : „
 जडावाची देवी : „
 आगलावी : „
 क्षमेसाठीं अपराध : „

टीका-विनोद-चर्चा

- वैनभोजन : खांडेकर
 धुंधुर्मास : „
 वाङ्मयविलास : माडखोलकर
 प्रतिभासाधन : प्रो. फडके
 साहित्य आणि संसार : „
 मानसमंदिर : „
 मनोहरची आकाशवाणी : „
 वाङ्मयविहार : „
 गलोल : शामराव ओक
 स्वल्पविराम : र. कृ. फडके
 कागदी होड्या : बा. भ. बोरकर
 खांडेकर चरित्र : प्रो. मा. का.
 आणि वाङ्मय : देशपांडे, एम.ए.

इतर

- बुद्धिबलक्रीडारत्ने : हळदीकर
 अभिनयकला : मिरजकर
 पाढ्यांचे खेळ (सचित्र) : नेरूरकर
 लघुरत्नपरिक्षा („) : खांबेते

: प्रकाशक :

दा. ना. मोघे, बी.ए. कोल्हापूर.

